अपना दर्पण : अपना बिम्ब

आचार्य महाप्रज्ञ

अपना दर्पण : अपना बिम्ब

आचार्य महाप्रज्ञ

प्रज्ञापर्व प्रवचनमाला - ५

संदर्भ : योगक्षेम वर्ष

सान्निध्य एवं प्रेरणा
आचार्य श्री तुलसी

प्रवचनकार
आचार्य महाप्रज्ञ

मुख्य संपादकः
मुनि दुलहराज

संपादकः
मुनि धनंजय कुमार

प्रकाशक : **जैन विश्व भारती**, लाडनूं—३४१३०६ (राज०)

सौजन्य : हर्षित जैन के जन्मोत्यसव पर दादा जी
श्री के.के. जैन एवम् पिताश्री कमल जैन
(हांसी—दिल्ली) द्वारा प्रकाशित।

संस्करण : १६६६

मूल्य : ५०/-

मुद्रक : **शान्ति प्रिन्टर्स एण्ड सप्लायर्स**, दिल्ली

APANA DARPAN : APANA BIMB
Acharya Mahaprajna

Rs. 50.00

आशीर्वचन

योगक्षेम वर्ष का अपूर्व अवसर। प्रज्ञा जागरण और व्यक्तित्व निर्माण का महान् लक्ष्य । लक्ष्य की पूर्ति के बहुआयामी साधन—प्रवचन, प्रशिक्षण और प्रयोग। प्रवचन के प्रत्येक विषय का पूर्व निर्धारण। अध्यात्म और विज्ञान को एक साथ समझने और जीने की अभीप्सा। समस्या एक ही थी—प्रशिक्षु व्यक्तियों के विभिन्न स्तर। एक ओर अध्यात्म तथा विज्ञान का क, ख, ग नहीं जानने वाले, दूसरी ओर अध्यात्म के गूढ रहस्यों के जिज्ञासु। दोनों प्रकार के श्रोताओं को उनकी क्षमता के अनुरूप लाभान्वित करना कठिन प्रतीत हो रहा था। चिंतन यहीं आकर अटक रहा था कि उनको किस शैली में कैसी सामग्री परोसी जाए? नए तथ्यों को नई रोशनी में देखने की जितनी प्रासंगिकता होती है, परम्परित मूल्यों की नए परिवेश में प्रस्तुति उतनी ही आवश्यक है।

न्यायशास्त्र का अध्ययन करते समय **देहली दीपक न्याय** और **डमरुक मणि न्याय** के बारे में पढ़ा था। दहलीज पर रखा हुआ दीपक कक्ष के भीतर और बाहर को एक साथ आलोकित कर देता है। डमरु का एक ही मनका उसे दोनों ओर से बजा देता है। इसी प्रकार वक्तृत्व कला में कुशल वाग्मी अपनी प्रवचनधाराओं से जनसाधारण और विद्वान्—दोनों को अभिष्णात कर सकते हैं, यदि उनमें पूरी ग्रहणशीलता हो।

योगक्षेम वर्ष की पहली उपलब्धि है—प्रवचन की ऐसी शैली का आविष्कार, जो न सरल है और न जटिल है। जिसमें उच्चस्तरीय ज्ञान की न्यूनता नहीं है और प्राथमिक ज्ञान का अभाव नहीं है। जो निश्चय का स्पर्श करने वाली है तो व्यवहार के शिखर को छूने वाली भी है। इस शैली को आविष्कृत या स्वीकृत करने का श्रेय है 'युवाचार्य महाप्रज्ञ' को।

योगक्षेम वर्ष की प्रवचनमाला उक्त वैशिष्ट्य से अनुप्राणित है। इसमें शाश्वत और सामयिक सत्यों का अद्भुत समावेश है। इसकी उपयोगिता योगक्षेम वर्ष के बाद भी रहेगी, इस बात को ध्यान में रखकर प्रज्ञापर्व समारोह समिति ने महाप्रज्ञ के प्रवचनों को जनार्पित करने का संकल्प संजोया। **अपना दर्पणः अपना बिम्ब** उसका पांचवां पुष्प है, जो ठीक समय पर जनता के हाथों में पहुंच रहा है।

जिन लोगों ने प्रवचन सुने हैं और जिन्होंने नहीं सुने हैं, उन सबको योगक्षेम यात्रा का यह पाथेय आत्म-दर्शन की प्रेरणा देता रहेगा और उनकी चेतना के बंद द्वारों को खोलकर प्रकाश से भर देगा, ऐसा विश्वास है।

२१ अक्टूबर १९९१ — **आचार्य तुलसी**

जैन विश्व भारती,

लाडनूं (राज०)

प्रस्तुति

हम दर्पण से परिचित हैं और प्रतिबिम्ब से भी परिचित हैं। बिम्ब से परिचित नहीं हैं। जिसे बिम्ब मान रहे हैं, वह भी वास्तव में प्रतिबिम्ब है। शरीर बिम्ब नहीं है। बिम्ब है आत्मा अथवा चेतना। कोई भी दर्पण उसका प्रतिबिम्ब नहीं लेता। आवश्यकता है दर्पण के निर्माण की।

प्रेक्षा एक दर्पण है। उसमें अपना बिम्ब देखा जा सकता है। ऐसा दर्पण, जो प्रतिबिम्ब को नहीं लेता, केवल बिम्ब को ही बिम्बित करता है। हम इस प्रकार के दर्पण से भी परिचित नहीं हैं। हमें परिचित होना है और इसीलिए होना है कि हम स्वास्थ्य और शान्तिपूर्ण जीवन जी सकें।

प्रस्तुत पुस्तक का अन्वर्थ है--अपने दर्पण का निर्माण और अपने बिम्ब का दर्शन। प्रेक्षा निर्जरा की प्रक्रिया है, जिससे पुराने संस्कार क्षीण हो सके। प्रेक्षा संवर का प्रयोग है, जिससे प्रतिबिम्ब पैदा करने वाले परमाणु चेतना के भीतर न आ सके। शोधन और निरोध तथा निरोध और शोधन--इस क्रम का परिणाम है बिम्ब का दर्शन, साक्षात्कार।

योगक्षेम वर्ष चिन्तन-मनन, प्रशिक्षण और प्रयोग का महान् अनुष्ठान था। उसमें एक ओर आचार्यश्री की सन्निधि, दूसरी ओर सैंकड़ो-सैंकड़ो प्रबुद्ध साधु-साध्वियों की उपस्थिति, तीसरी ओर जनता। इन सबके बीच में प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में जो चिंतन प्रस्तुत किया, वह **अपना दर्पण : अपना बिम्ब** में समाकलित है।

आचार्यवर की सन्निधि मेरे लिए एक सहज प्रेरणा है। उनकी उपस्थिति में जो स्रोत प्रवाहित होता है, वह अन्यत्र प्रवाहित नहीं होता।

मुनि दुलहराजजी प्रारम्भ से ही साहित्य-संपादन के कार्य में लगे हुए हैं।

वे इस कार्य में दक्ष हैं। प्रस्तुत पुस्तक के संपादन में मुनि धनंजयकुमार ने निष्ठापूर्ण श्रम किया है।

२१ अक्टूबर, १९९१

जैन विश्व भारती

लाडनूं (राजस्थान)

युवाचार्य महाप्रज्ञ

संपादकीय

- मन में एक विकल्प उठा—मनुष्य के पास दो आंखे हैं देखने के लिए। फिर दर्पण की आवश्कता क्यों है?

  समाधान मिला—आंखें हैं दूसरों को देखने के लिए और दर्पण है स्वयं को देखने के लिए।

  एक प्रतिप्रश्न उभर आया—क्या व्यक्ति दर्पण में स्वयं को देखता है?

  समाधाता मौन हो गया।

- यही प्रश्न भगवान् महावीर से पूछा गया—भगवन्! दर्पण की प्रेक्षा करने वाला जीव दर्पण को देखता है? स्वयं को देखता है या प्रतिबिम्ब को देखता है।

  महावीर ने कहा—वह न दर्पण को देखता है, न स्वयं को देखता है। वह मात्र प्रतिबिम्ब को देखता है।

- विज्ञान की भाषा है--

  वस्तु का प्रतिबिम्ब (रिफलेक्शन) हमारी आंखों में पड़ता है। हम वस्तु को नहीं, प्रतिबिम्ब को देखते हैं। बिम्ब का दर्शन संभव नहीं है।

- दर्शन का स्वर भी यही है—

  हम पर्याय को देखते हैं, द्रव्य को नहीं।

  पर्यायवाद या मायावाद को देखने का अर्थ है– प्रतिबिम्ब का दर्शन।

- जैन धर्म की स्वीकृति है—

  जिसका ज्ञान और दर्शन आवृत है, वह बिम्ब को नहीं देख सकता।

बिम्ब का साक्षात्कार वही कर सकता है, जिसका ज्ञान और दर्शन सर्वथा अनावृत है।

- बिम्ब है आत्मा।

  प्रतिबिम्ब है शरीर, वाणी और मन।

  आत्मा शरीर में है पर वह शरीर नहीं है।

  शरीर आत्मा की अभिव्यक्ति का स्रोत है पर वह आत्मा नहीं है।

- सचाई यह है--

  व्यक्ति शरीर को नहीं, शरीर से प्रतिक्षण विसृष्ट होने वाली शरीराकार प्रतिकृति को देखता है।

  शब्द को नहीं, शब्द की प्रतिध्वनि को सुनता है।

  चिन्तन, स्मृति और कल्पना को नहीं, चिन्त्यमान स्थिति में प्रयोग परिणत पुदगल स्कंधों को पकड़ता है।

- वैज्ञानिक जगत् के अधुनातन आविष्कार इस सचाई को प्रमाणित कर रहे हैं–

  एक व्यक्ति किसी स्थान पर बैठा। वह उस स्थल को छोड़कर अन्यत्र चला गया। उस विसर्जित स्थान से उसी व्यक्ति का फोटो खींचा जा सकता है।

  व्यक्ति जो बोलता है, वह आकाशिक रेकार्ड में कैद हो जाता है। सैकड़ों-हजारों वर्ष बाद भी उस शब्द की ध्वनि तरंगों को पकड़ा जा सकता है।

  व्यक्ति जो चिन्तन करता है, उसका मस्तिष्क में अंकन होता है। एक व्यक्ति मल्टीस्टोरी बिल्डिंग के बारे में सोच रहा था। उसके मस्तिष्क का अत्यन्त संवदेनशील कैमरे से फोटो लिया गया। उसी मल्टीस्टोरी बिल्डिंग का चित्र उतर आया।

- आधुनिक विज्ञान के आविष्कार और उनकी निष्पत्तियां अनेक आगमिक एवं दार्शनिक गुत्थियों को सुलझाने वाली हैं। महाप्रज्ञ साहित्य का गंभीर अध्ययन करने वाला व्यक्ति इस तथ्य को हृदयंगम कर सकता है।

- बिम्ब को जानने के लिए प्रतिबिम्ब को जानना आवश्यक है और आवश्यक है प्रतिबिम्ब से परे जाना।

  प्रतिबिम्ब के दर्शन का अर्थ है इन्द्रिय और पदार्थ के योग से उत्पन्न अवबोध ।

  बिम्ब के दर्शन का अर्थ है–आत्मा के शुद्ध स्वरूप का बोध।

- प्रश्न है–

  क्या बिम्ब का साक्षात्कार किया जा सकता है?

  क्या प्रतिबिम्ब को भेदकर बिम्ब तक पहुंचना संभव है?

  वह दर्पण कौन सा है, जिसमें बिम्ब को देखा जा सके?

- युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ कहते हैं–

  बिम्ब को देखा जा सकता है।

  प्रतिबिम्ब को भेदकर बिम्ब तक पहुंचा जा सकता है।

  प्रेक्षा वह दर्पण है, जिसमें बिम्ब का दर्शन किया जा सकता है।

- प्रेक्षा ध्यान की प्रक्रिया बिम्ब--आत्म दर्शन की प्रक्रिया है।

  उसका प्रसिद्ध सूत्र है–**संपिक्खए अप्पगमप्पएणं** आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो। इसका अर्थ है–आत्मा ही दर्पण है, आत्मा ही बिम्ब है।

- युवाचार्य श्री महाप्रज्ञ प्रेक्षाध्यान के पुरस्कर्ता हैं, संस्कर्ता हैं।

  जैन ध्यान योग की विच्छिन्न धारा को पुनरुज्जीवन महाप्रज्ञ की महान् उपलब्धि है।

  आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रदत्त **जैन योग पुनरूद्धारक** संबोधन इसी

उपलब्धि का मूल्याकंन है।

महाप्रज्ञ का यह अवदान मानव मन की समस्याओं का समाधान है, शांत एवं पवित्र जीवन दर्शन का विशिष्ट अभिक्रम है।

प्रस्तुत पुस्तक **अपना दर्पण : अपना बिम्ब** प्रेक्षाध्यान के समग्र साधना क्रम का आकलन है, जिसमें छिपे हैं अपने दर्पण में अपने बिम्ब को देखने के स्वर्ण-सूत्र ।

विश्वास है—जो पाठक अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं में ढूंढना चाहते हैं, उनके लिए इसका विशिष्ट महत्त्व प्रमाणित होगा।

मुनि धनंजय कुमार

२१ अक्टूबर, ६१

जैन विश्व भारती

लाडनूं (राजस्थान)

अनुक्रम

अपना दर्पण : अपना बिम्ब

जीवन

एक व्यक्ति ने पूछा--आज के युग की सबसे बड़ी बीमारी क्या है? मैंने कहा--कोरा वैज्ञानिक होना और आध्यात्मिक न होना वर्तमान युग की सबसे बड़ी बीमारी है। व्यक्ति की इसी मनोवृत्ति ने बहुत सारी बीमारियों को जन्म दिया है। योगक्षेम वर्ष का मुख्य सूत्र रहा--आध्यात्मिक वैज्ञानिक व्यक्तित्व का निर्माण। न कोरा वैज्ञानिक और न कोरा आध्यात्मिक। ऐसे व्यक्तित्व की निर्मिति, जो आध्यात्मिक भी हो और वैज्ञानिक भी हो। यह वर्तमान युग की सबसे बड़ी अपेक्षा है और युगीन समस्याओं का सबसे बड़ा समाधान । इसकी संपूर्ति का माध्यम है प्रेक्षाध्यान। इसके लिए आवश्यक है जीवन को समझना और जीवन शैली को बदलना ।

जीवन की व्याख्या : सात तत्त्व

जीवन क्या है? यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में इस प्रश्न का विश्लेषण करना चाहता हूं। जीवन की व्याख्या के सात सूत्र हैं-

१. शरीर
२. श्वास
३. प्राण
४. मन
५. भाव
६. कर्म
७. चित्त चेतना

इन सबका संयुक्त नाम है जीवन। हम किसी एक कोण से जीवन की व्याख्या करें तो वह पूर्ण नहीं होगी। जीवन की समग्र परिभाषा के लिए इन सात बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है। प्रेक्षाध्यान में इन सातों बिन्दुओं पर विचार और प्रयोग किया गया है।

शरीर

जीवन का पहला घटक तत्त्व है शरीर। एक चिकित्सक के सामने भी सबसे पहले शरीर होता है। सारी बातें शरीर में ही होती हैं। बहुत रहस्यपूर्ण है हमारा शरीर। आज मेडिकल साइंस में काफी अन्वेषणाएं की गई हैं, बहुत कुछ खोजा गया है, किन्तु जो खोजा गया है वह एक बिन्दु जितना है। हमारा ज्ञात का जगत् बहुत छोटा सा है। अज्ञात एक महासागर है। मनुष्य अपने मस्तिष्क और इन्द्रियों से बहुत खोज करता है किन्तु सत्य इतना अनंत है कि उसके कुछेक पर्याय ही सामने आ पाते हैं।

एक चिकित्सक चिकित्सा की दृष्टि से शरीर को समझता है। वह नाड़ीतंत्र और ग्रंथितंत्र—दोनों को समझने का प्रयत्न करता है किन्तु प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में शरीर को पढ़ना होता है तो पढ़ने का दृष्टिकोण बदल जाता है । हमारे शरीर में कुछ ऐसे केन्द्र हैं, जहां चेतना सघन रूप से केन्द्रित है। प्रेक्षा-ध्यान की भाषा में उन्हें चैतन्य केन्द्र कहा जाता है। उन पर ध्यान के प्रयोग कराए जाते हैं। यदि आध्यात्मिक शक्ति को जगाना है तो दर्शन केन्द्र पर ध्यान का प्रयोग करना होता है। संतुलित अनुशासित और आत्म नियंत्रित होना है तो शान्तिकेन्द्र पर ध्यान करना होता है। नशे की आदत को छोड़ना है तो कान पर ध्यान करना होता है। नशामुक्ति का केन्द्र है अप्रमाद केन्द्र।

प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में शरीर को पढ़ा तो यह भी समझ में आया—भावात्मक परिवर्तन के केन्द्र कहां कहां है? भावात्मक परिवर्तन के प्रयोग अध्यात्म के प्रयोग हैं। न हम डाक्टर हैं, न हमारे पास दवा है। केवल शरीर के रहस्यों को खोजकर कुछेक ध्यान के ऐसे प्रयोग कराते हैं, जिनसे एकाग्रता बढ़ती है, भावात्मक समस्याएं समाहित होती हैं। लेश्याध्यान (आभामंडलीय ध्यान) जैसे कुछ नये प्रयोग भी विकसित हुए हैं। महापुरुषों के चित्रों के पीछे एक आभामंडल दिखाया जाता है। वह आभामंडल प्रत्येक व्यक्ति के शरीर के चारों ओर होता है। वह भाव परिवर्तन के साथ-साथ बदलता रहता है। निर्मल भाव, आभामंडल निर्मल। मलिन भाव, आभामंडल भी मलिन। ध्यान के द्वारा आभामण्डल को निर्मल और शक्तिशाली बनाया जा सकता है।

श्वास

जीवन का दूसरा घटक तत्त्व है श्वास। श्वास को भी अभी बहुत कम समझा गया है। मस्तिष्क के दो पटल हैं दायां पटल और बायां पटल। दायां श्वास बाएं पटल को सक्रिय करता है और बायां श्वास दाएं पटल को सक्रिय करता है । नाड़ीतंत्र के संतुलन के प्रयोग भी प्रेक्षा-ध्यान में कराए जाते हैं। श्वास के अनेक प्रयोग भावात्मक परिवर्तन में महत्त्वपूर्ण हेतु बनते हैं।

प्राण

जीवन का तीसरा घटक तत्त्व है प्राण। प्राण संचार की प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। रक्त संचार की प्रक्रिया आयुर्विज्ञान में ज्ञात है। प्राण सूक्ष्म तत्त्व है। उसका यंत्र के द्वारा ग्रहण नहीं होता इसलिए वह अज्ञात है। स्वास्थ्य का अर्थ है--प्राण का संतुलन। प्राण का असंतुलन होता है, मनुष्य रुग्ण हो जाता है। बहुत लोग ऐसे हैं, जो अनेक मेडिकल इंस्टीटयूट्स में परीक्षण करवा चुके हैं। परीक्षा का निष्कर्ष है—तुम बीमार नहीं हो। वह व्यक्ति हमारे पास आकर कहता है—डाक्टर कहता है--तुम बीमार नहीं हो और मैं बहुत कष्ट भोग रहा हूं। हमारा उत्तर होता है—तुम्हारे शरीर में वह बीमारी नहीं है, जिसे यंत्र पकड़ सके। तुम्हारा रोग प्राण असंतुलन का रोग है। वह प्राण संतुलन का प्रयोग करता है और स्वस्थ हो जाता है। प्राण योग का तत्त्व है। आयुर्विज्ञान में वह अभी सम्मत नहीं है। प्राण विज्ञान आयुर्विज्ञान के साथ जुड़े, इसकी अपेक्षा है। प्रेक्षाध्यान की पद्धति में प्राण संतुलन के लिए समवृत्ति श्वास प्रेक्षा का प्रयोग कराया जाता है।

मन

जीवन का चौथा घटक तत्त्व है मन । मानसिक स्वास्थ्य शारीरिक स्वास्थ्य से अधिक मूल्यवान् है। मन की अधिक चंचलता अनेक समस्याएं उत्पन्न करती हैं। मन की एकाग्रता अनेक समस्याओं का समाधान है। प्रेक्षाध्यान के अभ्यास में मन की एकाग्रता के अनेक प्रयोग कराए जाते हैं। स्मृति, कल्पना

और चिन्तन--तीनों मन के कार्य हैं और तीनों ही जीवन के लिए आवश्यक हैं। ये अनावश्यकता के बिन्दु पर पहुंच जाते हैं तब मानसिक तनाव बढ़ता है। एकाग्रता की साधना होने पर आवश्यकता शेष रहती है, उनका अनावश्यक प्रयोग समाप्त हो जाता है।

भाव

जीवन का पांचवा घटक तत्त्व है भाव। मन अचेतन तत्त्व है। वह स्वयं संचालित नहीं है। उसका संचालक तत्त्व है भाव। मन का संबंध स्थूल शरीर से है। भाव का संबंध सूक्ष्म शरीर से है। स्थूल शरीर के भीतर एक सूक्ष्म शरीर है। उसका नाम है तैजस। वह तेजोमय अथवा विद्युन्मय शरीर (Electrical Body) है। उस शरीर के क्षेत्र में भाव का निर्माण होता है और वह मस्तिष्क में प्रतिष्ठित होकर मन का संचालन करता है। आयुर्विज्ञान में भाव विशुद्धि या भाव चिकित्सा का विशिष्ट प्रवेश नहीं है। प्रेक्षा-ध्यान का मूल सूत्र है भावात्मक परिवर्तन—निषेधात्मक भाव समाप्त हो, विधायक भाव की संप्राप्ति हो।

मानसिक स्वास्थ्य का मूल आधार भावानात्मक स्वास्थ्य है। प्रेक्षाध्यान का आधार-भूत सूत्र है--व्याधि, आधि, उपाधि और समाधि। व्यक्ति समाधि का जीवन जीना चाहता है। समाधि के ये तीन विघ्न हैं--व्याधि (शारीरिक रोग), आधि (मानसिक रोग) और उपाधि (भावनात्मक रोग)—भावनात्मक रोग मानसिक रोग का हेतु है और मानसिक रोग अनेक शारीरिक रोगों का हेतु है। प्रेक्षाध्यान की पद्धति में सर्वप्रथम भावनात्मक स्वास्थ्य पर ध्यान दिया जाता है। भाव स्वस्थ है तो मन स्वस्थ होगा, शरीर भी स्वस्थ होगा। चैतन्य केन्द्र और लेश्या ध्यान के प्रयोग मुख्यतः भावात्मक स्वास्थ्य के प्रयोग हैं।

कर्म

जीवन का छठा घटक तत्त्व है कर्म। जीवन में जो कुछ होता है, वह आकस्मिक, अहेतुक या परिस्थितिजनित ही नहीं होता। कुछ घटनाएं परिस्थिति

से प्रभावित हो सकती हैं किन्तु अधिकांश घटनाओं के पीछे कोई हेतु होता है और वह है कर्म। कुछ रोग भी कर्मज होते हैं। आयुर्वेद में कर्मज रोग भी सम्मत है। आयुर्विज्ञान का दर्शन आत्मा से जुड़ा हुआ नहीं है इसलिए उसमें कर्म का सिद्धान्त भी मान्य नहीं है। आश्चर्य है कि शरीर की एक-एक कोशिका और जैविक रसायन की खोज करने वाले शरीरशास्त्री आत्मा की खोज में आगे नहीं बढ़े। आत्मा की खोज का पहला रूप है कर्म की खोज। क्या कर्म को अस्वीकार करने का अर्थ चिकित्सा के एक आयाम को अस्वीकार करना नहीं है?

चित्त

जीवन का सातवां घटक तत्त्व है चित्त । आत्मा एक सूर्य है। उसके प्रकाश की हजारों रश्मियां जीवन को आलोकित करती हैं। प्रकाश की एक रश्मि है चित्त। वह हमारे स्थूल शरीर को प्रकाशित और शरीर, मन एवं वाणी को संचालित कर रही है। प्रेक्षाध्यान का उद्देश्य है चित्त की विशुद्धि । चैतन्य के आवरण का विलय होता रहे और उसमें मूर्च्छा की मलिनता का प्रवेश न हो। चित्त की शुद्धि होने पर ही मनुष्य मादक वस्तु के सेवन, अपराध और अनावश्यक हिंसा से बच सकता है।

जीवन को समग्रता से समझने के लिए उक्त सातों बिन्दुओं पर ध्यान देना और उनके परिष्कार की चेष्टा करना मानवीय मूल्यों के विकास का प्रथम सोपान है।

लक्ष्य और मार्ग

साधना का संकल्प

प्रेक्षाध्यान साधना के लिए समुद्यत व्यक्ति सबसे पहले ध्यान की दीक्षा लेता है । ध्यान की दीक्षा का अर्थ है–साधना के लिए अपने आपको प्रस्तुत करना, साधना का संकल्प स्वीकार करना, साधना के मार्ग का चयन और उद्देश्य का निर्धारण करना। प्रेक्षाध्यान की साधना करने वाला साधक इन संकल्पों को स्वीकृत कर ध्यान-दीक्षा को अंगीकार करता है—

अब्भुट्ठिओमि आराहणाए

मैं प्रेक्षाध्यान की साधना के लिए उपस्थित हुआ हूं ।

मग्गं उवसंपज्जामि

मैं अध्यात्म साधना का मार्ग स्वीकार करता हूं ।

सम्मत्तं उवसंपज्जामि

मैं अन्तर्दर्शन की उपसंपदा स्वीकार करता हूं ।

संजमं उवसंपज्जामि

मैं आध्यात्मिक अनुभव की उपसंपदा स्वीकार करता हूं ।

लक्ष्य और मार्ग

पहली बात है—प्रेक्षाध्यान के लिए मानसिक तैयारी । उसके बिना तो कोई काम ही नहीं होता । दूसरी बात है—अगर तैयारी है तो कोई मार्ग चाहिए । मार्ग नहीं है तो आदमी कहां जाए? मार्ग का होना जरूरी है । मार्ग है अध्यात्म साधना का मार्ग । अध्यात्म के पथ पर चलना, यह प्रेक्षाध्यान का

मार्ग है। तीसरी बात है—मार्ग सही होना चाहिए । यदि मार्ग है और सही नहीं है तो वह लक्ष्य तक नहीं पहुंचाएगा। सही मार्ग का अर्थ है—जहां पहुंचना है वहां तक पहुंचाने वाला मार्ग। लक्ष्य और मार्ग—दोनों के एक साथ होने का मतलब है सही मार्ग । जाना है बीकानेर और जाएंगे जोधपुर के रास्ते तो मार्ग सही नहीं होगा । जोधपुर का रास्ता भी मार्ग तो है पर जब बीकानेर जाना है तो वह सही मार्ग नहीं है । लक्ष्य और मार्ग—दोनों का योग होना चाहिए । लक्ष्य की दिशा में जाना, सही मार्ग है और लक्ष्य के विपरीत जाना, गलत मार्ग है । मार्ग का निर्णय होता है लक्ष्य के आधार पर । समस्या यह है—आदमी लक्ष्य नहीं बना पाता । ध्यान करने वाले व्यक्ति का लक्ष्य निश्चित होना चाहिए । यदि लक्ष्य का पता नहीं है तो व्यक्ति कहां पहुंचेगा?

सही मार्ग है संयम

प्रेक्षाध्यान का लक्ष्य है—आध्यात्मिक चेतना का विकास, आन्तरिक चेतना का विकास । हम बाहर बहुत देखते हैं। भीतर की दृष्टि जागे और भीतर में देख सकें, यह अन्तर्दर्शन हमारा लक्ष्य है, आध्यात्मिकता हमारा लक्ष्य है । जब लक्ष्य आध्यात्मिक विकास का है तब बाजार में जाकर गप्पें हांकना सही मार्ग नहीं होगा । उसके लिए सही मार्ग है—शरीर का संयम करें, वाणी का संयम करें, आहार का संयम करें, मन का संयम करें ।

चौथी बात है- संयम । लक्ष्य भी ठीक है मार्ग भी ठीक है पर संयम नहीं है, अपने आप पर नियंत्रण नहीं है तो काम नहीं बनेगा । कार ठीक रास्ते पर जा रही है, जहां पहुंचना है, उसी रास्ते पर जा रही है किन्तु रास्ते में ब्रेक फेल हो गया तो क्या होगा? यह स्थिति कितनी खतरनाक हो जाती है । यदि अपना नियंत्रण नहीं है तो बहुत खतरनाक स्थिति पैदा हो जाती है।

साधना के लिए मानसिक तैयारी, मार्ग का चयन, लक्ष्य का निर्धारण और साधना की स्वीकृति—ये चार सूत्र प्रेक्षाध्यान-साधक के लिए प्रकाश-स्तंभ हैं। इन चार सूत्रों के आलोक में ही साधना के क्षेत्र में गति उपलब्ध हो सकती

है, साधना सही दिशा में आगे बढ़ सकती है।

उपसंपदा की स्वीकृति

इन चार सूत्रों की स्वीकृति प्रेक्षाध्यान-साधना की दिशा में पहला प्रस्थान है । ध्यान-साधना की दिशा में दूसरा प्रस्थान है उपसंपदा को स्वीकार करना। उपसंपदा के पांच संकल्प-सूत्र हैं—

१. भावक्रिया

२. प्रतिक्रिया - विरति

३. मैत्री

४. मित-आहार

५. मित-भाषण या मौन

ध्यान का संकल्प

ध्यान-दीक्षा और उपसंपदा की स्वीकृति साधना की पूर्वभूमिका है। इसे स्वीकृत कर व्यक्ति ध्यान के लिए प्रस्तुत होता है, ध्यान-मुद्रा में अवस्थित होता है । वह अर्हं की मंगलध्वनि के द्वारा भावना-कवच का निर्माण करता है । उसके पश्चात् ध्येय सूत्र का संगान करता है—संपिक्खए अप्पगमप्पएणं — आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें । व्यक्ति निर्धारित लक्ष्य के अनुरूप ध्यान के संकल्प का उच्चारण करता है—'मैं चित्तशुद्धि के लिए प्रेक्षाध्यान का प्रयोग कर रहा हूं ।' इस संकल्प की स्वीकृति के साथ व्यक्ति ध्यान के प्रयोग-क्रम में अपने आपको नियोजित कर देता है। ध्यान के प्रायोगिक उपक्रम के अनेक चरण हैं—

कायोत्सर्ग
अंतर्यात्रा
दीर्घश्वासप्रेक्षा
समवृत्ति-श्वासप्रेक्षा
शरीरप्रेक्षा
चैतन्य-केन्द्रप्रेक्षा
लेश्या ध्यान
अनुप्रेक्षा

ये सारे प्रयोग प्रेक्षाध्यान के प्राण तत्त्व हैं । सघन आस्था और दृढ़ संकल्प के साथ इनकी साधना करने वाला व्यक्ति स्वस्थ, शांत एवं पवित्र जीवन का रहस्य उपलब्ध कर लेता है । उसके चरण सदा लक्ष्य की दिशा में आगे बढ़ते चले जाते हैं । शुद्ध साध्य की उपलब्धि का विशुद्ध साधन है प्रेक्षाध्यान । हम इस साधना-मार्ग को अपनाएं, लक्ष्य निकट आता चला जाएगा।

भावक्रिया

समाधि और सफलता

आचार्य की सन्निधि । शिष्य जिज्ञासा के स्वर में बोला-गुरुदेव! प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में सफल होना चाहता है । कोई सफल हो जाता है और कोई सफल नहीं होता। सफलता का हेतु क्या है? कोई असफल होना नहीं चाहता फिर भी असफल होता है । ऐसा क्यों होता है? मैं इसका रहस्य जानना चाहता हूं ।

गुरु ने बहुत संक्षिप्त उत्तर दिया – सफलता का नाम है समाधि और समाधि का नाम है सफलता । समाधि और सफलता—दोनों एक ही बात है। चाहे धर्म का क्षेत्र हो, विद्या या व्यापार का क्षेत्र हो, वही व्यक्ति सफल हो सकता है, जिसे समाधि मिल गई है । जिसे समाधि उपलब्ध नहीं हुई है, वह किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता।

द्रव्यक्रिया : भावक्रिया

जैन दर्शन की साधना पद्धति में दो शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण हैं—द्रव्य और भाव। द्रव्य शब्द के अनेक अर्थ हैं और भाव शब्द के भी अनेक अर्थ हैं। प्रस्तुत प्रसंग में द्रव्य और भाव का एक अलग अर्थ है । मैं जानता हुआ काम करता हूं, इसका नाम है भाव और मैं नहीं जानता हुआ काम करता हूं, इसका नाम है द्रव्य । अन्यमनस्क भाव से काम करना है—द्रव्यक्रिया । तन्मय होकर काम करना है—भावक्रिया ।

जानन् करोमि भावोऽयं, अजानन् द्रव्यमुच्यते ।
तन्मना इति भावोऽयं, द्रव्यमन्यमना भवेत् ।।

जिस काम में चेतना और क्रिया का अद्वैत होता है, उसका नाम है भाव। चेतना और क्रिया एक ही दिशा में चले, दोनों का समरसी भाव हो जाए, तब भावक्रिया होती है । चेतना अलग दिशा में जा रही है और क्रिया अलग दिशा में जा रही है, इसका नाम है द्रव्यक्रिया ।

सफलता का सूत्र

सफलता का सूत्र क्या है? और असफलता का सूत्र क्या है? इस प्रश्न का उत्तर इस भाषा में भी दिया जा सकता है—सफलता का सूत्र है भावक्रिया और असफलता का सूत्र है—द्रव्यक्रिया ।

साफल्यस्य रहस्यं किं, ज्ञातुमिच्छामि संप्रति ।

भावः साफल्यसूत्रं स्यात्, द्रव्यं वैफल्यकारणम् ।।

भाव है चेतना और क्रिया का योग होना । द्रव्य है चेतना और क्रिया का वियोग होना । पैर आगे बढता है और चेतना पीछे रह जाती है, इसका अर्थ है असफलता । सफलता तभी मिल सकती है, पैर आगे बढे तो चेतना भी साथ-साथ आगे बढे । केवल शरीर न चले । शरीर चले तो साथ-साथ चेतना भी चले । केवल वाणी न बोले । वाणी बोले तो साथ-साथ चेतना भी बोले। केवल कान न सुने, कान के साथ-साथ चेतना भी सुने । बहुत बार ऐसा होता है कि कोरा कान सुनता है । एक ओर व्यक्ति सुनता जाता है, दूसरी ओर उसका ध्यान और कहीं अटका रहता है । यह असफलता का बहुत बड़ा हेतु है । इस स्थिति में अवग्रह हो जाएगा, ईहा, अवाय और धारणा नहीं होगी । स्मृति की बात तो संभव ही कहां होगी? इसीलिए कहा जाता है—जो काम अनमना होकर किया जाता है, वह सफल नहीं होता । जिस कार्य में मन नहीं लगा, मन नहीं जुड़ा, वह कार्य सफल कैसे होगा?

भावक्रिया है प्राणवान क्रिया

सफलता का सूत्र है भावक्रिया । यही प्रेक्षाध्यान की उपसंपदा का पहला सूत्र है । भावक्रिया का मतलब है प्राणवान् क्रिया और द्रव्यक्रिया का मतलब

है निष्प्राण क्रिया । प्राण भरती है चेतना । जिस क्रिया या प्रवृत्ति के साथ चेतना जुड़ गई, वह क्रिया प्राणवान् है । जिस क्रिया के साथ चेतना न जुड़े, वह क्रिया प्राणवान् नहीं होती । वह क्रिया का ढांचा मात्र है, उसमें प्राण नहीं है । शरीर का पूरा ढांचा पड़ा है, हाथ - पैर आदि सारे अवयव ठीक दिखाई दे रहे हैं, एक भी अवयव सड़ा हुआ नहीं है, बर्फ से ढका हुआ या रसायनों में उलझा हुआ शरीर पड़ा है । लम्बे समय से जैसा था, वैसा का वैसा पड़ा है लेकिन उसमें प्राण नहीं है और प्राण नहीं है तो कुछ भी नहीं है । पिरामिड में हजारों वर्षों पुरानी 'ममियां' सुरक्षित हैं, हजार वर्ष पहले जैसी थीं, वैसी की वैसी आज हैं। लेकिन कमी है प्राण की । यह पिरामिड की विशेषता है कि हम उसमें दूध रख दे तो वह खट्टा नहीं होगा । मुरब्बे आदि में सड़ान पैदा नहीं होगी। सब कुछ वैसा का वैसा रह जाता है, लेकिन उसमें चेतना या प्राण नहीं होता।

प्रश्न है प्राण और चेतना का । जिस क्रिया या प्रवृत्ति के साथ चेतना नहीं जुड़ी, उसमें प्राण की प्रतिष्ठा नहीं हुई । जब तक प्राण-प्रतिष्ठा नहीं होती तब तक मूर्ति को भी पूजा नहीं जाता । जो लोग मूर्ति-पूजा में विश्वास करते हैं, वे उसी मूर्ति की पूजा करते हैं, जिसमें प्राण-प्रतिष्ठा हो जाती है। चेतना का योग क्रिया में प्राण-प्रतिष्ठा कर देता है । जो भी करें, चेतना उसके साथ जुड़ी रहे । इससे क्रिया में प्राण आ जाता है। जहां प्राण आया वहां सफलता आ गई। जहां प्राण नहीं है वहां सफलता भी नहीं है । प्राणयुक्त क्रिया है भावक्रिया और प्राणमुक्त क्रिया है द्रव्यक्रिया ।

ध्यान के दो प्रकार

शिष्य ने पूछा — गुरुदेव ! मैं दिनभर में आधा घंटा ध्यान करता हूं, कभी-कभी एक घंटा ध्यान कर लेता हूं। शेष तेईस घंटे का समय तो दूसरे कामों में ही बीतता है । वह एक घंटा का ध्यान तेईस घंटे को कैसे प्रभावित करेगा? हम इसकी परीक्षा कैसे करें ? परीक्षा का अर्थ है बल और अबल को जांचना । किसका बल ज्यादा है ? तेईस घंटे का ज्यादा है या एक घंटे

का । तेईस घंटे बहुत लंबा समय है और एक घंटा बहुत थोड़ा समय । एक घंटा ध्यान किया , एकाग्र रहे और तेईस घंटे चंचलता का जीवन जिया । इस स्थिति में सफलता कैसे मिलेगी ?

गुरु ने समाधान की भाषा में कहा-- तुम ध्यान को काल-प्रतिबद्ध मत बनाओ । ध्यान दो प्रकार का है । एक है काल-प्रतिबद्ध और एक है काल-अप्रतिबद्ध, सार्वकालिक ध्यान । तुम हर समय ध्यान करो । प्रतिबद्धता वाली बात को दूसरे नंबर पर रखो । आधा घंटा या घंटा ध्यान में बैठना, यह विशेष साधना है, विशेष प्रयोग है। तुम हर समय ध्यान करना सीखो । फिर तुम्हारा यह प्रश्न नहीं रहेगा, चंचलता समस्या नहीं बनेगी ।

क्रिया और विराम

हम दिन में कितनी बार खाना खाते हैं । दिन में दो बार या ज्यादा से ज्यादा तीन बार । इससे ज्यादा बार तो खाना भी नहीं चाहिए। जो आदमी दिन में पांच-सात बार खाता है, खाता ही रहता है, वह अपने लिए नहीं खाता, डाक्टरों के लिए खाता है । दिनभर खाते रहना अनेक समस्याओं को पैदा करना है । न दांतों को विश्राम, न आंतों को विश्राम और न पक्वाशय को विश्राम । लीवर और तिल्ली की तो बात ही छोड़ दें । हम किसी को विश्राम देना ही नहीं जानते और जिस से अधिक काम लेते हैं, वह किनारा कसना शुरू कर देता है । काम उतना ही लेना चाहिए, जितना सहन कर सके । हर बात में सीमा का बोध आवश्यक है। जो भी क्रिया करें, उसके साथ विराम भी जुड़ा रहे, प्रवृत्ति के साथ निवृत्ति भी जुड़ी रहे, यह अपेक्षित है ।

शब्द, अर्थ और चेतना

यदि हम अपनी प्रत्येक प्रवृत्ति के साथ चेतना को जोड़ दें तो भावक्रिया जीवनगत बन जाए । जब खाना खाएं तब चेतना केवल खाने के साथ जुड़ी रहे । खाना भावक्रिया बन जाएगा । इसी प्रकार चलना, बोलना, सुनना और देखना भी भावक्रिया बन सकता है । पांचों इन्द्रियों का जो व्यापार है, वह

भावक्रिया से युक्त हो जाए तो सार्वकालिक ध्यान की साधना संभव बन जाए। वैदिक लोग संध्याकाल में संध्या करते हैं और जैन लोग प्रतिक्रमण करते हैं। एक व्यक्ति प्रतिक्रमण कर रहा है । वह प्रतिक्रमण के पाठ का उच्चारण तो कर रहा है लेकिन उसके अर्थ को नहीं जान रहा है । एक व्यक्ति उच्चारण कर रहा है, अर्थ को भी जान रहा है, किन्तु उसके साथ चेतना जुड़ी हुई नहीं है, उसमें उपयुक्त नहीं है चेतना । क्रिया निष्प्राण हो गई । ऐसा प्रतिक्रमण द्रव्य होता है, भाव नहीं। बहुत बार लोग कहते हैं—नवकार मंत्र की माला जपते-जपते अनेक वर्ष हो गए लेकिन माला में मन नहीं लगता । प्रतिक्रमण करते हैं पर उसमें आनंद नहीं आता । इसका कारण क्या है? उसमें आकर्षण क्यों नहीं पैदा हुआ? इतने वर्षों बाद भी फल पका क्यों नहीं ? फल पकना शुरू नहीं हुआ, उसमें रस नहीं पड़ा, इसका अर्थ है—कहीं न कहीं खराबी अवश्य है। पहली बात यह है—हम शब्दों को ठीक से नहीं जानते या हमारे बोलने का तरीका ठीक नहीं है । दूसरी बात है—हम अर्थ भी नहीं जानते । दोहराते चले जा रहे हैं पर पता नहीं है कि हम क्या दोहरा रहे हैं । तीसरी बात यह है—यंत्रवत् क्रिया चल रही है किन्तु उसके साथ हमारी चेतना या उपयोग का कोई योग नहीं है।

अर्थबोध की समस्या

पुराने जमाने की बात है । सास ने बहू से कहा—जब बिलौना करो, मक्खन ऊपर आ जाए तब आवाज दे देना । बहू ने बिलौना किया। बिलौना करते-करते मक्खन ऊपर आ गया । समस्या हो गई, सास को कैसे सूचित करे? ससुर का नाम था मक्खनलाल । पुराने जमाने में महिलाएं पति का ही नहीं, ससुर का नाम भी नहीं लेती थीं। आखिर बहू ने सूचना देने का एक तरीका सोचा । उसने कहा—सासूजी! जल्दी आओ, ससुरजी छाछ पर तैर रहे हैं । सास घबड़ाती हुई आई। बहू से पूछा—कहां तैर रहे हैं ससुरजी? बहू ने तैरते हुए मक्खन की ओर इशारा करते हुए कहा—ये रहे ससुरजी ।

जब हम अर्थबोध नहीं कर पाते हैं तब मक्खन की जगह ससुर सामने

आ जाता है । जहां ऐसी स्थिति होती है, शब्द और अर्थ का बोध नहीं होता, भावक्रिया नहीं होती, वहां सफलता नहीं मिलती ।

असफलता का कारण

जीवन में सफल होने के लिए भावक्रिया जरूरी है और भावक्रिया के लिए शब्दबोध, अर्थबोध तथा चेतना का उपयोग—ये तीनों बातें जरूरी हैं। ये तीनों बातें पूरी होती हैं तब व्यक्ति जीवन में सफल होता है। व्यापार के क्षेत्र में दुनियां के बड़े-बड़े उद्योगपति, जो सफल हुए हैं, उन्होंने बड़ी तन्मयता और एकाग्रता से कार्य किया है । उनकी एकाग्रता एक समाहित योगी जैसी एकाग्रता थी । केवल उसमें ही ध्यान रहा और सफलता की चोटी पर पहुंच गए । एकाग्रता और भावक्रिया के अभाव में सफलता उपलब्ध नहीं होती । अभी कुछ वर्ष पहले ओलम्पिक खेलों का आयोजन हुआ । आश्चर्य है—छोटे छोटे राष्ट्रों के लोग पांच-पांच, दस-दस स्वर्ण पदक जीत गए और भारत जैसा विशाल देश एक भी स्वर्ण पदक प्राप्त नहीं कर सका । कारण बहुत स्पष्ट है—हम भावक्रिया करना जानते ही नहीं हैं।

भावक्रिया केवल धर्म का ही सूत्र नहीं है। यह प्रत्येक क्षेत्र में सफल होने का सूत्र है । एक विद्यार्थी पढ़ता है । वह विद्या के क्षेत्र में सफल कैसे हो सकता है? कैसे दूर तक जा सकता है? कैसे विकास कर सकता है? यदि उसे विकास का सूत्र खोजना है तो सबसे पहले समाधि की खोज करनी होगी, भावक्रिया का जीवन जीना होगा ।

भावक्रिया : तीन आयाम

भावक्रिया के तीन आयाम हैं—सतत जागरूक रहना, वर्तमान में जीना और जानते हुए काम करना । जीवन का महत्त्वपूर्ण सूत्र है—जागरूक रहना। जीवन में थोड़ा-सा प्रमाद होता है तो समस्या उलझ जाती है । सफलता का बहुत बड़ा सूत्र है—जागरूकता ।

भावक्रिया का दूसरा आयाम है—वर्तमान में जीना । आदमी वर्तमान में

जीना बहुत कम जानता है। हालांकि हम अतीत और भविष्य से कटकर जी नहीं सकते । अतीत और भविष्य को भी जीना होता है। अतीत की स्मृति और भविष्य की कल्पना–दोनों का महत्त्व है किन्तु अनावश्यक स्मृति और अनावश्यक कल्पना न हो, यह आवश्यक है । जो व्यक्ति वर्तमान में जीना सीख लेता है, वह अतीत और भविष्य में अनावश्यक नहीं उलझता । वर्तमान में जीने का अभ्यास सफलता के लिए बहुत आवश्यक है ।

भावक्रिया का तीसरा आयाम है–जो भी काम करें, जानते हुए करें। आहार करें तो जानते हुए करें, आहार करना आहारयोग बन जाए। चलें तो जानते हुए चलें, चलना गमनयोग बन जाए । बोलें तो संयम- पूर्वक बोलें, विवेक पूर्वक बोलें । बोलना भी वाक्योग बन जाए ।

दुःख और चंचलता

महर्षि पंतजलि ने एक महत्त्वपूर्ण बात लिखी है–चंचलता के साथ चार चीजें आती हैं–दुःख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व और श्वास-प्रश्वास। वह दुःख ज्यादा भोगेगा, जो चंचल होगा । जो भावक्रिया करना नहीं जानता, वह दुःख ज्यादा भोगता है । जिसमें जितनी ज्यादा चंचलता है, उसमें उतनी ही ज्यादा पीड़ा की अनुभूति होगी । जिसमें जितनी ज्यादा समाधि और एकाग्रता है, उसमें उतनी ही पीड़ा कम हो जाएगी । पीड़ा होती है संवेदना के आधार पर। चोट लगने से पीड़ा नहीं होती । पैर में कांटा चुभा । कांटा चुभते ही हमारे ज्ञान-तंतु उस संदेश को लेकर मस्तिष्क तक जाएंगे । मस्तिष्क के संवेदना–केन्द्र में जब यह सूचना पहुंचेगी तब पीड़ा होगी । फिर कर्म-तंतुओं को निर्देश मिलेगा–पीड़ा को मिटाओ । अंगुली उठेगी, कांटा निकलेगा, पीड़ा शान्त हो जाएगी । यदि हम उस बात को मस्तिष्क तक न पहुंचने दें तो कोई पीड़ा नहीं होगी, कोई कष्ट नहीं होगा । पीड़ा होती है चंचलता के साथ । यदि बीच में ही उसे रोक दें तो कोई पीड़ा नहीं होगी । दुःख होता है विक्षेप के साथ, चंचलता और असमाधि के साथ । यदि विक्षेप को मिटा दें तो दुःख नहीं होगा ।

चंचलता: दौर्मनस्य

व्यक्ति के मन में अनेक इच्छाएं पैदा होती हैं । इच्छा पैदा हुई—अमुक चीज मिले । यदि वह चीज नहीं मिलती है तो एक आघात लगता है। उस आघात से चेतना में जो क्षोभ पैदा होता है, उसका नाम है दौर्मनस्य। जिसमें जितनी ज्यादा चंचलता है, उसमें उतना ही ज्यादा दौर्मनस्य होगा । एक व्यक्ति ऐसा होता है, जिसे राई जितनी बात भी पहाड़ जितनी लगती है और एक व्यक्ति ऐसा होता है, जिसे पहाड़ जितनी बात भी राई जितनी लगती है । इस अंतर का कारण है—चंचलता का कम या ज्यादा होना ।

विक्षेप : प्रकंपन

जहां विक्षेप है वहां प्रकम्पन है । व्यक्ति स्थिर रहना जानता ही नहीं है । दो मिनट स्थिर बैठना भी उसके लिए संभव नहीं होता । जब भीतर में विक्षेप है तो शरीर में भी विक्षेप होगा । व्यक्ति बीस मिनट स्थिर रहना सीख लेता है तो मानना चाहिए कि भीतर में थोड़ा विक्षेप कम हुआ है। जो ध्यान शिविर में पहली बार आते हैं, उनके लिए कुछ दिन बहुत अटपटे रहते हैं। इतना विक्षेप होता है कि एक घंटा के ध्यान में पच्चीस-तीस बार आसन बदल लेते हैं । पांच-छह दिन की साधना के बाद ऐसी स्थिति बनती है—व्यक्ति एक घंटा में एक बार भी आसन नहीं बदलता । विक्षेप की कमी से ऐसा संभव बनता है ।

विक्षेप और श्वास की गति

विक्षेप बढता है तो श्वास की गति तीव्र हो जाती है । सामान्य स्थिति में १५-१६ श्वास आते हैं । जब वासना का भाव जागता है, चंचलता बढती है, श्वास की संख्या पचास-साठ तक चली जाती है। जहां एक मिनट में पंद्रह श्वास आने चाहिए वहां पचास साठ श्वास आ जाते हैं । इस स्थिति में बेचारा जीवन कहां टिकेगा! जीवनीशक्ति कितनी समाप्त हो जाती है ! यह सब विक्षेप के कारण होता है । जिसने एकाग्रता का अभ्यास किया है, भावक्रिया को

समझा है, उसमें दुःख नहीं होगा, दौर्मनस्य नहीं होगा, अंगमेजयत्व नहीं होगा, श्वास-प्रश्वास की गति मंद हो जाएगी ।

काल—अप्रतिबद्ध ध्यान

भावक्रिया निरन्तर होने वाला ध्यान है । यह काल-प्रतिबद्ध नहीं है। एक भोजन वह है, जो दिन में दो-तीन बार किया जाता है । एक भोजन वह है, जो चौबीस घंटे चलता रहता है । कवल आहार व्यक्ति बहुत बार नहीं कर सकता, पर रोम आहार अनवरत चलता रहता है। जो व्यक्ति चौबीस घंटे रोम आहार नहीं ले पाता, वह जी नहीं सकता। यदि एक घंटा रोम आहार बंद हो जाए, दस मिनट रोम आहार बंद हो जाए तो आदमी तड़पने लग जाए। इसी प्रकार काल-प्रतिबद्ध ध्यान वह है, जो दिन में दो-तीन बार किया जा सकता है । लेकिन भावक्रिया ऐसा ध्यान है, जो चौबीस घंटे किया जा सकता है । बोलें तो चेतना के साथ बोलें, बोलना ध्यान बन जाएगा । चलें तो चेतना के साथ चलें, सुने तो चेतना के साथ सुनें । हमारा बोलना ध्यान बन जाए, हमारा चलना ध्यान बन जाए, हमारा सुनना और खाना ध्यान बन जाए । पढना और लिखना भी ध्यान बन जाए । हमारी प्रत्येक क्रिया ध्यान बन जाए।

भावक्रिया, समाधि और धर्म

आचार्य हरिभद्र ने लिखा है—धर्म का सारा व्यापार योग है। चौबीस घंटे ध्यान करने का प्रयोग है—भावक्रिया, चेतना को प्रवृत्ति के साथ जोड़ देना । इस स्थिति का निर्माण बहुत कठिन है । हम करते कुछ हैं और ध्यान कहीं दूसरी जगह होता है । माला फेरते हैं तो ध्यान नाश्ते में अटका रहता है व्याख्यान सुनते हैं तो मन व्यापार में चक्कर लगाता है । मन कहीं दौड़ता है और हम कहीं और होते हैं । मन को शायद यह बात पसंद नहीं है कि वह शरीर के साथ चले । परस्पर साथ रहते हैं पर आपस में एक विरोध जैसा बना रहता है । यह विरोध मिटता नहीं है । मन अलग जाना चाहता है और शरीर अलग जाना चाहता है। यह मन और शरीर की जो अलग अलग गति है, इसका अर्थ ही है अधर्म । यही है असमाधि और विक्षेप । दोनों को जोड़ने

का मतलब है भावक्रिया, समाधि और धर्म ।

आयुर्वेद का मत

विक्षेप को मिटाने के लिए एकाग्रता का अभ्यास करना जरूरी है। ध्यान का जो काल--प्रतिबद्ध प्रयोग है, वह विक्षेप को कम करने के लिए है । यह एक घंटा ध्यान का प्रयोग अभ्यास प्रक्रिया है। पहुंचना वहां है, जहां प्रत्येक क्रिया ध्यानमय बन जाए, निरन्तर जागरूकता की स्थिति बन जाए । यह सफलता का रहस्य-सूत्र है । आयुर्वेद के आचार्यों ने भी इस रहस्य-सूत्र का उद्घाटन किया है । चरक में लिखा है—तन्मना भुंजीत—भोजन करो तो तन्मय बन जाओ। प्रेक्षाध्यान शिविरों में एक प्रयोग कराया जाता है । भोजन के समय एक साधक निरन्तर यह निर्देश-वाक्य दोहराता है—जानते हुए खाएं । इस सूचना से साधक सावधान बने रहते हैं । साधक खाने की प्रत्येक क्रिया को जानते हुए करें-'अब कोर तोड़ा, कोर मुंह में जा रहा है, वह नीचे उतर गया है।' जहां तक इच्छाचालित नाड़ीतंत्र का काम है वहां तक चेतन मन को साथ में जोड़े रखना । जब वह स्वतःचालित प्रवृत्ति में चला जाएगा तब शरीर अपना काम करेगा।

चेतना और क्रिया एक दिशागामी हो

चरक का मत है—जहां तक इच्छाचालित तंत्र का काम है वहां तक चेतन मन साथ जुड़ा रहे तो पाचन ठीक होता है । हम एक ओर भोजन कर रहे हैं, दांत चबा भी रहे हैं, भोजन नीचे जा रहा है किन्तु चेतना दूसरे कार्य में लगी हुई है तो पाचन ठीक नहीं होगा । हाथ चल रहा है भोजन पर और मन अटका हुआ है व्यापार में, कविता बनाने में या लेख लिखने में । दिमाग एक काम कर रहा है और पेट दूसरा काम कर रहा है तो दोनो में झगड़ा हो जाएगा । क्यों होगा झगड़ा? इसका कारण भी हम जान लें । पेट को भोजन पचाना है तो उसे भी पूरा रक्त चाहिए । दिमाग को सोचना है तो उसे भी पूरा रक्त चाहिए । इतना रक्त शरीर में नहीं है कि रक्त-संचार-तंत्र दोनों ओर पूरी सप्लाई कर सके । शरीर की व्यवस्था है--जिस समय जिस अवयव को रक्त की ज्यादा जरूरत होती है, उस समय उस अवयव की ओर

रक्त का प्रवाह ज्यादा हो जाता है। भोजन को पचाना है तो आमाशय और पक्वाशय को पूरा रक्त चाहिए । उसी समय व्यक्ति सोचने लग जाए तो रक्त का प्रवाह मस्तिष्क की दिशा में चला जाएगा । आमाशय-पक्वाशय को पूरा रक्त नहीं मिलेगा तो पाचन ठीक नहीं होगा। पेट असहयोग करना शुरू कर देगा । यदि दस-बीस दिन यही क्रम चलता रहे तो पाचन - तंत्र बिगड़ जाएगा। यह परिणति है चेतना और क्रिया के विपरीत दिशागामी होने की । क्रिया और चेतना का योग होने से ही क्रिया सम्यग् होगी । यह भावक्रिया ही सफलता का रहस्य-सूत्र है।

प्रतिक्रिया विरति

तीन शब्द हैं–क्रिया, अनुक्रिया और प्रतिक्रिया। जहां क्रिया होगी वहां प्रतिक्रिया होगी । क्रिया होती है, अनुक्रिया होती है और प्रतिक्रिया होती है । केवल मनुष्य में ही नहीं, प्रत्येक प्राणी में प्रतिक्रिया होती है । इच्छा-पूर्वक हो या प्रकृतिगत--प्रतिक्रिया प्रत्येक व्यक्ति में होती है।

नई व्यवस्था और प्रतिक्रिया

तेरापंथ धर्मसंघ में एक व्यवस्था थी--मुनि या साध्वियां भिक्षा में जो आहार लातीं, उसमें प्राथमिकता साधुओं की रहती । साधु अपने लिए पहले आहार ले लेते, जो आहार शेष रहता, वह साध्वियों को दे दिया जाता । लम्बे समय तक यह व्यवस्था चलती रही । जयाचार्य ने उस व्यवस्था में परिवर्तन किया और संविभाग की बात को आगे बढ़ाया। उन्होंने कहा–भिक्षा में जो आहार आएगा, उसका संविभाग होगा, प्राथमिकता किसी की नहीं होगी । इस पांती (संविभाग) की व्यवस्था से दो प्रकार की प्रतिक्रियाएं हुईं। कुछ साधुओं ने इस व्यवस्था को अच्छा माना । उन्होंने कहा–बहुत अच्छा हुआ, संविभाग की व्यवस्था हो गई। कुछ साधुओं ने सोचा--हमारा अधिकार छिन गया, यह अच्छा नहीं हुआ ।

संविभाग का संस्कार

व्यवस्था मान्य तो होती है पर वह अनुकूल लगे या न लगे, यह अलग बात है । साधुओं ने प्रतिक्रियाएं व्यक्त कीं--यह नई बात क्यों? जो परंपरा प्रारंभ से चली आ रही है, उसमें परिवर्तन क्यों किया गया? जो प्रथा चल रही थी, उसमें क्या कमी थी? इन प्रतिक्रियाओं को देखते हुए जयाचार्य ने

एक छोटा–सा ग्रन्थ लिखा, उसका नाम था 'टहुका'। जब साधु आहार चलता रहता, उधर टहुका सुनाया जाता । इसलिए सुनाया जाता कि जैसे आहार का कवल गले से नीचे उतरता है, वैसे ही पांती का संस्कार या संविभाग का संस्कार भी गले से नीचे उतर जाए।

जयाचार्य ने लिखा–जो अपनी पांती में रंजता है, संतोष मानता है, वह मुनि होता है । जो अपनी पांती में संतोष नहीं मानता, उसमें प्रतिक्रियाएं बढ़ती हैं।

मानवीय स्वभाव

प्रतिक्रिया मानवीय स्वभाव जैसा बन गई है। चाहे गृहस्थ है या मुनि, जब तक वीतराग नहीं हो जाता या क्षेपक श्रेणी में नहीं चला जाता तब तक प्रतिक्रिया से सर्वथा विरक्त होना असंभव जैसी बात है । क्रिया एक होती है, पर प्रतिक्रियाएं अनेक प्रकार की होती हैं। जयाचार्य ने संविभाग की व्यवस्था कर एक प्रकार की क्रिया की। किंतु उसकी प्रतिक्रियाएं अनेक प्रकार से हुई। क्रिया की प्रतिक्रिया और प्रतिक्रिया की फिर प्रतिक्रिया हो जाती है । प्रतिक्रिया से प्रतिक्रिया का एक सिलसिला सा चल पड़ता है । प्रतिक्रियाओं की एक श्रृंखला सी बन जाती है।

प्रतिक्रिया का अर्थ

प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्र रहना चाहता है । परतंत्रता किसी को पसंद नहीं है। प्रश्न है–स्वतंत्र कौन हो सकता है? जिस व्यक्ति ने प्रतिक्रिया-विरति का जीवन जीना शुरू किया है, वही व्यक्ति स्वतंत्र हो सकता है । जो व्यक्ति प्रतिक्रिया का जीवन जीता है, वह कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता। संस्कृत व्याकरण का एक सूत्र है–स्वतंत्रः कर्ता । कर्ता स्वतंत्र हो सकता है, प्रतिकर्ता स्वतंत्र नहीं हो सकता । एक व्यक्ति भोजन कर रहा है। किसी व्यक्ति ने कह दिया–कैसे खा रहे हो? ठीक से नहीं खा रहे हो, कितना भोजन नीचे डाल दिया? व्यक्ति यह सुनते ही गुस्से में भर जाता है। यह है प्रतिक्रिया। गुस्सा

कोई जरूरी नहीं था । गुस्सा क्यों आया? व्यक्ति आवेश में क्यों चला गया? हम इसे इस भाषा में समझें। दवाई ली और रिएक्शन हो गया । इसका अर्थ है—प्रतिक्रिया हो गई। बहुत बार ऐसी घटनाएं होती हैं - व्यक्ति ने एक दवा की गोली ली और जीवन समाप्त हो गया । लोग पूछते हैं—कैसे मर गया? जवान आदमी था । पच्चीस वर्ष का युवा था । अकस्मात् यह कैसे हुआ? कहा गया—सामान्य बुखार था । डाक्टर ने इंजेक्शन दिया । उसका रिएक्शन हुआ और प्राणान्त हो गया । यह प्रतिक्रिया बहुत खतरनाक होती है। किसी ने दो शब्द मीठे कह दिए, आदमी फूल गया । किसी ने थोड़ी- सी कड़वी बात कह दी, आदमी गुस्से से भर गया ।

प्रतिक्रिया का मतलब है—कठपुतली होना । कठपुतली होने का अर्थ है--दूसरों के हाथ का खिलौना बन जाना । प्रतिक्रिया का अर्थ भी यही है--दूसरे के हाथ का खिलौना बन जाना । दूसरा जैसे नचाए, वैसे नाचना। ऐसा जीवन अच्छा नहीं होता । स्वतंत्र वह हो सकता है, जो अपने ढंग से जीए, दूसरे के हाथ का यंत्र, खिलौना या कठपुतली न बने। यह तब संभव है जब हम प्रतिक्रिया-विरति का अभ्यास करें। जीवन-दर्शन का महत्त्वपूर्ण सूत्र है--प्रतिक्रिया से विरत हो जाना ।

एक समीकरण

प्रेक्षाध्यान की उपसंपदा के दो सूत्र हैं—प्रतिक्रिया-विरति और मैत्री। ये दोनों जुड़े हुए हैं। यदि क्रिया की प्रतिक्रिया उद्दीपन के साथ हुई है, उत्तेजना पूर्ण हुई है तो उसकी निष्पत्ति होगी--शत्रुता । यदि क्रिया की प्रतिक्रिया शांति के साथ हुई है तो उसकी परिणति होगी—मित्रता ।

मनोविज्ञान ने प्रतिक्रिया को आंतरिक और बाह्य व्यक्तित्व का समायोजन माना है । एक है बाहर का जीवन और एक है भीतर का जीवन । उद्दीपनों के कारण भीतर में कोई प्रज्वलन होता है तो एक आदमी बाहर में उसे समझदारी से समायोजित कर लेता है और दूसरा समायोजित नहीं कर पाता। जहां कषाय की प्रबलता है, क्रोध, अहंकार, कपट—ये सारे प्रबल हैं, वहां

प्रतिक्रिया की एक श्रृंखला चल पड़ेगी । जहां कषाय उपशान्त है वहां प्रतिक्रिया होगी, किन्तु उसकी श्रृंखला नहीं बन पाएगी । वह प्रतिक्रिया अप्रतिक्रिया में बदल जाएगी–

'कषाया कुलचित्तस्य, प्रतिक्रिया प्रतिक्रिया ।

उपशान्तकषायस्य, प्रतिकिया ऽप्रतिक्रिया ।।'

हम इन समीकरणों पर ध्यान दें-

कषाय + प्रतिक्रिया = शत्रुता

अकषाय + प्रतिक्रिया = मित्रता

प्रतिक्रिया मध्य में है । जिस प्रतिक्रिया में कषाय प्रबल है, वह शत्रुता का कारण बनेगी । जिस प्रतिक्रिया में कषाय उपशान्त है, वह मित्रता का कारण बनेगी ।

प्रतिक्रिया : व्यक्तित्व का अंकन

एक व्यक्ति ने दवा ली । उसे पूछा गया–दवा का असर हुआ? उत्तर मिला–कुछ नहीं हुआ । दवा ली और असर नहीं हुआ तो दवा लेने का अर्थ ही क्या है? दवा ली है तो उसका असर होना चाहिए। एक व्यक्ति ने दूसरे को गाली दी । व्यक्ति गाली सुनकर भी शान्त बना रहा। किसी ने पूछा–तुम्हारी गाली का क्या असर हुआ? उसने उत्तर दिया–कुछ भी नहीं । गाली दी और असर नहीं हुआ, इसका अर्थ है–तुम्हारा गाली देना व्यर्थ चला गया । गाली का कुछ तो असर होना चाहिए । इसका तात्पर्य यह है–प्रतिक्रिया होनी चाहिए। प्रतिक्रिया के आधार पर व्यक्तित्व को आंका जाता है ।

प्रतिक्रिया : तीन स्थितियां

मनोविज्ञान में तीन शब्द आते हैं–रिएक्शन फोरमेशन, रिएक्शन टाइम और रिएक्शन वर्ड । प्रतिक्रिया का होना, प्रतिक्रिया का काल और प्रतिक्रिया का शब्द । व्यक्ति पहचाना जाता है प्रतिक्रिया के शब्द से। प्रतिक्रिया के शब्द से व्यक्ति के मानस को समझा जा सकता है । किस अवस्था में कौन व्यक्ति

क्या शब्द बोल रहा है, उसके द्वारा पूरे व्यक्तित्व को आंक लिया जाता है ।

व्यवहार से जुड़ी है प्रतिक्रिया

प्रतिक्रिया हमारे व्यवहार से अभिव्यक्त होती है । प्रतिक्रिया का सिद्धान्त हमारे पूरे व्यवहार को स्पष्ट करता है । प्रत्येक आदमी प्रत्येक स्थिति में अपनी प्रतिक्रिया को जताता है और उसके मनोभावों का पता चल जाता है। चाहे व्यक्ति बोलकर प्रतिक्रिया जताए, चाहे आकृति से जताए, हाव-भाव से जताए, प्रतिक्रिया प्रत्येक व्यक्ति जताता है। प्रतिक्रिया से कोई मुक्त नहीं है।

प्रश्न होता है–प्रतिक्रिया आवश्यक और अनिवार्य है तो उससे विरति की बात क्यों ? इसी बिन्दु को हमें पकड़ना है । प्रतिक्रिया को रोका नहीं जा सकता। ठण्डी हवा लगी और प्रतिक्रिया हो जाएगी । धूप तेज हुई और प्रतिक्रिया हो जाएगी । जितने उद्दीपन हैं, वे सब प्रतिक्रिया के हेतु हैं । भीतर की अवस्था और बाहर का उद्दीपन--दोनों का जैसे ही योग मिला, प्रतिक्रिया फूट पड़ेगी ।

आंतरिक कारण, उद्दीपन और निष्पत्ति

प्रतिक्रिया का आंतरिक कारण, प्रतिक्रिया का उद्दीपन और प्रतिक्रिया की निष्पत्ति–इन तीनों पर हमें विचार करना है। प्रतिक्रिया कहां से आ रही है? उसका भीतरी हेतु क्या है ? प्रतिक्रिया को उद्दीपन क्या मिल रहा है? हम इन पर ध्यान दें । प्रतिक्रिया की निष्पत्ति क्या होगी ? इस पर अधिक सावधान और सतर्क रहें । यदि हमारा चित्त कषाय से आकुल है, कषाय का तेज प्रवाह भीतर से आ रहा है तो प्रतिक्रिया अनंत बन जाएगी, वह आगे से आगे बढ़ती चली जाएगी । इसी तथ्य को लक्ष्य कर उपाध्याय विनयविजयजी ने लिखा–किसी व्यक्ति ने तुम्हारा अनिष्ट कर दिया, तुम्हारे मन पर प्रतिक्रिया आ गई । तुम उस प्रतिक्रिया को लंबाओ मत । प्रतिक्रिया का जो अगला कदम है, उसे आगे मत बढ़ने दो । उसे आगे बढ़ाने से पहले थोड़ा चिन्तन करो। तुम्हारे मन में यह भाव आ सकता है–उस व्यक्ति ने मुझे आघात पहुंचाया है, मुझे आगे बढ़ने से रोका है । इसलिए ऐसी प्रतिक्रिया का होना स्वाभाविक

है । इस बात का दूसरा पहलू भी देखो—जिसे तुम दुश्मन मान रहे हो, वह तुम्हारा शत्रु नहीं है । इस थोड़े से जीवन के लिए दूसरों के प्रति शत्रुबुद्धि रखकर तुम खिन्न क्यों हो रहे हो?

प्रतिक्रिया विरतिः महत्त्वपूर्ण चिन्तन

बाहरी उद्दीपन और आंतरिक कषाय की प्रबलता—दोनों के योग से होने वाली प्रतिक्रिया में शत्रुता का भाव पैदा होना स्वाभाविक है। भगवती सूत्र का एक पूरा प्रकरण है, जिसमें प्रतिक्रियाविरति का महत्त्वपूर्ण चिन्तन है । प्रतिक्रिया को रोकने में वह प्रकरण शायद जहर को अमृत बनाने वाला या समुद्र के खारे पानी को मीठा बनाने वाला है।

गौतम ने भगवान् महावीर के समक्ष जिज्ञासा प्रस्तुत की—भंते! यह जीव माता-पिता, भाई, सगे-संबंधी के रूप में उत्पन्न हुआ है ?

महावीर ने उत्तर दिया—हां, गौतम ।

गौतम ने फिर पूछा—भगवान् ! वह अनेक बार बना है या अनंत बार?

महावीर ने कहा—अनेक बार भी और अनंत बार भी ।

संसार एक कुटुम्ब है

इसका अर्थ है—सारा संसार एक कुटुम्ब है । सारा संसार एक दूसरे से जुड़ा हुआ है । मेरे हाथ में एक कपड़ा है । यह कपड़ा मेरे हाथ से जुड़ा हुआ है । प्रश्न है—क्या यह दूसरों के हाथ से भी जुड़ा हुआ है? अनेकान्त—दृष्टि से विचार करें तो यह कपड़ा दुनिया भर के पदार्थों से जुड़ा हुआ है । एक भी परमाणु या एक भी जीव ऐसा नहीं है, जिसका संबंध इस कपड़े के साथ न हो । यह है अनेकान्त का सिद्धान्त । कहा गया—इस कपड़े के आसपास अनंत जीव हैं। पांच काय के सूक्ष्म जीव सारे लोक में भरे हुए हैं। कपड़ा इन जीवों से जुड़ा हुआ है । इस कपड़े के भीतर भी जीव हैं, इसके बाहर भी जीव हैं । इसके दाएं बाएं भी जीव हैं । चारो ओर जीव ही जीव हैं और उन जीवों से यह कपड़ा जुड़ा हुआ है । यह है जीव का जुड़ाव ।

हम परमाणुओं की दृष्टि से देखें। इस कपड़े का एक तंतु लें। वह समग्र परमाणु जगत् से जुड़ा हुआ है । लोक-आकाश का एक भी प्रदेश ऐसा नहीं है, जहां परमाणु और स्कंध न हो । सारे दुनियाभर के परमाणु और स्कंध इस कपड़े से जुड़े हुए हैं।

हम इस सचाई को समझें—हम अकेले भी हैं और नहीं भी । यदि यह अनेकान्त का दर्शन समझ में आ जाए, जन्म जन्मांतरों के संबंध का दर्शन उपलब्ध हो जाए तो व्यक्ति प्रतिक्रियाविरति की दिशा में आगे बढ़ जाए ।

मैत्री

प्रतिक्रिया-विरति और मैत्री

प्रतिक्रिया-विरति और मैत्री में गहरा संबंध है । प्रतिक्रिया की विरति होगी तो मैत्री भाव बढ़ता चला जाएगा और प्रतिक्रिया की अविरति होगी तो प्रतिक्रिया बढ़ती चली जाएगी, शत्रुता का भाव समाप्त नहीं होगा। जहां प्रतिक्रिया होती है, शत्रुता का भाव होता है, वहां मन में बुरे विचार और बुरे भाव आएंगे। बहुत सारे लोगों के मन में बुरी भावनाएं भरी रहती हैं । वे प्रतिक्रिया की भाषा में ही सोचते हैं । अमुक व्यक्ति ने मेरा यह कर दिया, अमुक व्यक्ति ने मेरा वह कर दिया । न जाने कितने व्यक्तियों से जुड़ी हुई घटनाओं का भार अकेला व्यक्ति अपने सिर ढ़ोता जा रहा है । कुछ ऐसे लोग भी होते हैं, जो कभी भार ढोते ही नहीं हैं। कोई घटना घटती है । व्यक्ति सोचता है—जो हो गया, वह हो गया। उसका भार ढोने का अर्थ क्या है? वह घटना को वहीं समाप्त कर देता है।

बंधुता की अनुभूति

बंधुता की अनुभूति प्रतिक्रिया को शत्रुता में परिणत नहीं होने देती। बंधुता का विकास आज की अहम अपेक्षा है। शांत सुधारस भावना में इसी बात को बहुत महत्त्व दिया गया है-

सर्वे ते प्रियबांधवा, नहि रिपुरिह कोऽपि ।

मा कुरु कलिकलुषं मनो, निजसुकृतविलोपि ।।

तुम मित्रता का चिन्तन करो । इस जगत् में सभी प्राणी तुम्हारे प्रिय स्वजन हैं । तुम्हारा कोई शत्रु नहीं है । तुम अपने मन को कलह से कलुषित

मत बनाओ। कलह सुकृत का नाश करने वाला है । यह बंधुत्व का चिन्तन उपशान्त कषाय का हेतु बनता है । जब व्यक्ति उपशांत कषाय वाला होता है तब उसकी प्रतिक्रिया से अप्रतिक्रिया उत्पन्न होती है और उसका परिणाम होता है मैत्री ।

प्रतिक्रिया का एक बहुत बड़ा कारण है स्वार्थ की प्रबलता । जहां स्वार्थ प्रबल होता है, वहां प्रतिक्रियाएं उभरती रहती हैं।

सरकारी कर्मचारी बिल देने के लिए किसी व्यक्ति के घर पहुंचा। घर के दरवाजे पर नौकर खड़ा था । उसने नौकर से पूछा—मालिक अंदर हैं?

नौकर बोला-क्यों, क्या काम है?

उनका बिल आया है।

नौकर ने सोचा—यह बिल आ गया, मालिक पर बड़ी मुसीबत होगी। उसने कहा—मालिक अभी बाहर गए हुए हैं।

कर्मचारी बोला--बड़ी परेशानी है । मुझे कल फिर आना पड़ेगा। तुम्हारा मालिक कब आएगा ? उसे यह बिल देना है, लेना कुछ नहीं है।

अच्छा, बिल देना है! मैं अभी जाकर देखता हूं—मालिक लौट आए हैं या नहीं । वह अंदर गया और मालिक को बुलाकर बाहर ले आया।

जब बिल चुकाना होता है, मालिक बाहर चला जाता है। जब बिल लेना होता है, मालिक घर में ही मिल जाता है।

प्रतिक्रिया के दो प्रकार

यह भीतर का जो आवेग है, वह परिस्थिति के साथ समायोजन नहीं होने देता । इन आवेगों के कारण व्यक्ति न जाने कितने प्रकार का व्यवहार करता है । उसका व्यवहार बहुमुखी होता है। उन सारे व्यवहारों की व्याख्या करना बड़ा मुश्किल काम है।

आदमी इतना ज्यादा जटिल है कि उसकी कोई व्याख्या नहीं हो सकती।

इसीलिए प्रतिक्रिया को अनेक भागो में बांट दिया गया। प्रश्न आया—प्रतिक्रिया का समय समान होता है या असमान ? कहा गया—प्रतिक्रिया सरल है तो समय कम लगता है। प्रतिक्रिया जटिल है तो समय ज्यादा लगता है। एक जुलूस जा रहा है। उसे बता दिया जाए—लाल झण्डी दिखते ही रुक जाना है। जैसे ही लाल झण्डी दिखेगी, जुलूस रुक जाएगा। साथ में इतना और जोड़ दें—नीली और हरी झंडी दिख जाए तो नहीं रुकना है। प्रतिक्रिया के काल में अंतर आ जाएगा। सरल प्रतिक्रिया है—सामने वाला व्यक्ति कड़वी बात कहे तो तत्काल कड़वी बात कह देना। इसमें सोचना नहीं पड़ता। 'जैसे को तैसा'—प्रतिक्रिया का यह सिद्धान्त गहरा जमा हुआ है इसलिए व्यक्ति यह सोचता ही नहीं है कि मुझे यह कहना चाहिए अथवा नहीं। हमारी यह धारणा बन गई है—यदि कोई मूर्ख कहे तो तत्काल उसे महामूर्ख कह दो। इसमें सोचने की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। व्यक्ति यह सोचे—अमुक व्यक्ति ने मुझे यह कहा तो मुझे क्या कहना चाहिए? इस स्थिति में प्रतिक्रिया का काल लंबा हो जाएगा। जैसे ही प्रतिक्रिया का काल लंबा हुआ, महामूर्ख कहने की क्षमता नहीं होगी।

प्रतिक्रिया-विरति का सूत्र

हम एक संकल्प करवाते हैं—जब जब क्रोध आए तब तब दस मिनट मौन रहें, बोलें नहीं। एक व्यक्ति कह सकता है—दस मिनट बोलना नहीं है तो बाद में बोलूंगा ही क्यों ? दस मिनट बाद बोलने की जरूरत ही नहीं है। बोलूंगा तो पहले ही बोलूंगा, कोई एक गाली देगा तो मैं दो गाली सुनाऊंगा। कोई मूर्ख कहेगा तो मैं महामूर्ख कह दूंगा। दस मिनट बाद बोलने से सारा मजा ही किरकिरा हो जाएगा। वस्तुतः यह प्रतिक्रिया-विरति या मैत्री का सूत्र है—प्रतिक्रिया के समय को लंबाना। प्रतिक्रिया से विरक्त होने का सूत्र है—एक साथ कषाय को न मिटा सको तो कम से कम तत्काल प्रतिक्रिया मत करो। तत्काल प्रतिक्रिया नहीं करते हैं तो बहुत सारी समस्याएं स्वतः समाहित हो जाती हैं। जितना झगड़ा, कलह, गाली-गलौज और संघर्ष होता है, वह तत्काल

प्रतिक्रिया से होता है। यदि प्रतिक्रिया के समय को लंबाया जाए तो सब कुछ शांत हो जाता है, संबंध मैत्रीपूर्ण बने रहते हैं ।

मैत्री का विकास

जीवन का मौलिक सूत्र है प्रसन्न रहना । कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो बहुत खुश रहते हैं और कुछ लोग ऐसे होते हैं, जिनके चेहरे पर कभी खुशी दिखाई ही नहीं देती । ऐसा क्यों होता है? प्रसन्नता जीवन का बहुत बड़ा सूत्र है । प्रसन्न रहने वाला व्यक्ति बहुत सारी कठिनाइयों का अनायास ही पार पा लेता है। पर प्रसन्नता कब संभव है ? मैत्री का विकास हो तो प्रसन्नता संभव है । मन में शत्रुता का भाव बना रहे तो व्यक्ति प्रसन्न नहीं हो सकता। व्यक्ति सोचता है– अमुक व्यक्ति ने मेरा यह कर दिया, अमुक व्यक्ति ने मेरा अपमान कर दिया । मुझे अमुक अमुक व्यक्ति से बदला लेना है । इस बदले की भावना से प्रेरित व्यक्ति के दुश्मनों की सूची लंबी बन जाती है। उसका सारा दिमाग उसी की क्रियान्विति में खप जाता है । इस स्थिति में प्रसन्नता आएगी कहां से? उसे आने का मौका ही नहीं मिलता । बहुत बड़ी साधना है मैत्री की साधना । यह प्रसन्न जीवन का रहस्य-सूत्र है । चिकित्सक बतलाते हैं–प्रसन्न रहो, सैकड़ों बीमारियां स्वतः टल जाएंगी । उदास रहना बीमारियों को निमंत्रण देना है । स्वस्थ और प्रसन्न जीवन जीने का सूत्र है–मैत्री का विकास ।

मैत्री : आत्मानुभूति

मैत्री का अर्थ है–सबमें आत्मानुभूति, सबमें आत्मौपम्य बुद्धि का विकास। आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो–यह ध्यान का सूत्र है । स्वयं की आत्मा को देखना है और दूसरे की आत्मा को भी देखना है । जो एक आत्मा को देखने लग जाता है वह सब आत्माओं को देखने लग जाता है। मैत्री का मतलब इतना ही नहीं है कि हम किसी से झगड़ा न करें । मैत्री का अर्थ है – आत्मानुभूति करना । अपने में जैसे आत्मानुभूति करते हैं वैसे ही दूसरे में

यह अनुभूति करें–'यह भी आत्मा है, परमात्मा है । जैसी आत्मा मेरे में है, वैसी ही आत्मा इसमें है ।' जब यह अनुभूति पुष्ट होती है तब व्यक्ति की धारणा बदल जाती है। जब हमारी अनुभूति बाहरी स्तर पर चलती है तब सामने वाले व्यक्ति के विषय में अनेक विकल्प उठते हैं–यह अच्छा है, यह बुरा है, यह काला है, यह ठग है, यह मूर्ख है आदि-आदि । इस स्तर पर जो व्यवहार होगा, वह भिन्न होगा, वह आत्म-परक नहीं होगा । मैत्री का अर्थ है–हम सब प्राणियों में उसी परम सत्ता का अनुभव करें, जो सत्ता हमारे भीतर विराजमान है । आत्म-तुला का अनुभव ही यथार्थ रूप में मैत्री है ।

ध्यान का परिवार

हम प्रतिक्रिया से मुक्त रहने का अभ्यास करें, मैत्री का विकास करें। इससे प्रेक्षाध्यान की साधना में बहुत बड़ा सहयोग मिलता है । कोरा ध्यान अकेला रहता है । ध्यान का भी एक परिवार है। एक घर के मुखिया का अपना परिवार होता है । चंद्रमा का अपना परिवार है, सूरज का अपना परिवार है । हम सौरमण्डल के किसी भी तारा को देखें, सबका अपना अपना परिवार है । आचार्य का भी अपना परिवार होता है । शिष्य मंडली उसका परिवार है । कुछ लोग शिकायत करते हैं–हमने ध्यान किया लेकिन कुछ हुआ नहीं । हम इस बात पर ध्यान दें–कोरा ध्यान किया और ध्यान के परिवार की उपेक्षा की तो ध्यान का वांछित परिणाम नहीं आएगा । हम केवल ध्यान को ही न अपनाएं, ध्यान के परिवार को भी साथ में अपनाएं । भावक्रिया, प्रतिक्रिया-विरति, मैत्री, मिताहार और मित भाषण–यह सब ध्यान का परिवार है । हम ध्यान के साथ ध्यान के इस परिवार को अपनाएं तो परिणाम अच्छा आएगा, जीवन में बदलाव का अनुभव होगा, ध्यान के प्रति अधिक आकर्षण और आनंद का अनुभव हो सकेगा ।

मिताहार

एक कवि दीपक के सामने खड़ा था । उसने देखा, एक ओर ज्योति जल रही है, दूसरी ओर धुंआ निकल रहा है । कवि के मन में विकल्प उठा, ज्योति के साथ धुआं क्यों ? इस निर्मल और जाज्वल्यमान प्रकाश के साथ यह धूमकलिका क्यों? वह चिन्तन की गहराई में गया, उसे समाधान मिल गया—जो जैसा खाता है, वैसा ही निस्सरण होता है। प्रकाश अंधकार खाता है तो धुआं ही निकलेगा, अंधकार ही निकलेगा।

भोजन : विकास चतुष्टयी

यह एक छोटा सा रूपक, कवि का छोटा सा विकल्प बहुत बड़ी सचाई को उजागर कर रहा है । भोजन के साथ हमारे शरीर और भावनाओं का गहरा संबंध है । हम खाते समय इतना ही न सोचें, पेट की आग को बुझाना है, केवल भूख को शांत करना है। हम भोजन को सर्वांगीण दृष्टि से देखें । भोजन के साथ हमारे जीवन का कितना संबंध है । हजारों वर्ष पहले भी अध्यात्म के आचार्यों और मनीषियों ने भोजन के बारे में बहुत अनुसंधान किए । जीवन के साथ भोजन का जो संबंध है, उस पर बहुत प्रकाश डाला। भोजन की आचार-संहिता बनाकर अनेक नियमों का सृजन किया । भोजन का संबंध जीवन के प्रत्येक पक्ष के साथ बतलाया । ब्रह्मचर्य के साथ भोजन का सम्बन्ध, इन्द्रिय-संयम के साथ भोजन का संबंध, विद्या और मेधा के साथ भोजन का संबंध । भाष्य और चूर्णि साहित्य में इसकी काफी चर्चाएं हुई हैं। किस भोजन से मेधा बढ़ती है और किस भोजन से मेधा घटती है? विद्या, बुद्धि, मेधा, धृति, इन्द्रिय-निग्रह—इन सबके साथ भोजन का संबंध है । इन सारे सिद्धान्तों को संक्षेप में समेटें तो कहा जा सकता है— शारीरिक स्वास्थ्य,

मानसिक स्वास्थ्य, बौद्धिक स्वास्थ्य और भावनात्मक स्वास्थ्य--इन सबके साथ भोजन का संबंध है । दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं--शारीरिक विकास, मानसिक विकास, बौद्धिक विकास और भावनात्मक विकास--इस विकास चतुष्टयी के साथ भोजन का संबंध है।

परिमित भोजन : संतुलित भोजन

विज्ञान की दृष्टि से भोजन का संबंध स्वास्थ्य के साथ है । भोजन की कैलोरी (भोजन की ऊर्जा मापने की शक्ति) कितनी होनी चाहिए ? भोजन में क्या-क्या होना चाहिए? कितनी ऊर्जा मिलनी चाहिए ? मात्रा कितनी होनी चाहिए? इस सारे संदर्भ में विज्ञान ने संतुलित भोजन की बात पर बल दिया। प्राचीन शब्द है परिमित भोजन । आज का शब्द है संतुलित भोजन । वर्तमान खाद्य और पोषक वैज्ञानिकों ने भी भोजन की मात्रा निर्धारित की है । आगम साहित्य में परिमित भोजन की बहुत चर्चा है । उसमें ऊनोदरी की दृष्टि से परिमित भोजन की परिभाषा की गई है । एक व्यक्ति के पूर्ण भोजन की मात्रा निर्धारित की गई बत्तीस कवल। बत्तीस कवल से जितना कम खाया जाता है वह ऊनोदरी है। बत्तीस कवल से एक कवल कम खाना भी ऊनोदरी है, पांच या दस कवल कम खाना भी ऊनोदरी है । भगवती सूत्र का एक पूरा प्रकरण है, जिसमें ऊनोदरी की मात्रा का विशद विवेचन किया गया है ।

मात्रा संतुलित भोजन की

वर्तमान वैज्ञानिकों का तरीका दूसरा है । हम चिकनाई का संदर्भ लें। खाने में चिकनाई की मात्रा कितनी होनी चाहिए? संतुलित और परिमित भोजन की दृष्टि से देखें तो डेढ़ सौ ग्राम चिकनाई की जरूरत है । एक दिन में एक स्वस्थ व्यक्ति को इससे अधिक मात्रा में चिकनाई नहीं खानी चाहिए । चाहे वह चिकनाई चुपड़े हुए फुलके में आए, साग में आए, दूध, दही या घी में आए । परिमित भोजन का यह नियम स्वास्थ्य की दृष्टि से किया गया । संतुलित भोजन की एक तालिका है खाद्य मंत्रालय की । संयुक्त राष्ट्र संघ का जो स्वास्थ्य विभाग है, विश्व स्वास्थ्य संगठन है, उसके द्वारा प्रसारित

तालिकाओं के अनुसार एक आदमी के लिए पचास ग्राम चिकनाई पर्याप्त है। ढ़ाई सौ ग्राम एक व्यक्ति के लिए संतुलित भोजन की मात्रा है ।

आगम सूत्रों तथा व्याख्या ग्रंथों मे तपस्या तथा इन्द्रिय-संयम की दृष्टि से भोजन पर विचार किया गया । संतुलित भोजन की जो वर्तमान तालिका है, उसमें शरीर को केन्द्र मानकर विचार किया गया है । शरीर को कितनी जरूरत है? शरीर के जो अवयव हैं, वे कितना पचा सकते हैं? स्वास्थ्य कैसे सुरक्षित रह सकता है? संतुलित भोजन की तालिका इन सब के आधार पर बनी है ।

स्वास्थ्य और संयम

एक धार्मिक व्यक्ति के सामने केवल स्वास्थ्य का प्रश्न ही नहीं है, संयम का प्रश्न भी मुख्य है । उसके लिए स्वास्थ्य की बात सोचना जरूरी है तो साथ-साथ संयम की बात सोचना भी जरूरी है । स्वास्थ्य कैसे बना रहे ? शक्ति कैसे बनी रहे ? शक्ति कम से कम व्यय कैसे हो ? हम शक्ति को कैसे बचाएं ? स्वाध्याय, ध्यान, चिन्तन और मनन—इन कार्यों में अपनी शक्ति को कैसे लगाएं ? स्वास्थ्य और संयम—इन दोनों दृष्टियों से विचार करना जरूरी है । यदि केवल स्वास्थ्य की दृष्टि से विचार करें और संयम की दृष्टि से विचार न करें तो बात पूरी नहीं होगी । केवल संयम की दृष्टि से विचार करें और स्वास्थ्य की दृष्टि से विचार न करें तो भी बात पूरी नहीं होगी । एक सामान्य आदमी के लिए केवल स्वास्थ्य की तालिका के अंग पर्याप्त हो सकते हैं पर एक साधक के लिए वे पर्याप्त नहीं हैं । उसके लिए स्वास्थ्य और संयम—दोनों का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है ।

जीवन की पद्धति

प्रेक्षाध्यान केवल ध्यान की पद्धति नहीं है । वह एक समग्र जीवन पद्धति है । जीवन कैसे जीया जाए? जीवन के मूल तत्व क्या हों? और उन्हें कैसे जीना है? आदमी किस आधार पर जी रहा है? जीने का मूल आधार क्या है? पहला आधार है, श्वास । जब तक श्वास तब तक जीवन। श्वास नहीं तो जीवन भी नहीं । मूल तत्व है श्वास । दूसरा आधार है—आहार । आदमी

खाता है तो जीता है । खाना बंद कर दे तो वह जी नहीं पाएगा । दो मूलभूत आवश्यकताएं हैं श्वास लेना और खाना । स्थिति यह है--आदमी श्वास लेना भी ठीक नहीं जानता और खाने के बारे में भी उसे पूरा ज्ञान नहीं है । जीवन की इन दो मूलभूत आवश्यकताओं के बारे में भी पूरी जानकारी नहीं है । श्वास अपने आप आता है और खाए बिना मनुष्य का काम नहीं चलता । इसलिए वह श्वास भी लिए जा रहा है और खाए भी जा रहा है किन्तु कैसे श्वास लिया जाए? कैसे खाया जाए? इस विषय की उसे सही जानकारी नहीं है ।

जीवन के लिए महत्त्वपूर्ण है—आहार-विवेक । जन्म के प्रारंभिक क्षण से आहार प्रारंभ होता है और अन्तिम क्षण तक चलता है। एक जन्म से दूसरे जन्म में जाने की गति—अन्तराल गति में भी आहार के क्षण रहते हैं। आहार का अर्थ है, बाहर से लेना । जो बाहर से लिया जाता है उसकी शरीर या मन पर क्या प्रतिक्रिया होगी, इसका विवेक होना आवश्यक है। जो मन को निर्मल करना चाहे वह इस बात को जाने कि कब खाना है, क्या खाना है, कितना खाना है और क्यों खाना है?

आहार से उपजी समस्याएं

हम खाने के बारे में बहुत कम ध्यान देते हैं। न जाने कितने लोग शाकाहार को छोड़ कर अंडे और मांसाहार में चले जाते हैं। स्वास्थ्य के लिए यह अच्छा नहीं है, हानिकारक भी है । ये वृत्तियों पर भी प्रभाव डालते हैं। न जाने कितने लोग मादक वस्तुओं के सेवन में लग जाते हैं। शराब, तंबाकू और जर्दा--ये सब मादक वस्तुएं वृत्तियों को बिगाड़ती हैं । वृत्तियों को ही नहीं, शारीरिक बीमारियों को पैदा करने में भी ये प्रमुख कारण बन रहे हैं । अमेरिका, स्वीडन, कनाडा—इन सब देशों में तंबाकू के विरुद्ध एक आंदोलन सा चल रहा है । तंबाकू कैंसर के लिए बहुत उत्तरदायी है । बहुत लोग जर्दा खाते हैं। कहा जा रहा है-मुंह का कैंसर होने में जर्दा प्रमुख कारण है । भारत सरकार पान-पराग और जर्दे पर प्रतिबंध लगाने की बात सोच रही है । शराब

से लीवर खराब हो जाता है, फेफड़ा खराब होता है । कैंसर होने का यह एक बहुत बड़ा कारण है । शराब और तंबाकू-इन दोनों का कैंसर में बहुत बड़ा योग है ।

कुछ सकारात्मक कदम

भोजन के बारे में जैसे-जैसे जानकारी बढ रही है, लोग घबड़ा रहे हैं। जिन देशों में सिगरेट का भारी प्रचलन था, वहां सिगरेट को छोड़ने का वातावरण बन रहा है । केवल अमेरिका में दो तीन करोड़ लोगों ने सिगरेट पीना छोड़ दिया है । सरकारी स्थानों पर सिगरेट पीना प्रतिबंधित है । स्विट्‌जरलैंड में ऐसी रेलें हैं जहां कोई सिगरेट नहीं पी सकता । सार्वजनिक स्थानों में बैठकर कोई सिगरेट नहीं पी सकता । बाग-बगीचों में बैठकर कोई सिगरेट नहीं पी सकता । अनेक देशों में सिगरेट के लिए काफी प्रतिबंध लगा दिए गए हैं । प्रत्येक सिगरेट के पैकेट पर यह चेतावनी अंकित होती है--सिगरेट पीना स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है । प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों द्वारा ऐसी चेतना जगाई जाती है, जिससे ऐसी आदतें सर्वथा छूट जाती हैं।

चीनी और नमक

भोजन का विषय इतना ही नहीं है । चीनी और नमक का अधिक प्रयोग भी कम खतरनाक नहीं है । प्राकृतिक चिकित्सक चीनी को मीठा जहर कहते हैं । एक जहर वह होता है, जिसे खाते ही व्यक्ति मर जाता है। चीनी वह जहर है जो एक साथ नहीं मारती किन्तु धीरे-धीरे मारती है, मीठे ढंग से मारती है । सामान्यतः लोग चीनी बहुत खाते हैं। चाय पीने का मतलब है चीनी का घोल ही पी लेना । कुछ लोग तो ऐसे होते हैं, जो चीनी के लिए ही चाय पीते हैं । स्वास्थ्य के लिए जरूरी है कि हम सफेद चीनी बिल्कुल ही न खाएं । अगर यह संभव न हो तो कम से कम खाएं । चीनी का कम से कम प्रयोग किया जाए तो स्वास्थ्य की सुरक्षा को बल मिलता है ।

दूसरी समस्या है नमक । हम नमक भी बहुत खाते हैं । गुर्दे की बीमारी

का प्रमुख कारण है ज्यादा नमक खाना । ज्यादा नमक खाने का अर्थ है–गुर्दे और किडनी को खराब करना । आजकल जो हार्ट के स्पेशलिस्ट हैं, वे यह सुझाते हैं–व्यक्ति को दिन में अधिकतम दो ग्राम नमक खाना चाहिए । यदि व्यक्ति एक कचौड़ी खाए तो कितना नमक उसके शरीर में चला जाएगा ? दो ग्राम का पता ही नहीं चलेगा । जो व्यक्ति कचौड़ी, पकौड़ी और भुजिया भी खा लेता है, साग भी खाता है, वह कितना नमक खाता होगा ? लोग गेहूं की रोटी में भी नमक डाल देते हैं, बाजरे की रोटी में भी नमक डाल देते हैं। जब ये सब चटपटी चीजें खाते हैं तो कितना नमक शरीर में जाता है । जहां शरीर को आवश्यकता है एक ग्राम-दो ग्राम नमक की, वहां दिन में पता नहीं, दस-बीस ग्राम या इससे भी अधिक नमक शरीर में पहुंच जाता है । इतनी अधिक मात्रा में नमक खाने का अर्थ है स्वास्थ्य को बिगाड़ना ।

आहार : कुछ प्रयोग

एक प्रेक्षाध्यान साधक को खाने के बारे में ज्ञान करना जरूरी है। और क्या न खाए कितना खाए और कितना न खाए ? कब खाए और कब न खाए? कैसे खाए? इन सारी बातों को सीखना जरूरी है । साधक को चाहिए कि वह प्रयोग भी करे । उपवास एक प्रयोग है । आयंबिल एक प्रयोग है। कम खाना एक प्रयोग है । कम द्रव्य खाना एक प्रयोग है। ये सारे प्रयोग साधना काल में करने चाहिए । प्रेक्षाध्यान शिविर में आयंबिल का प्रयोग कराया जाता है । उसका एक प्रकार यह होता है–२० ग्राम चावल, वह भी कच्चा चावल । और कोरा पानी । दूसरा प्रयोग होता है-अधपका चावल १०० ग्राम और पानी । इस प्रयोग से अनेक लोगों ने भयंकर बीमारियों को मिटाया है। लुधियाना शिविर में डाक्टर गोयल ने दस दिन आयंबिल का प्रयोग किया। वे शुगर की बीमारी से पीड़ित थे । डाक्टर कहते हैं–शुगर की बीमारी में चावल नहीं खाना चाहिए । उस डाक्टर ने १० दिन चावल खाकर आयंबिल का प्रयोग किया, शुगर की बीमारी मिट गई । आयंबिल का प्रयोग, कम खाने का प्रयोग, मात्रा कम लेने का प्रयोग या उपवास का प्रयोग–ये सारे प्रयोग शरीर

के स्वास्थ्य के साथ-साथ मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य के भी महत्त्वपूर्ण हेतु हैं ।

आहार और मौन

आहार के समय प्रयोग करना चाहिए मौन का । आहार के समय बोलना नहीं चाहिए, न हंसना चाहिए और न बातचीत करनी चाहिए। क्योंकि आहार करना भी एक खतरनाक काम है । शरीर की विचित्र व्यवस्था है—आहार नली और श्वास नली—दोनों का ढक्कन एक है। जब हम खाते हैं तब श्वास की नली पर एकदम ढक्कन आ जाता है और जब नहीं खाते हैं तब वह फिर खुल जाती है । यदि हम खाते हुए बातचीत करें, हंसें, उस समय वह नली खुली रह जाए और उसमें अन्न का एक कण भी चला जाए तो व्यक्ति की मृत्यु तक हो जाए। ऐसी घटनाएं घटी हैं। भारत का एक सेनापति जापान गया हुआ था। भोजन करते हुए ऐसा ही कुछ हुआ कि श्वास नली पर ढक्कन नहीं आया और भोजन का कण श्वास नली में चला गया । सेनापति की तत्काल मृत्यु हो गई ।

ध्यान का एक प्रयोगः आहार

आहार के साथ भावक्रिया का प्रयोग भी चलना चाहिए । खाते समय केवल यही ध्यान रहे—मैं खा रहा हूं । आयुर्वेद में कहा गया—तन्मना भुंजीत—खाते समय आहार में ही मन रहे और किसी में मन न रहे। खाते समय घर भी याद आ जाए, दुकान भी याद आ जाए और झगड़ा भी याद आ जाए । खाते समय ध्यान इन सब बातों में उलझा रहे तो केवल खाने की बात संभव नहीं बनती ।

खाना भी ध्यान का एक प्रयोग है । केवल खाना एक साधना है। इसका अर्थ है—कोरा खाना और कुछ नहीं करना । न सोचना है, न विचार और कल्पना करनी है, न योजना बनानी है । कुछ भी न करें। केवल खाएं, मन खाने में लगा रहे । यह साधना का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

खाने की विधि

खाने की विधि है--चबा-चबाकर खाना। आदमी चबाता है खाते समय और पशु चबाता है जुगाली करते समय । पशु पहले खा लेते हैं, फिर उसे चबाते हैं । आदमी ऐसा नहीं कर सकता । उसे खाते समय ही चबाना होता है । खाने के बाद चबाना उसके वश की बात नहीं है । यदि व्यक्ति खाते वक्त चबाता नहीं है तो दांत का काम बेचारी आंत को करना पड़ता है । या दांत पिसाई करे या आंत पिसाई करे । दांत का काम है-पिसाई करना । यदि दांत नहीं करता है तो आंत को करना पड़ता है । बिना चबाए खाना आंत को बिगाड़ने का बड़ा अच्छा तरीका है । इससे आंतें जल्दी खराब हो जाती हैं।

प्रश्न है निष्पत्ति का

आहार हमारे जीवन का महत्त्वपूर्ण पहलू है । भोजन के बारे में विमर्श करते समय हमें उसे अनेक पहलुओं से देखना होगा ।

'शक्तेर्वृद्धिः क्षतेः पूर्तिः, विजातीयस्य निर्गमः ।

लाघवश्च प्रसादश्च, भोजने परिवीक्ष्यताम् ।।

भोजन की ये पांच निष्पत्तियां होनी चाहिए-

१- शक्ति की वृद्धि

२- क्षति की पूर्ति

३- विजातीय का निर्गम

४- लघुता की उपलब्धि

५- प्रसन्नता की प्राप्ति ।

शक्ति की वृद्धि : क्षति की पूर्ति

पहली बात है शक्ति की वृद्धि । हम जो आहार कर रहे हैं वह शक्ति बढ़ाने वाला है या घटाने वाला है ? भोजन का मुख्य काम है शक्ति की वृद्धि।

हम भोजन इसलिए करते हैं कि शक्ति बढ़ जाए।

दूसरी बात है क्षति की पूर्ति । जो शक्ति क्षीण हुई है, उसकी पूर्ति हो जाए । दिमाग को काम करना है तो दिमाग की क्षतिपूर्ति हो जाए। अवयवों को काम करना है तो उनकी क्षतिपूर्ति हो जाए । हम यह सोचें–हम जो भोजन कर रहे हैं, उससे क्षति की पूर्ति हो रही है या नहीं? क्षति की पूर्ति करने वाला भोजन ही हमारे लिए उपयोगी हो सकता है।

विजातीय का निर्गम

तीसरी बात है विजातीय का निर्गम । व्यक्ति एक ओर भोजन कर रहा है किन्तु दूसरी ओर विजातीय मल संचित हो रहा है । महत्त्वपूर्ण बात यह है, जो मल संचित हो रहा है, उसका निर्गमन ठीक हो रहा है या नहीं ? यह एक ऐसी बात है, जो हमारे शारीरिक स्वास्थ्य को ही नहीं, आध्यात्मिक स्वास्थ्य को भी हानि पहुंचाती है । स्वास्थ्य में बहुत बड़ी बाधा है मलों का निर्गमन ठीक न होना । हम खाते हैं, खाने के साथ-साथ मलों का जमाव शुरू होता है । शरीरशास्त्री मानते हैं–इधर भोजन हो रहा है और उधर मलों का जमाव होता चला जा रहा है। बुढ़ापा क्या है? बुढ़ापे का अर्थ है–मलों का जमाव हो जाना । अगर मलों का सम्यक् निस्सरण नहीं हो रहा है तो धमनियां अकड़ जाएंगी, लचीलापन खत्म होने लग जाएगा, बुढ़ापा जल्दी आ जाएगा, चेहरे पर झुर्रियां पड़ जाएंगी, काम करने की शक्ति का ह्रास होने लगेगा।

भ्रान्त धारणा

स्वास्थ्य के लिए भोजन से ज्यादा विजातीय के निर्गमन पर ध्यान देने की जरूरत है । भोजन का एक कालबद्ध क्रम बना हुआ है । सुबह नाश्ता करना है । व्यक्ति रोज़ नाश्ता कर लेता है । दूसरे प्रहर में और शाम को भोजन खाना है और व्यक्ति दोनों समय खाना खा लेता है। कुछ ऐसे भी होते हैं, जो इसके अलावा दिन में अनेक बार चाय और ठण्डा पेय लेते रहते हैं। भोजन करते समय व्यक्ति यह नहीं सोचता– आज पेट साफ नहीं है तो

भोजन नहीं करना है । पेट साफ नहीं है तो गरिष्ठ भोजन नहीं खाना है । गरिष्ठ भोजन से कब्ज ज्यादा बढ़ जाएगी । कुछ लोग इस भाषा में भी सोचते हैं, ज्यादा खाएंगे तो कब्ज नहीं बढ़ेगी । यह एक भ्रान्त धारणा है । कब्ज क्यों होती है ? जो खाया जाता है वह पूरा पच जाता है तो आंते उसे निकाल देती हैं। यदि वह पचता नहीं है तो आंते उसे निकाल नहीं पातीं और कब्ज हो जाती है । कब्ज का कारण है—भोजन का सम्यग् पाचन न हो पाना।

प्राकृतिक चिकित्सा की आधारशिला

हम मलों के निर्गमन पर ध्यान दें । बड़ी आंतें मल को निकालती हैं। पूरे शरीर में मल के निर्गमन की प्रक्रिया है । पसीने से मल निकलता है । गुर्दा मल निकालता है । मुंह और नाक से मल निकलता है । इनसे भी जो ज्यादा सूक्ष्म मल होता है वह धमनियों पर चिपक जाता है। मल के जमाव से एसिड जमा होता चला जाता है, केल्शियम जमा होता चला जाता है । यह केल्शियम ही जल्दी बुढ़ापा लाने का प्रमुख निमित्त है। चूना जमे नहीं, धमनियां कठोर नहीं बनें, रक्त-संचार के पथ में बाधा न आए । इन सबके लिए मलों के सम्यक् निस्सरण पर ध्यान देना जरूरी है।

स्वास्थ्य का महत्त्वपूर्ण सूत्र है--विजातीय का निर्गमन ठीक प्रकार से हो। प्राकृतिक चिकित्सा की आधार-शिला ही यही है । प्राकृतिक चिकित्सा को एक शब्द में, एक ही वाक्य में कहें तो इस प्रकार कहा जा सकता है—जितना मलों का जमाव उतना ही रोग, जितना मलों का सम्यग् निर्गमन उतना ही आरोग्य। आरोग्य का अर्थ है विजातीय तत्वों का जमाव न होना ।

उपवास चिकित्सा का मूल्य

जैन धर्म में उपवास को बहुत मूल्य दिया गया है । जैन लोग आध्यात्मिक दृष्टि से उपवास करते हैं । पश्चिम के लोगों ने उपवास का एक चिकित्सा पद्धति के रूप में विकास किया है । महात्मा गांधी ने इस पर बहुत प्रकाश

डाला है । पश्चिम में इस पद्धति का व्यापक विकास हुआ है । अमेरिका के एक प्रख्यात चिकित्सक हैं डेल्टन । वे उपवास पद्धति के द्वारा रोगों की चिकित्सा करते हैं । उन्होंने भोजन और उपवास के बारे में बहुत अनुसंधान किए हैं । डा. डेल्टन रोगी को दस दिन का, बीस-तीस और पचास दिन तक का उपवास कराते हैं। उन्होंने इस पद्धति से अनेक बीमारियों के सफल इलाज किए हैं। प्राचीन साहित्य में भी उपवास चिकित्सा का वर्णन मिलता है। 'मोय-पड़िमा' यह भी चिकित्सा की एक पद्धति है । व्यवहार भाष्य में बतलाया गया है—जो उपयुक्त विधि से 'मोय पड़िमा' (मूत्र चिकित्सा) करता है, उसका शरीर एकदम नीरोग एवं कंचन जैसा बन जाता है। चिकित्सा की ऐसी अनेक प्रक्रियाएं थीं, जो विस्मृति में चली गईं। पाश्चात्य देशों में इस बारे में काफी खोजें हो रही हैं ।

लघुता : प्रसन्नता

चौथी बात है लघुता । हम स्वयं कसौटी करें--भोजन के बाद दिन भर शरीर में हलकापन रहता है या भारीपन । यदि भारीपन रहता है तो यह मान लें--भोजन ठीक नहीं हुआ, परिमित नहीं हुआ । सबसे बड़ी अनुभूति अपनी कसौटी है । भोजन करने के बाद शरीर टूटता रहता है, आलस्य सताता रहता है, सिर भारी हो जाता है, किसी काम में मन नहीं लगता है तो मानना चाहिए--भोजन स्वास्थ्यकारक नहीं है। केवल खाने के लिए खाया जा रहा है, संज्ञावश खाया जा रहा है। आहार करना एक बात है और आहार-संज्ञा बिलकुल दूसरी बात है। आहार और संज्ञा एक नहीं हैं । आहार हमारी आवश्यकता है। आहार-संज्ञा मोह से प्रभावित चेतना है।

पांचवी बात है प्रसन्नता । भोजन के बाद मन प्रसन्न रहता है, चेतना में निर्मलता जागती है, भावों की शुद्धि रहती है तो मानना चाहिए आहार स्वास्थ्यकारक है । यदि ऐसा नहीं है तो वह स्वास्थ्यकारक नहीं है ।

शक्ति की वृद्धि, क्षति की पूर्ति, विजातीय का निर्गम, लघुता और प्रसन्नता—इन पांचों की उपलब्धि जिस आहार से होती है, वह परिमित आहार है, हितकर आहार है ।

मितभाषण

हमारे सामने अनेक प्रवृत्तियां हैं--खाना,पीना, सोना, चलना आदि। प्रश्न होता है--हम इन सब प्रवृत्तियों में सबसे ज्यादा प्रवृत्ति कौन-सी करते हैं? इस प्रश्न का उत्तर होगा, बोलने का काम सबसे ज्यादा पड़ता है । खाते हैं तो बोलते हुए खाते हैं । चलते हैं तो बोलते हुए चलते हैं । नींद में भी बोलते रहते हैं ।

मूल्य है अल्पभाषिता का

बोलना शायद आदमी के जीवन का सबसे बड़ा काम है । वह जरूरत होती है तो भी बोलता है और जरूरत नहीं होती है तो भी बोलता है। कोई पूछता है तो भी बोलता है । बिना पूछे पंचायती करने वाले भी कम नहीं हैं, बिना मतलब खीर में मूसल डालने वाले भी कम नहीं हैं। व्यक्ति अनावश्यक भी बहुत बोलता है । जीवन दर्शन का मौलिक सूत्र है--वाणी का संयम–मितभाषण। कम बोलना सीखें । जरूरत के बिना बिल्कुल न बोलें। जरूरत होने पर भी बहुत संयत बोलें, सीमित बोलें। जिस व्यक्ति ने कम बोलना शुरू कर दिया, उसने जीवन की गहराई को समझना शुरू कर दिया। जो व्यक्ति जितना ज्यादा बोलता है, उसका जीवन उतना ही छिछला होता चला जाता है । जो ज्यादा बोलता है, उसका मूल्य कम होता है । जो कम बोलता है, उसका बहुत मूल्य होता है । हम कथा साहित्य को देखें । कालिदास बहुत कम बोलता था, पर जब तक कालिदास नहीं बोलता तब तक राजा भोज को संतोष नहीं होता। बीरबल कम बोलता था पर जब तक बीरबल नहीं बोलता तब तक बादशाह अकबर को संतोष नहीं होता । जो कम बोलता है, लोग उसे सुनना चाहते हैं। जो सारे दिन बोलता रहता है, उसे लोग सुनना

पसंद नहीं करते ।

वाणी का संयम बहुत आवश्यक है । साधना काल में मौन करना बहुत अच्छा है । यदि इतना न कर सकें तो कम से कम अनावश्यक बातचीत न करें, घरेलू बातें न करें । व्यापार-व्यवसाय की बात न करें। इस स्थिति में ही साधना की गहराई में पहुंचा जा सकता है।

वस्तुतः बड़ा कठिन होता हे मौन रहना । जब मन में तरंग उठती है, ज्वार आता है तब व्यक्ति से रहा नहीं जाता । पहला अभ्यास यह हो—अनावश्यक न बोलें, बिना मतलब न बोलें, अधिक न बोलें, दिन में कम से कम घंटा, दो घंटा मौन रखें । इतना अभ्यास होता है तो वह जीवन के लिए बहुत अच्छा होता है ।

बिना पूछे न बोले

हमारी प्रवृत्तियों में सबसे पहला स्थान बोलने का है । इस स्थिति में बिल्कुल मौन कर लें, यह हर किसी के लिए संभव नहीं है । प्रश्न होता है—हम वाणी की साधना कहां से शुरू करें ? वाणी की साधना का पहला सूत्र होना चाहिए—बिला पूछे न बोलें । यदि यह संकल्प जाग जाए तो मौन की दिशा में एक सशक्त कदम उठ जाए । हिन्दुस्तान के लोगों में एक बुरी आदत है बिना मांगें सलाह देने की । कोई व्यक्ति बीमार होता है तो ढेर सारी सलाह दे दी जाती है । यदि उन सलाहों को मान लें तो व्यक्ति स्वस्थ होने की बजाय अधिक बीमार हो जाए। स्वस्थ होने का तो प्रश्न ही नहीं आता । यदि कोई बड़ा आदमी बीमार हो जाए तो सलाह देने वालों का तांता लग जाता है । यदि बिना पूछे बोलना, सलाह देना रुक जाए तो मौन का पहला काम हो जाए।

धीरे बोलने का अभ्यास करें

वाणी की साधना का दूसरा सूत्र है—धीरे बोलने का अभ्यास करें। धीरे बोलें, जोर से न बोलें । जोर से बोलने में बहुत शक्ति खर्च होती है । जो

चिन्तनशील लोग हैं, वे प्रायः ज्यादा जोर से नहीं बोलेंगे, शांति और धैर्य के साथ बोलेंगे । धीमे बोलना मौन की साधना का महत्वपूर्ण चरण है ।

अस्वीकार करना सीखें

वाणी की साधना का तीसरा सूत्र है–प्रत्येक मांग को स्वीकार न करें। जब भी बोलने की मांग उठे, हम विवेक चेतना से काम लें। हम यह सोचें–जो बोलने की मांग उभर रही है, उसे पूरा करना चाहिए या नहीं ? उसे पूरा करना आवश्यक है या नहीं ? यह विवेक चेतना जाग जाए तो वाणी के संयम की दिशा में एक कदम और उठ जाए ।

मौन का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि हम न बोलें । मौन का मूल अर्थ है–हमारे बोलने की अपेक्षाएं ही मौन हो जाएं । अपेक्षा इतनी कम हो कि बोलने की जरूरत नहीं रहे । दो साधक मिले । दो घंटे आमने-सामने बैठे रहे । दोनों नहीं बोले, मौन रहे । दोनों आपस में समझ गए । यह है मौन। भगवान् महावीर साढ़े बारह वर्ष तक मौन रहे अर्थात् मितभाषी रहे । वे बहुत नहीं बोलते थे । विशिष्ट प्रतिमाधारी और जिनकल्प की साधना करने वाले व्यक्ति भी मितभाषी होते हैं। ऐसा नहीं कि वे बोलते ही नहीं । वे बोलते हैं, किन्तु अत्यन्त अपेक्षित। मौन का अर्थ ही है–अपेक्षाओं को कम कर देना, बोलने की जरूरत को कम कर देना ।

भावशुद्धि बनाए रखें

वाणी की साधना का चौथा सूत्र है–भावशुद्धि । भावात्मक अशुद्धि लाने वाली बातें न हों। चुगली, घृणा या ईर्ष्या फैलाने वाली बातें न हों। बिना जानकारी न बोलें । लोग किसी बात की पूरी जानकारी किए बिना अटकलबाजियां लगाते हैं, अफवाहें फैलाते हैं और वस्तुतः बात कुछ होती ही नहीं । ऐसी अफवाहें फैला देते हैं, जिनका कोई सिर-पैर नहीं होता । भावनात्मक दृष्टि से अशुद्धि लाने वाली इन बातों का वर्जन वाक्संयम के लिए अनिवार्य होता है ।

बिना पूछे न बोलें, धीरे बालें, विवेक पूर्वक बोलें, भावशुद्धि बनाए रखें—ये चार शर्तें पूरी होती हैं तो मान लेना चाहिए—मितभाषण का अभ्यास सधा है।

मौनः अनेक अर्थ

मौन के अनेक अर्थ होते हैं । प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में मौन के दो अर्थ हैं—एक मौन है होठ से न बोलना और एक मौन है निर्विकल्प रहना।

अजल्पनं भवेद् मौनं, मौनं स्यादल्पजल्पनम् ।

अविकल्पनमेवापि मौनमन्तर् उदाहृतम् ।।

होठ से न बोलना मौन है, कम बोलना भी मौन है, निर्विकल्प अवस्था में चले जाना अन्तर्मौन है ।

एक शब्द आता है काष्ठा-मौन । मौन की पराकाष्ठा है—इशारा न करना, हाव-भाव और संकेत भी न करना । वस्तुतः काष्ठामौन का अर्थ इतना ही नहीं है । यह एक स्थूल अर्थ है । प्रेक्षाध्यान की भाषा में अंतर्मौन है-स्वरयंत्र को निष्क्रिय बना देना । न स्मृति, न चिन्तन और न कल्पना । यह अंतर्मौन ही मौन की पराकाष्ठा है ।

मौन का यह विश्लेषण एक साधक के लिए ही नहीं,सामान्य आदमी के लिए भी बहुत उपयोगी है ।

उपसंपदाः जीवन दर्शन

जीवन की सफलता के लिए जिस जीवन दर्शन की जरूरत है, उसके मूल सूत्र उपसंपदा में उपलब्ध हैं । प्रेक्षाध्यान की साधना में इन सब सूत्रों का अभ्यास अपेक्षित है । प्रेक्षाध्यान को सीखने का अर्थ केवल ध्यान सीखना ही नहीं है किन्तु जीवन की सफलता को सुनिश्चित बनाने वाले मौलिक सूत्रों का प्रयोग करना भी है । मैं मानता हूं—जो व्यक्ति प्रेक्षाध्यान की साधना में आता है, वह जीने का एक नया तरीका सीख लेता है । यदि इन सूत्रों पर ध्यान दें, इनका निरन्तर अभ्यास करें तो एक संस्कार बनेगा, जागरूकता

बढ़ेगी, जीवन को समझने का मौका मिलेगा । जीवन को समझने का अर्थ है–अपने आपको समझना और अपने आपको समझने का अर्थ है–जीवन को समझना । जिसने जीवन को समझ लिया, अपने आपको समझ लिया, वह प्रेक्षाध्यान के उद्देश्य के निकट पहुंच गया । इस दिशा में हमारा पुरुषार्थ और पराक्रम नियोजित हो तो निश्चित ही हम जीवन की सार्थक दिशा का उद्घाटन करने में सफल बन जाएंगे ।

अर्हम्

प्रेक्षा-ध्यान के अभ्यास - काल में सबसे पहले अर्हम् की मंगल भावना की जाती है । यह एक शक्तिशाली मंत्र है । यह हमारी प्राणशक्ति को शक्तिशाली बनाने वाला और अर्हता का बोध कराने वाला है।

शक्ति-संवर्धक मंत्र

अर्हम् विद्यमान शक्तियों को बढ़ाने का मत्र है । हम इस मंत्र के माध्यम से प्राणशक्ति का अनुभव करते हैं–हम कमजोर नहीं हैं, दीन-हीन नहीं हैं । हम शक्ति-संपन्न हैं और अपनी शक्ति का उपयोग प्रत्येक क्षेत्र में कर सकते हैं ।

प्रेक्षा-ध्यान का एक अर्थ होता है–निश्चय पर पहुंच जाना। 'अर्हम्' हमें निश्चय पर पहुंचाता है, निश्चय पर पहुंचने के लिए सहयोग करता है । ध्यान का प्रारंभ करने से पूर्व 'अर्हम्' की ध्वनि की जाती है । इसका भी कारण है। आदमी बाहरी शक्ति से प्रभावित होता है । हमारी प्राणशक्ति को प्रभावित करने वाला सबसे महत्त्वपूर्ण उपाय है–ध्वनि तरंग । भिन्न-भिन्न ध्वनियों की भिन्न-भिन्न तरंगें होती हैं । उनका प्रभाव भी एक जैसा नहीं होता ।

ध्वनिगत मीमांसा

हम जितनी बार बोलते हैं उतनी ही बार बोलने के प्रकंपन भिन्न-भिन्न होते हैं । हम यह नहीं जानते कि अक्षर कहां से बोले जा रहे हैं । संस्कृत के भाषाविदों ने प्रत्येक उच्चारण का स्थान निर्धारित किया है । हमारे शरीर में उच्चारण के भिन्न-भिन्न स्थान हैं । हम 'अर्हम्' शब्द के उच्चारण की मीमांसा करें । 'अ' का उच्चारण कंठ से होगा, 'र' का उच्चारण मूर्धा से

होगा, 'ह' का उच्चारण कंठ से होगा और 'म' का उच्चारण होठ से होगा। हम 'म' का उच्चारण करेंगे, होठ बंद हो जायेंगे।

जैन रामायण में 'राम' शब्द की ध्वनिगत मीमांसा करते हुए कवि ने उसे आध्यात्मिक पुट इस प्रकार दिया है-

'रा' उचरता मुख थकी पाप पलाई जाय।
मत फिर आये तेहथी ममो किवाडी थाय।

-'रा' का उच्चारण करते ही मुख खुलता है और उससे सारे पाप बाहर निकल जाते हैं। 'म' का उच्चारण करते ही होठ बंद हो जाते हैं, मुंह बंद हो जाता है, फिर पाप भीतर नहीं घुस सकता। 'म' कपाट का कार्य करता है।

उच्चारण के स्थान

ध्वनिशास्त्र और उच्चारणशास्त्र के अनुसार हमारे शरीर में उच्चारण के आठ स्थान हैं-

(१) उर
(२) कण्ठ
(३) शिर
(४) जिह्वामूल
(५) दंत
(६) नासिका
(७) ओष्ठ
(८) तालु

आज के विद्यार्थी भी इन पर ध्यान नहीं देते। स्थानों के आधार पर उच्चारण में भेद पड़ता है और उच्चारण की भिन्नता से अर्थ बदल जाता है।

शब्द-भेद की समस्या

संस्कृत में तीन प्रकार के सकार माने जाते हैं—तालव्य, मूर्धन्य और दन्त्य। इन तीनों के उच्चारण के तीन स्थान हैं—तालु, शिर और दांत। उच्चारण के भेद से ही शब्द-भेद समझा जा सकता है। संस्कृत में दो शब्द

हैं-शकृत् और सकृत् । दोनों के दो अर्थ हैं और उनमें आकाश-पाताल का अन्तर है । सकृत् का अर्थ है--एक बार और शकृत् का अर्थ है--मल । इसी शब्द-भेद से होने वाले अर्थभेद को ध्यान में रखकर एक पिता ने अपने पुत्र से कहा--बेटे ! कुछ पढ़ो या न पढ़ो पर व्याकरण अवश्य पढ़ना । उसने पूछा--क्यों ? पिता ने कहा--व्याकरण के बिना शकल और सकल तथा शकृत् और सकृत् में भेद कर पाना सरल नहीं होगा । शकल का अर्थ है--टुकड़ा और सकल का अर्थ है पूरा, सम्पूर्ण । इसी का वाचक है यह श्लोक--

> यद्यपि बहुनाधीसे तथापि पठ पुत्र ! व्याकरणम् ।
> स्वजनः श्वजनो मा भूत्, सकलं शकलं सकृत् शकृत् ।।

शब्द-भेद को जाने बिना उच्चारण में भेद नहीं डाला जा सकता। उच्चारण के भेद के बिना अर्थ-भेद नहीं समझा जा सकता । जब उच्चारण में भेद नहीं रहता तब अर्थ-भेद भी मिट जाता है और प्रकंपन-भेद भी मिट जाता है। उच्चारण के जितने भी स्थान हैं, उन स्थानों से अलग-अलग प्रकार के ध्वनि-प्रकंपन होते हैं । जो अक्षर होठ से बोला जाएगा, उसका प्रभाव भिन्न होगा और जो अक्षर कंठ से बोला जाएगा, उसका प्रभाव भिन्न होगा ।

अर्हम् : ध्वनिशास्त्रीय मीमांसा

जब हम 'अ' का उच्चारण करते हैं तब विद्युत् केन्द्र सक्रिय बनता है। यह कंठ का स्थान है, थाइराइड का स्थान है । यह चयापचय के लिए उत्तरदायी है । यहां के स्राव का असर मन और शरीर पर होता है । यह चन्द्रमा का स्थान है, मन का स्थान है ।

'ह' का प्रभाव होता है मस्तिष्क के अगले हिस्से पर, शान्ति केन्द्र पर। शरीरशास्त्र की दृष्टि से यह हाइपोथेलेमस का स्थान है । यह महत्त्वपूर्ण चेतनाकेन्द्र है । यह भावना का स्थान है, भावना का स्रोत है। यह सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर का केन्द्र- बिन्दु है । यह प्राचीन भाषा में हृदय का स्थान है । कहा जाता है--हृदय परिवर्तन करो। इसका अर्थ धड़कने वाला हृदय नहीं

है । यह हृदय एक मांसपेशी है । इसको क्या बदलना ? इसका काम है रक्त का पंपिंग करना। बदलना उस हृदय को है, जो यथार्थ में हृदय है, मध्यवर्ती है। 'ह' का उच्चारण उसे प्रभावित करता है ।

'म' के उच्चारण से होठ प्रभावित होता है । होठ उदान-प्राण का केन्द्र है । उदान एक प्राणशक्ति है । यह सिद्धि देने वाली शक्ति है । उदान जागृत होती है तो सिद्धियां प्राप्त होती हैं । मौन करने का अर्थ न बोलना ही नहीं है । मौन करने का अर्थ है उदान प्राणशक्ति को विकसित करना । मौन में दोनों होठ बंद रहने चाहिए । ध्यान के समय भी दोनों होठ बंद रहने चाहिए। मौन से उदान प्राणशक्ति मिलती है। मकार के उच्चारण का भी यही प्रयोजन है ।

अर्हत् का बीजमंत्र

अर्हं हमारा इष्ट है । यह अर्हत् का बीजमंत्र है । प्रत्येक मनुष्य में असीम क्षमताएं होती हैं । जिसमें अपनी क्षमताओं को प्रगट करने की अर्हता जग जाती है, जो दूसरों की अर्हता को जगाने में लग जाता है, वह अर्हत् होता है ।

भगवान् महावीर अर्हत् थे । अर्हं भगवान् महावीर का प्रतीक है। आनन्दकेन्द्र थाइमस-ग्रन्थि का प्रभाव क्षेत्र है । अर्हं उसको जगाने वाला मंत्र है । यह इसका सूचक है कि हमारे भीतर पदार्थातीत आनन्द का स्रोत बह रहा है । हम आनन्दकेन्द्र में अर्हं का ध्यान कर स्थायी आनन्द का अनुभव कर सकते हैं । इस आनन्द के प्रगट होने पर मानसिक तनाव कभी नहीं होता ।

अर्हं : निष्पत्ति

एक प्रश्न है- अर्हं क्या है ? और इसकी निष्पत्ति क्या है ? अर्हं एक शक्तिप्रदाता बीजमंत्र है और उसमें निहित है—

१. अस्तित्व की स्मृति ।

२. इष्ट की स्मृति ।
३. सहज आनंद की जागृति का सूत्र।
४. मानसिक तनाव को दूर करने की अर्हता ।
५. मनोकायिक रोगों से सुरक्षा की क्षमता ।
६. विकल्प-मुक्ति का प्रशस्त पथ ।
७. दाएं-बाएं पार्श्व में विद्यमान चैतन्यकेन्द्रों को जागृत करने की क्षमता ।

अर्हं का स्वरूप

'अ' कुंडलिनी (तैजस शक्ति) का स्वरूप है ।

'र' अग्निबीज है । इससे बुरे संस्कार नष्ट होते हैं ।

'ह' आकाशबीज है । इससे चिदाकाश का अनुभव बढ़ता है।

'म' एक झंकार है । इससे ज्ञानतन्तु सक्रिय बनते हैं ।

अर्हं के सभी वर्ण बहुत शक्तिशाली हैं इसीलिए यह एक शक्तिसंपन्न मंत्र है । आनन्दकेन्द्र में सूर्य जैसे तेजस्वी अर्हं का ध्यान करें । वहां निरन्तर उसका अनुभव करें । जैसे-जैसे निरन्तरता बढ़ेगी, अपने में अर्हं की अनुभूति विकसित होगी । पूरा व्यक्तित्व चैतन्यमय, आनन्दमय और शक्तिमय बन जाएगा ।

साधना का रहस्य

अर्हं के कवच का निर्माण करें । तैजसकेन्द्र में सुनहरे रंग के कमल के मध्य अर्हं का ध्यान करें । फिर अनुभव करें—उसकी रश्मियां शरीर के चारों ओर फैल रही हैं । पूरे शरीर के चारों ओर एक कवच बन रहा है । नौ बार उस कवच का अनुभव करें । भावना करें—कोई भी अनिष्ट शक्ति उसके भीतर प्रवेश नहीं कर सकेगी । यह आध्यात्मिक कवच बाहरी दुष्प्रभावों से बचाने में बहुत सक्षम है । साधना का रहस्य है—अर्हं के प्रति प्रणिति ।

आसन

मनुष्य ने जिस दिन यह जाना—जगत् द्वन्द्वात्मक है। इसमें सुख- दुःख, लाभ-अलाभ आदि द्वन्द्व हैं। द्वन्द्वातीत स्थिति या समता में जाया जा सकता है। उसने द्वन्द्वातीत स्थिति में जाने की खोज शुरू की । उस खोज में जो उपाय प्राप्त किए, उनमें एक उपाय है—कायक्लेश या कायसिद्धि। आसन काय-सिद्धि का एक अंग है । समता की प्राप्ति के लिए कायसिद्धि और कायसिद्धि के लिए आसन के प्रयोग किये जाते हैं।

मूलाराधना में बाह्य तप के पांच परिणाम बताए हैं। उनमें एक परिणाम है सुख-दुःख में सम रहने की स्थिति। पतंजलि ने भी इसका लाभ बताया है-द्वन्द्वों के अभिघात से बचाव—ततो द्वन्द्वाभिघातः । आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से मूलतः आसनों का विकास धार्मिक दृष्टि से किया गया । उसका विकास होते-होते अनेक तत्व जुड़ गए। शारीरिक या मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी उनका विकास किया गया ।

आसन और आहार

आसन के साथ आहार का गहरा सम्बन्ध है । आहार विजय होने पर ही आसन सिद्ध हो सकता है । जैन साधना पद्धति में पहले आहार विजय का विवेक—अनशन, ऊनोदरी, अभिग्रह और रसपरित्याग की बात कही गई है । इसके बाद आसन-सिद्धि की बात बतलाई गई है। अतिमात्रा में खाने वाला आसन को सिद्ध नहीं कर सकता । आसन के साथ तामसिक भोजन की वर्जना की जाती है । आसन-सिद्धि के लिए आहार-सिद्धि की अनिवार्यता है ।

नियम आसन का

आसन का नियम सबके लिए एक नहीं है । वज्रासन भोजन के तत्काल बाद किया जा सकता है किन्तु सर्वांगासन तत्काल नहीं किया जा सकता । साधारणतया आसन करने का समय प्रातःकाल है । भोजन के तीन-चार घंटे के बाद भी आसन किए जा सकते हैं । ध्यानासन भोजन के एक घंटे बाद कभी भी किए जा सकते हैं ।

आसन कहां करना चाहिए, इस विषय में प्राचीन निर्देश प्राप्त हैं। शुद्ध, स्वच्छ स्थान और वातावरण में आसन करणीय माने जाते हैं। प्रदूषित वातावरण में आसन वर्जनीय हैं । अधिक सीलन भरा स्थान या गंदगी भरा स्थान आसन के लिए उपयुक्त नहीं है ।

आसन करते समय देश, काल, वेशभूषा और पद्धति पर विशेष रूप से ध्यान रखना चाहिए । आसन काल में ऊनी कंबल का बिछौना उपयोगी माना गया है। ऊन नीचे जाने वाली ऊर्जा को रोक लेती है । बिछौना गद्देदार या अधिक कोमल नहीं होना चाहिए । कपड़े भी ढ़ीले होने जरूरी हैं । कपड़े अधिक भी नहीं होने चाहिए ।

आसन : प्रत्यासन

आसन की पद्धति का ज्ञान भी जरूरी है क्योंकि आसन के साथ प्रत्यासन (विपरीत आसन) भी आवश्यक है । यदि आसन की विधि में त्रुटि हो जाती है तो उसका दुष्परिणाम अवश्य होता है । इसलिए पूरा रहस्य समझे बिना, पद्धति का पूरा ज्ञान किए बिना आसन करना खतरे से खाली नहीं है । किस स्थिति में कौन-सा आसन करना चाहिए और किस क्रम से करना चाहिए और किस आसन का कौन सा प्रति-पक्षी आसन करना चाहिए, यह सारा जान लेने के बाद ही आसन करना उचित है । आसन का चुनाव किसी अनुभवी आसन-विशेषज्ञ की देख-रेख में करना चाहिए । शक्ति का तारतम्य,

शारीरिक अवस्था, देश, काल, रोग आदि अनेक स्थितियों को ध्यान में रखकर ही आसन का चुनाव करना चाहिए ।

आसन का समय

आसनों के लिए समय का निर्धारण सबके लिए समान नहीं होता। शक्ति और शारीरिक अवस्था के आधार पर ही उनका निर्धारण किया जा सकता है । सामान्यतया बीस मिनट या तीस मिनट आसन का प्रयोग पर्याप्त है । यह एक साथ भी किया जा सकता है या कई खंडों में भी किया जा सकता है । कभी पांच मिनट, कभी दस मिनट, इस प्रकार अलग-अलग भी किया जा सकता है । उदाहरणस्वरूप कभी हाथ का, कभी गर्दन का, कभी पैर का आसन करना चाहिए ।

आसन की विधि

जैन योग के अनुसार आसन करने की विधि यह है कि पहले लेटकर, फिर बैठकर और अंत में खडे होकर आसन किये जाते हैं । लेटने की अपेक्षा बैठने में और बैठने की अपेक्षा खड़े रहने में शक्ति अधिक लगानी पड़ती है। जिन आसनों में कम शक्ति लगानी पड़े, उन आसनों को दुर्बल व्यक्ति भी कर सकता है । लेटकर किये जाने वाले आसन (उत्तानशयन, पार्श्वशयन आदि) बहुत उपयोगी होते हैं । वे सरल हैं और हर अवस्था में किए जा सकते हैं।

रीढ की हड्डी का लचीलापन और आसन

मनुष्य की रीढ की हड्डी अनेक बातों के लिए जिम्मेदार है। स्वास्थ्य का मूल है रीढ की हड्डी का लचीला होना । शक्ति का मूल है रीढ़ की हड्डी का लचीला होना । रीढ़ की हड्डी जैसे-जैसे कठोर होती जाती है, स्वास्थ्य भी बिगड़ता जाता है, आयु घटती जाती है और शक्तियां क्षीण होती जाती हैं। रीढ की हड्डी के लचीलेपन के बिना दीर्घ आयुष्य, अच्छे स्वास्थ्य और प्रचुर शक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती।

पृष्ठरज्जु हमारे शरीर का मुख्य अवयव है । उसको लचीला रखना आवश्यक है । चेतना के सभी केन्द्रों का संबध पृष्ठरज्जु से है । शरीर के मुख्य नाड़ी-संस्थान का यही केन्द्र है । यही हमारे रूपान्तरण का माध्यम बनता है । हमारी दायीं-बायीं प्राणशक्ति का इससे संबंध है । यदि इसे पकड़ लिया जाता है तो सारा मार्ग स्पष्ट हो जाता है ।

प्रेक्षाध्यान की प्रक्रिया का एक प्रयोग है--अन्तर्यात्रा । अन्तर्यात्रा का प्रयोग रीढ की हड्डी को साधने का प्रयोग है । हठयोग में माना जाता है कि कुंडलिनी का यही रास्ता है। इसी रास्ते से कुंडलिनी नीचे से ऊपर जाती है। तैजसशक्ति, प्राणशक्ति भी इसी रास्ते से ऊपर जाती है । चैतन्य केन्द्रों के सक्रिय होने पर साधना का विकास होता है, व्यक्ति का व्यक्तित्व बदलता है, अन्तर्दृष्टि जागती है, उसका रास्ता भी यही है । सुषुम्ना का मार्ग भी यही है। अतः कई दृष्टियों से मस्तिष्क की अपेक्षा रीढ़ की हड्डी का महत्त्व अधिक है।

जरूरी है आसन

आसन करना अत्यंत जरूरी है । यदि हम शरीर के पूरे अवयवों का आसन न भी कर सकें तो शरीर के महत्त्वपूर्ण अंगों के लिए आसन अवश्य करें । शरीर के पांच महत्त्वपूर्ण अंग हैं-

१. मस्तिष्क

२. पृष्ठरज्जु

३. हृदय और फेफड़ा

४. पेट

५. पैर।

हम विश्राम की बात न सोचें। आज श्रम न करना बड़प्पन का मानदंड बन गया है । जीवन के लिए श्रम जरूरी है । आराम का सिद्धान्त मानसिक मूल्य मात्र है । जिन व्यक्तियों को शारीरिक श्रम कम करना पड़ता है, वे

व्यक्ति दूसरा विकल्प अवश्य सोचें । यह विकल्प हो सकता है—आसन का । जो लोग श्रम अधिक करते हैं, उनके लिए आसन जरूरी न भी हों पर श्रम न करने वालों के लिए तो वे अनिवार्य हैं।

हम आसन के द्वारा शरीर को उचित श्रम देते हैं और उसके द्वारा हमारे भीतर नई शक्ति का संचार होता है । आज का व्यक्ति अत्यंत व्यस्त जीवन जी रहा है । उसके पास समय कम है । इस स्थिति में भी उसे कुछ न कुछ आसन करने ही चाहिए । अन्यान्य आसन वह कर सके या नहीं, अधिक समय लगा सके या नहीं, प्रत्येक व्यक्ति को कम से कम 'बद्ध-पद्मासन' का अभ्यास कर ही लेना चाहिए। यह आसन बहुत महत्त्वपूर्ण है ।

दो महत्त्वपूर्ण आसन

एक प्रश्न होता है, प्राचीन काल में चौरासी हजार आसन प्रचलित थे। एक व्यक्ति इतने आसन कैसे करे? वह एक एक आसन के लिए एक-एक मिनिट भी लगाए तो उसे चौरासी हजार मिनिट लगाने होते हैं । सारा दिन उसे आसनों में ही बिताना पड़ेगा । और-और काम वह फिर कैसे करेगा? कहा गया—चौरासी हजार आसन न सही, चौरासी आसन करे। चौरासी आसन भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए कैसे संभव हैं? कहा गया—चौरासी हजार या चौरासी या दस-बीस-इन संख्याओं को छोड़ दें, केवल दो आसन प्रत्येक व्यक्ति करे। एक है—बद्ध-पद्मासन और दूसरा है—कायोत्सर्ग या शवासन ।

बद्ध-पद्मासन बहुत उपयोगी आसन है । यह रीढ़ की हड्डी के लिए, पेट, फुफ्फुस, हृदय तथा घुटनों के लिए बहुत उपयोगी है । जब फुफ्फुस ठीक काम करता है तब रक्त-संचार ठीक होने लग जाता है। जब रक्त दूषित होता है तब शरीर में विकृति आती है, विचार विकृत बनते हैं । क्योंकि वह दूषित रक्त नाड़ियों में जाता है और सारे अवयव शिथिल हो जाते हैं, खराब हो जाते हैं । रक्त को साफ करना हृदय का काम है । प्राणवायु से रक्त शुद्ध

होता है और प्राणवायु को पहुंचाता है नाक । हम श्वास लेते हैं और वही प्राणवायु का साधन बनता है। प्राण वायु को उपयोग में लेने का काम है फेफड़ों का ।

हमारे भीतर विष जाते हैं । हृदय और फेफड़े ठीक काम करते हैं तब ये विष बाहर निकल जाते हैं । बद्ध-पद्मासन फेफड़ों की स्वस्थता का प्रमुख हेतु बनता है ।

ध्यान और आसन

प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति सर्वांगीण पद्धति है । शारीरिक, मानसिक और भावात्मक—सभी विकास परस्पर जुड़े हुए हैं । ध्यान का पाचन-तंत्र पर प्रभाव होता है, अग्नि मंद होती है । आसन के प्रयोग द्वारा उस समस्या का निराकरण किया जा सकता है ।

पाचन, रक्त-संचार आदि व्यस्थित होते हैं तभी ध्यान में मन लग सकता है । आसन के द्वारा उन्हें व्यवस्थित रखा जा सकता है ।

आसन के द्वारा विभिन्न चैतन्य-केन्द्र जागृत होते हैं तथा ग्रंथितंत्र प्रभावित होता है । वह प्रभाव वृत्तियों के परिवर्तन में भी सहयोगी बनता है । उदाहरणस्वरूप क्रोध की वृत्ति को अनुशासित करने के लिए शशांक आसन आवश्यक है । सर्वांगासन से अनेक वृत्तियां अनुशासित होती हैं । जो ध्यानासन (सिासन, पद्मासन, वज्रासन, सुखासन आदि) हैं, वे भी ध्यान के लिए उपयोगी हैं ।

आसन और व्यायाम

आसन शरीर के सर्वांगीण विकास की प्रक्रिया है, साथ-साथ चैतन्य केन्द्रों के जागरण की भी प्रक्रिया है । व्याम मुख्यतः शरीर के विकास की प्रक्रिया है। आसन शक्ति-जागरण के सूक्ष्म अभ्यास हैं। व्यायाम शक्ति-जागरण का स्थूल अभ्यास है। आसन के साथ श्वास की क्रिया या प्राणायाम का योग रहता है किंतु व्यायाम में इन पर ध्यान नहीं दिया जाता ।

आसन : आध्यात्मिक उद्देश्य

अध्यात्म की भूमिका में आसन करने का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए—कर्म निर्जरा। निर्जरा के लिए तपस्या के बारह प्रकार निर्दिष्ट हैं। उनमें कायक्लेश पांचवां प्रकार है। आसन उसी का एक अंग है। निर्जरा के साथ प्रासंगिक रूप में शारीरिक स्वास्थ्य भी प्राप्त होता है, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य भी उपलब्ध होता है।

अपना दर्शन अपने द्वारा

'आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो' इस सूत्रोच्चारण के साथ ध्यान का प्रयोग प्रारम्भ हुआ और ध्यान सम्पन्न हो गया । एक साधक ने पूछा--क्या आत्मा के द्वारा आत्मा को देखने की बात व्यावहारिक है? क्या यह संभव है?

दो समस्याएं

ज्ञानं ममेन्द्रियाधीनं , जीवनं सामुदायिकम् ।

तत्रात्मनात्मनो दर्शः, कथं स्यात् सार्थकं प्रभो ! ।।

साधक ने कहा--मेरा ज्ञान इन्द्रियों के अधीन है । मैं जो कुछ भी जानता हूं, वह पांच इन्द्रियों और मन के द्वारा जानता हूं । यदि उन्हें छोड़ दूं तो ज्ञान की सारी सामग्री कहां से आएगी ? कच्चा माल कहां से आएगा? जगत् के साथ हमारे संपर्क का एक मात्र साधन है इन्द्रियां। दुनियां में पांच विषय हैं और पांच इन्द्रियां हैं । इन्द्रियों के विषय का नाम है अर्थ । अर्थ पांच हैं-शब्द, रूप, गंध, रस और स्पर्श। इनको जानने के लिए पांच इन्द्रियां हैं-श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय । ये अपने अपने निश्चित अर्थ को जानने एवं पहचानने वाली हैं । इस स्थिति में आत्मा के द्वारा आत्मा को देखें, यह बात कैसे संभव हो सकती है ?

दूसरी समस्या यह है--हमारा जीवन समूह का जीवन है। यदि आदमी अपने आपको देखने लग जाए तो वह स्वार्थी बन जाएगा । सामूहिक जीवन में दूसरे को भी देखना होता है, दूसरे व्यक्ति की परेशानियों और कठिनाइयों को समझना होता है । व्यक्ति समाज में जीए और अपने आपको देखने वाला निरा स्वार्थी बन जाए तो समुदाय ठीक तरह से नहीं चल पाएगा । कहना

यह चाहिए था–दूसरे को देखो । यदि ध्यान का यह पहला सूत्र होता तो हमारे लिए बहुत व्यावहारिक बनता। जहां समूह का जीवन है वहां अपने आपको देखने की बात कैसे उपयोगी हो सकती है ?

शक्तिशाली तर्क

यह एक शक्तिशाली तर्क है पर कोई भी तर्क ऐसा नहीं होता, जिसके सामने कोई प्रतितर्क न हो सके । जहां अनुभव का प्रश्न है वहां प्रति-अनुभव नहीं होता क्योंकि उसमें सत्य का साक्षात्कार है । जैनेन्द्र जी प्रायः कहते थे--ध्यान करने वाला व्यक्ति आत्मरति हो जाता है । वह अपने आप में रमण करने लगता है और समाज से कट जाता है इसलिए समाज के लिए वह उपयोगी नहीं बनता । जैनेन्द्रजी एक शिविर में तीन सप्ताह तक रहे पर अपनी इसी अवधारणा के कारण वे ध्यान के प्रयोग में कभी नहीं आए ।

इन्द्रियां और ज्ञान

'आत्मा के द्वारा आत्मा को देखो' - इस सूत्र के संदर्भ में दो प्रश्न हमारे सामने हैं । पहली बात है - ज्ञान इन्द्रियाधीन है, यह एक भ्रान्ति है। हम भ्रान्ति को तोड़ें । यह ज्ञान की सीमा नहीं है । इन्द्रियां ज्ञान का आदि-बिन्दु है पर वह ज्ञान की सीमारेखा नहीं है । हमें इन्द्रियों की सीमा से परे जाकर ध्यान करना है, अतीन्द्रिय चेतना की सीमा में पहुंचकर ध्यान करना है। इसका अर्थ है–जो ज्ञान है, वह इन्द्रियाधीन ही नहीं है किन्तु इन्द्रियों से परे भी है। इन्द्रियों से परे है मन, मन से परे है बुद्धि और बुद्धि से परे जो है, वह है परमात्मा ।

इन्द्रियाणि पराण्याहु, इन्द्रियेभ्यो परं मनः ।

मनसस्तु परा बुद्धिः, यो बुद्धेः: परतस्तु सः ।।

ध्यान के लिए इन्द्रियों की सीमा को लांघना आवश्यक है । ध्यान वही व्यक्ति कर सकता है, जो इन्द्रिय , मन और बुद्धि की सीमा को तोड़कर प्रज्ञ. की सीमा में प्रवेश कर जाता है ।

महत्त्वपूर्ण सूत्र

यह सत्य है--जहां समाज है वहां दूसरों को देखे बिना काम नहीं चलता। किन्तु इससे भी बड़ा सच है–जो व्यक्ति अपने प्रति जागरूक नहीं होता, वह दूसरों के साथ कभी अच्छा व्यवहार नहीं कर सकता। जो अपने आपको देखने की जितनी अधिक साधना करेगा, वह मानवीय व्यवहार के प्रति उतना ही अधिक जागरूक बनेगा । बड़े बड़े महापुरुषों ने प्राणीमात्र के साथ जो तादात्म्य जोड़ा, क्या वह दूसरों को देखने से संभव बना ? सामुदायिक जीवन का प्रश्न हो या इन्द्रियों के अधीन ज्ञान की सीमा का प्रश्न । हम इस दिशा में बहुत आगे बढ़ सकते हैं। वस्तुतः ज्ञान का उन्नयन करने वाला और शान्तिपूर्ण एवं सामुदायिक जीवन जीने का महत्त्वपूर्ण सूत्र है–अपने द्वारा अपना दर्शन।

आत्म-दर्शन : शरीर-दर्शन

आचार्य सिद्धसेन ने लिखा–

स्वशरीरमनोवस्थाः, पश्यतः स्वेन चक्षुषा ।

यथैवायं भवस्तद्वद्, अतीतानागतावपि ।।

हम अपने शरीर की अवस्थाओं को देखें, मन की अवस्थाओं को देखें। अपने ज्ञान चक्षुओं द्वारा इन सभी अवस्था को देखना, इसका अर्थ है–अपने द्वारा अपना दर्शन । देखने वाला है हमारा ज्ञान चक्षु। शरीर हमारी आत्मा का एक अंग है। इसे आत्मा से अलग नहीं किया जा सकता । मन भी आत्मा का अंग है। एक व्यक्ति के शरीर में प्रतिक्षण परिवर्तन हो रहे हैं । हम ध्यान में बैठकर दिनभर शरीर में घटित होने वाली अवस्थाओं को देखें । शरीर में हजारों प्रकार के परिवर्तन होते हैं । एक सामान्य व्यक्ति उनकी कल्पना नहीं कर सकता। आठ कर्म हैं और आठ कर्मों की सैकड़ों प्रकृतियां होती हैं । वे प्रकृतियां प्रतिक्षण अपना विपाक कर रही हैं । ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अंतराय–इन सब प्रकृतियों का अपना-अपना विपाक हो रहा है । इनका एक पूरा तंत्र शरीर के भीतर चल रहा है । उन सारी अवस्थाओं को ज्ञान चक्षु से देखना अपने द्वारा अपना दर्शन है ।

कैसे देखें ?

मन की अवस्थाओं को देखना भी सहज नहीं है । हमारे विचारों के एक सैकण्ड में तैंतीस प्रकंपन हो जाते हैं । इन सारी अवस्थाओं को कौन देख सकता है? जो तटस्थ होकर बैठ जाए, वह इन्हें देख सकता है । जो इनके साथ बह जाएगा, वह इन्हें देख नहीं पाएगा । व्यक्ति इन्हें शान्तभाव से देखता चला जाए, इसी का नाम है आत्म-दर्शन। अतटस्थ व्यक्ति कभी देख नहीं सकता । वह घटना के साथ बह जाता है, देख नहीं पाता । देख वही सकता है, जो तटस्थ होता है ।

पारदर्शन की स्थिति

जिस व्यक्ति ने शरीर और मन में घटित होने वाली अवस्थाओं को देखने का अभ्यास किया है, वह अपने वर्तमान भव की तरह अतीत और अनागत को भी देखने लग जाता है । यह है जातिस्मरण का प्रयोग। व्यक्ति पहले स्थूल शरीर की अवस्थाओं कोदेखेगा, फिर तैजस शरीर की अवस्थाओं को देखेगा, कर्म शरीर में होने वाले प्रकम्पनों को देखेगा । फिर अतीत जन्म को देखने का अभ्यास हो जाएगा । व्यक्ति स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता चला जाएगा, आगामी जन्म को देख पाने की स्थिति बनने लग जाएगी । यह पारदर्शन की बात आत्मदर्शन के द्वारा ही संभव है । हम केवल दूसरों को ही देखेंगे तो समस्याओं से मुक्ति नहीं मिलेगी । दूसरों को देखना हमारी जन्मना प्रकृति बनी हुई है पर इसके साथ-साथ अपने आपको देखने का भी अभ्यास करना है। इससे एक संतुलन बनेगा । जिस दिन यह संतुलन बन जाएगा, हमारे जीवन का सर्वांगीण विकास होगा, जीवन को एकांगिता से हटाकर परिपूर्णता की ओर ले जाने में सहायक होगा । यही प्रयोजन है अपने द्वारा अपने दर्शन का ।

कायोत्सर्ग

एक व्यक्ति जैन धर्म में आस्था रखता है, निर्ग्रंथ प्रवचन को सत्य मानता है और कायोत्सर्ग को नहीं जानता तो एक प्रश्न उभरता है-वह कैसा जैन जो कायोत्सर्ग को नहीं जानता । यदि एक साधक कायोत्सर्ग को न जाने तो सचमुच आश्चर्य की बात है । जैन साधना पद्धति का पहला बिन्दु है कायोत्सर्ग और अन्तिम बिन्दु है कायोत्सर्ग । इसके अतिरिक्त कुछ है ही नहीं । इसके बारे में जानकारी न होना एक समस्या है । एक मुनि की शायद कोई भी प्रवृत्ति ऐसी नहीं है, जिसके पहले या पीछे कायोत्सर्ग का विधान न हो । कायोत्सर्ग की मूल्यवत्ता का यह एक स्वयंभू साक्ष्य है।

मंगल के लिए

एक दृष्टिकोण रहा, जो व्यक्ति जीवन जीना चाहता है, उसे सबसे पहले एक करणीय कार्य की ओर ध्यान देना होता है और वह करणीय कार्य है मंगल । जीवन निर्विघ्न चले, वह सदा मंगलमय बना रहे, उसमें कोई बाधा न आए, अमंगल न हो । मंगल के लिए, अमंगल निवारण और विघ्न विनयन का जो सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोग है, वह है कायोत्सर्ग। जो कायोत्सर्ग को जानता है, उसके जीवन का प्रत्येक दिन मंगलमय है।

जीवनं मंगलं भूयात्, प्रत्येकं मंगलं दिनम् ।
कायोत्सर्ग यतो वेद्म, सर्वदा मंगलं ततः।।

विधान मंगल का

भाष्य साहित्य में एक बहुत सुन्दर प्रसंग है । विहार करना है, कोई नया काम शुरू करना है तो सबसे पहले मंगल का चिन्तन करो। यदि यह

पता चल जाए—शकुन ठीक नहीं हो रहा है, जैसा चाहिए वैसा वातावरण नहीं मिल रहा है, मन में जो मंगल भावना होनी चाहिए, वह नहीं जाग रही है, इस स्थिति में मंगल का प्रयोग करना चाहिए। जहां भी कोई स्खलन या अमंगल दीख रहा है वहां पंच-मंगल अथवा दो श्लोकों का चिन्तन करें—

सव्वेसु खलियादिसु, झाएज्जा पंचमंगलं ।
दो सिलोगे व चिंतेज्जा, एगग्गो वापि तक्खणं ॥

श्वास और कायोत्सर्ग

पंच-मंगल का ध्यान करें अथवा दो श्लोकों का चिन्तन करें, इसका तात्पर्य है, आठ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग करें । जहां कोई विघ्न-बाधा की संभावना हो वहां आठ श्वासोच्छ्वास के कायोत्सर्ग का विधान है। एक श्लोक के चार चरण और एक श्वास में एक चरण का ध्यान। दो श्लोक के ध्यान का अर्थ है—आठ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग। कायोत्सर्ग का मान श्वास के साथ रहा है । कुछ लोग कहते हैं—जैन दर्शन में श्वासोच्छ्वास की बात कहां है? कायोत्सर्ग का श्वास के साथ जो मान रहा है, उसका बहुत बड़ा विधान है ।

आठ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग करने के बाद भी ऐसा लगे— शकुन अनुकूल नहीं हो रहा है, यात्रा या कार्यारम्भ के लिए वातावरण अनुकूल नहीं हो रहा है तो सोलह श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग करें। उसके बाद भी अनुकूल स्थितियां न बनें तो तीसरी बार बत्तीस श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग करें । इतना करने पर भी अनुकूल वातावरण न बने तो प्रस्तावित कार्य को स्थगित कर दें ।

मंगल : अमंगल

ये सारे विधान मंगल के लिए हैं । प्रत्येक कार्य के प्रारंभ में मंगल की अनुचिन्तना होनी चाहिए । ग्रंथ के प्रारंभ में नमस्कार करने की जो प्रक्रिया चली, उसका मंगल के लिए, ग्रंथ की निर्विघ्न संपन्नता के लिए सूत्रपात हुआ

होगा । यह परंपरा आदिकाल में नहीं थी किन्तु मध्यकाल में किसी भी ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण करने का क्रम शुरू हो गया। आज भी कोई बड़ा कार्य होता है तो वह मंगलाचरण से शुरू होता है। यह एक अच्छी परंपरा है। कुछ व्यक्ति भी ऐसे होते हैं, जो स्वयं मंगल होते हैं । वे जैसा सोचते हैं वैसा हो जाता है । उनका जीवन स्वयं मंगल होता है । वे अमंगल को अपनी भावना से मंगल में बदल देते हैं । ज्योतिषशास्त्र में माना जाता है-सबसे अच्छा समय वह होता है, जिस समय व्यक्ति का मन प्रसन्न होता है । प्रसन्न मनःस्थिति में कार्य प्रारंभ करना सबसे अच्छे मुहूर्त में कार्य प्रारंभ करना है ।

आचार्य रायचंदजी ने माघ बदी नवमी को आचार्य पद संभाला। आचार्य-पदारोहण समारोह मनाया जा रहा था । लोगों ने कहा—महाराज! आज तो नखेद तिथि है । मेवाड़ में निषेध को नखेद कहा जाता है। आचार्य रायचंदजी बोले - बिल्कुल ठीक है । आज न खेद है, इसलिए कोई खेद नहीं होगा ।

मंगल का प्रयोजन

महापुरुष हर निषेधात्मक भाव को विधायक भाव में बदल देते हैं और ठीक वैसा ही हो जाता है, अमंगल मंगल बन जाता है । चैतसिक प्रसन्नता होती है, पवित्र भावना होती है तो सब कुछ ठीक हो जाता है। आचार्य रायचंदजी का जीवन सदा मंगलमय रहा । उनके लिए कहा जा सकता है—वे स्वयं मंगल थे । सब व्यक्तियों के लिए ऐसा नहीं कहा जा सकता । एक साधारण आदमी के लिए यह जरूरी होता है कि वह किसी भी कार्य को प्रारंभ करे तो उससे पूर्व मंगल का विधान करे। प्राचीन ग्रंथों में तीन बार मंगल का प्रयोग मिलता है—आदि मंगल, मध्य मंगल और अन्त्य मंगल । मंगल इसलिए किया जाता है कि शिष्य परंपरा से ग्रंथ चलता रहे, किसी प्रकार का विघ्न न आए। न रचना में विघ्न आए, न पढ़ने वाले में विघ्न आए, न ग्रन्थ की सुरक्षा में बाधा आए । यह है मंगल का प्रयोजन ।

प्रश्न है - कायोत्सर्ग क्यों करना चाहिए । कायोत्सर्ग के दो बड़े प्रयोजन हैं—मंगल और विशुद्धि । कायोत्सर्गः सदा कार्यः मंगलाय विशुद्धये ।

साधना के पथ में विघ्न न आए, व्यक्ति निर्विघ्न साधना मार्ग पर सफलता पूर्वक चल सके, इसके लिए मंगल का होना जरूरी है । साधना के क्षेत्र में सबसे बड़ा मंगल है कायोत्सर्ग। यह विधान किया गया–कार्य से पहले मंगल की भावना करें, आठ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग करें।

कायोत्सर्ग : अनेक विकल्प

कायोत्सर्ग के अनेक विकल्प किए गए हैं -

आठ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग ।

सौ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग ।

पांच सौ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग ।

एक हजार आठ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग ।

कायोत्सर्ग का एक प्रकार है अभिभव कायोत्सर्ग। यह इन सबसे बड़ा है । कोई उपद्रव आ जाए, उस समय कायोत्सर्ग की अवधि और लम्बी हो जाती है । अभिभव कायोत्सर्ग उपसर्ग या उपद्रव की स्थिति में किया जाता है ।

कायोत्सर्ग : अवधि

भगवान ऋषभ के पुत्र बाहुबली कायोत्सर्ग की मुद्रा में बारह महीने तक खड़े रहे । भगवान महावीर ने भी बहुत लम्बा कायोत्सर्ग किया । दिगम्बर परंपरा का मत है - भगवान महावीर छह महीने तक कायोत्सर्ग की मुद्रा में खड़े रहे । श्वेताम्बर परंपरा में मान्यता है, भगवान महावीर गोचरी के लिए जाते, शेष समय ध्यान और कायोत्सर्ग करते ।

प्रश्न पूछा गया - कायोत्सर्ग की अवधि कितनी हो सकती है? कहा गया–कायोत्सर्ग की मुद्रा में कम से कम अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टतः साठ हजार वर्ष तक रहा जा सकता है । आज इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती

साठ हजार वर्ष तक कोई प्रतिमा ही खड़ी रह सकती है। ऐसा कायोत्सर्ग करने वाला व्यक्ति प्रतिमा की तरह ही स्थिर और निश्चल होता होगा।

कायोत्सर्ग : विशोधन

कायोत्सर्ग का दूसरा प्रयोजन है - विशोधन । विशुद्धि के लिए कायोत्सर्ग किया जाता है । एक जैन श्रावक और मुनि प्रतिक्रमण करता है । प्रतिक्रमण का एक अंग है कायोत्सर्ग । साधक इस संकल्प के साथ कायोत्सर्ग को स्वीकार करता है - मैं पूर्वकृत प्रमाद के परिष्कार, प्रायश्चित्त, विशोधन और शल्य-विमोचन द्वारा पाप कर्मों को नष्ट करने के लिए कायोत्सर्ग करता हूं—

'तस्स उत्तरीकरणेणं पायच्छित्तकरणेणं विसोहिकरणेणं विसल्लीकरणेणं पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं।'

शल्य-विमोचन का उपाय

आचार्य हेमचंद्र ने भगवान् महावीर की स्तुति में लिखा—प्रभो! केवल शिथिलीकरण और कायोत्सर्ग के द्वारा आपने मनःशल्य को दूर कर दिया ।

मनःवचःकायचेष्टाः, कष्टाः संहृत्य सर्वथा ।

श्लथत्वेनैव भवता, मनःशल्यं वियोजितम् ।।

विशल्यीकरण की प्रक्रिया बहुत महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है । बाहर के शल्य तो भर जाते हैं पर भीतर का शल्य बहुत मुश्किल से भरता है। आंतरिक शल्य बहुत गहरा और कष्टदायी होता है । शल्य है अन्तर्व्रण। यह व्यक्ति को भीतर ही भीतर सालता रहता है । एक शल्य है माया। आदमी बहुत मायाजाल रचता रहता है । उसके भीतर इतने गहरे घाव हो जाते हैं कि वे भरते ही नहीं । कायोत्सर्ग एक उपाय है शल्य-विमोचन का, घावों को भरने का ।

पाप कर्मों का निर्जरण

कायोत्सर्ग का सबसे बड़ा प्रयोजन है पाप कर्मों का निर्जरण करना। कर्मों को क्षीण करने का शक्तिशाली उपाय है कायोत्सर्ग। जब हमारा प्रयत्न

होता है तब उतनी निर्जरा नहीं होती, जितनी कायोत्सर्ग या शिथिलीकरण की अवस्था में होती है । कायोत्सर्ग की अवस्था में सारे पुराकृत कर्म प्रकंपित हो जाते हैं ।

कायोत्सर्ग कब करें ?

एक प्रश्न है - कायोत्सर्ग कब करना चाहिए ? एक मुनि के लिए विधान किया गया - प्रयोजनवश प्रवास-स्थान से बाहर जाए तो लौटते ही कायोत्सर्ग करे । सोने से पहले कायोत्सर्ग करे । नींद में सपना आ जाए तो कायोत्सर्ग करे। यदि कोई विशेष स्वप्न आए तो चार लोगस्स का कायोत्सर्ग करे । नदी पार करना हो तो कायोत्सर्ग करे । स्वाध्याय की प्रस्थापना करे तो आठ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग करे । मुनि की प्रत्येक प्रवृत्ति के साथ कायोत्सर्ग का विधान उपलब्ध होता है । उपद्रव, उपसर्ग और शारीरिक व्याधि की स्थिति में लंबे कायोत्सर्ग का विधान है ।

कायोत्सर्ग कैसे करें?

एक प्रश्न है - कायोत्सर्ग कैसे करें ? प्राचीन काल में कायोत्सर्ग करने की जो विधि रही है, उसमें शरीर का शिथिलीकरण, ममत्व का त्याग, इसके साथ-साथ पद और श्वास का आलंबन—यह पूरी प्रक्रिया प्रचलित रही है । श्वासोच्छ्वास के साथ कायोत्सर्ग करने से अधिक एकाग्रता और शिथिलता आ जाती है । कायोत्सर्ग में एकाग्रता बहुत जरूरी है । हालांकि कायोत्सर्ग स्वयं एकाग्रता लाने वाला प्रयोग है । श्वास के साथ वह अधिक शक्तिशाली बन जाता है । कायोत्सर्ग—यह सूचक शब्द है काया के उत्सर्ग का । जब काया का त्याग होता है तब बाहरी भान कम होने लग जाता है । उसी अवस्था में अनुप्रेक्षा करने या सजेशन देने का अच्छा अवसर होता है । जब तक चेतन मन काम करता है, स्थूल चेतना काम करती है तब तक अनुप्रेक्षा या सजेशन पूर्णतः कारगर नहीं होते । जब आदमी भीतर में चला जाता है तब एक नई घटना घटित हो जाती है ।

भीतरी दुनिया का राजमार्ग

एक महान् संत हुए हैं खलीफा उमर । युद्ध चल रहा था। खलीफा के पैर में तीर लग गया । बहुत दर्द होने लगा । एक जवान सैनिक ने कहा—आपको बहुत दर्द हो रहा है। आप कहें तो इसे निकाल दूं। पास ही खड़े बूढ़े सैनिक ने कहा—अभी रहने दो । कुछ देर बाद नमाज का वक्त आया । खलीफा नमाज में लीन हो गया । उसी समय बूढ़े सैनिक ने पैर से तीर निकाल लिया । खलीफा को कुछ पता ही नहीं चला ।

जब व्यक्ति भीतरी दुनिया में चला जाता है तब उसे बाहरी दुनियां के कष्ट और पीड़ाएं प्रभावित नहीं करतीं । बाहर की दुनियां से अलग है भीतर की दुनिया। उसमें जाने वाला व्यक्ति सारे दुःखों और तनावों से मुक्ति पा लेता है । उस भीतरी दुनिया में पहुंचने का राजमार्ग है—कायोत्सर्ग ।

कायोत्सर्ग का उद्देश्य

एके साधे सब सधे

'एके साधे सब सधे' यह सूत्र बहुत प्रिय लगता है । सरल मार्ग है–एक को साध लें, सब सध जाएंगे । यदि हजार को मनाना है तो किस किस को मनाएंगे । एक को मना लें, सब मान जाएंगे। एक आचार्य की आराधना करो, सब आराधित हो जाएंगे । ओघनिर्युक्ति में बहुत सुन्दर विवेचन किया गया है--एक की आराधना करो, सब आराधित हो जाएंगे और एक की विराधना करो, सब विराधित हो जाएंगे । कहा गया–एक मुनि की निंदा सारे संघ की निंदा है । एक मुनि की प्रशंसा सारे संघ की प्रशंसा है ।

शरीर को जानने का अर्थ

यह प्रश्न बहुत बार उभरता है–ऐसा तत्व क्या है, जिसे साध लेने पर सब साध लिए जाएंगे, जिसे जान लेने पर सारे जान लिए जाएंगे? वह तत्व है हमारा शरीर । शरीर को जान लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है । मन और वाणी हमारे शरीर में हैं । आत्मा हमारे शरीर में है । चित्त हमारे शरीर में है । सब कुछ है शरीर में । यदि शरीर के रहस्यों को जान लें तो सब कुछ जान लिया जाएगा। हमारा मस्तिष्क रहस्यों का पिटारा है । यदि एक मस्तिष्क को समग्रता से पढ लें तो दुनियां को पढने की जरूरत ही नहीं होगी । साहित्य, कला, विज्ञान, आगम, अध्यात्म आदि सब कुछ इसी मस्तिष्क से उपजा है । हमारा अस्तित्व और व्यक्तित्व शरीर से ही प्रकट हो रहा है। इस शरीर को जान लेने का अर्थ है सब कुछ जान लेना ।

शरीर की समस्याएं और कायोत्सर्ग

कायोत्सर्ग का मूल तत्त्व है शरीर । शरीर में समस्याएं क्यों आती हैं? उसका एक कारण है—मांसपेशियों में अकड़न आ जाना । दूसरा कारण है—रक्त -संचार प्रणाली में अवरोध आ जाना । जब धमनियां कठोर बन जाती हैं, रास्ते सिकुड़ जाते हैं तब शरीर में समस्या पैदा हो जाती है । इन सारी प्रणालियों में अवरोध न आए, मांसपेशियां न अकड़ पाएं तो शरीर समस्या से आक्रांत नहीं बनता । कायोत्सर्ग इन सारी समस्याओं का समाधान है । कायोत्सर्ग का परिणाम है—देह-जड़ता की शुद्धि । जो भी अकड़न, ऐंठन और कठोरता है, उसको समाप्त करने का शक्तिशाली प्रयोग है कायोत्सर्ग ।

कायोत्सर्गः तीन स्थितियां

कायोत्सर्ग की तीन स्थितियां मानी गई हैं। वह लेटकर भी किया जा सकता है, खड़े होकर या बैठकर भी किया जा सकता है।

इस संदर्भ में अलग अलग निर्देश हैं—जो तरुण और बलवान् है, उसे खड़े-खड़े कायोत्सर्ग करना चाहिए । जो तरुण है और निर्बल है, उसे बैठकर या लेटकर कायोत्सर्ग करना चाहिए । जो स्थविर है और निर्बल है, वह लेटकर भी कायोत्सर्ग कर सकता है । मूल बात है शक्ति और सामर्थ्य की । भगवान् महावीर ने कहा—किसी भी व्यक्ति को शक्ति का गोपन नहीं करना चाहिए। महावीर के पुरुषार्थवाद का यह प्रसिद्ध सूत्र है—णो पीहेज्ज वीरियं—शक्ति का गोपन मत करो ।

देहशुद्धि का प्रयोग

कायोत्सर्ग देह-शुद्धि का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है । जो व्यक्ति बेचैनी से मुक्त, शांतिपूर्ण, निर्मल मति, निर्मल प्रतिभा और निर्मल मन से परिपूर्ण जीवन जीना चाहता है, उसके लिए सबसे पहला कार्य है देहशुद्धि पर ध्यान देना। बुढ़ापा और बीमारी— दोनों क्यों आते हैं? इसका कारण है देहशुद्धि का न होना । जब तक शरीर में मल-मूत्र का विसर्जन करने वाला तंत्र मजबूत रहेगा

तब तक आदमी स्वस्थ और शान्तिमय जीवन जीता रहेगा । शरीर के स्वास्थ्य से जुड़े हुए दो महत्त्वपूर्ण तंत्र हैं—पाचन तंत्र और उत्सर्जन तंत्र । पाचन-तंत्र का कार्य है भोजन को पचाना और उत्सर्जन तंत्र का कार्य है मल को बाहर निकालना। प्रतिदिन मल जमा होता रहता है । यदि उत्सर्जन तंत्र सही ढंग से काम न करे तो व्यक्ति का स्वास्थ्य गड़बड़ा जाता है । कहना यह चाहिए-- ने पर ध्यान देना चाहिए पच्चीस प्रतिशत और मल-विसर्जन पर ध्यान देना च.. र पचहत्तर प्रतिशत । यदि व्यक्ति इस बात का ध्यान रखेगा तो शांति से जीवन सकेगा, इन्द्रिय, मन और चेतना बिलकुल प्रसन्न रहेंगी।

शरीर और भोजन

दूषित मल के निष्कासन का एक तरीका है लंघन--उपवास । तपस्या करना आध्यात्मिक साधना है किन्तु साथ साथ स्वास्थ्य के लिए भी बहुत अनिवार्य है । दूसरा है आसन का प्रयोग । आसन से सारे शरीर में हलचल होती है, पसीना निकलता है । उसके साथ बहुत सारे मलों का निष्कासन हो जाता है । ऐसे परीक्षण किए गए हैं, जिनमें मृत शरीर में से साठ-सत्तर किलोग्राम मल निकाला गया है । हम इस बात पर ध्यान केन्द्रित करें--मलों का निष्कासन ठीक प्रकार से हो रहा है या नहीं? हम इस सचाई का मूल्यांकन करें--शरीर के लिए भोजन है, भोजन के लिए शरीर नहीं है (Food for body/Body is not for food). हम इसकी उल्टी दिशा में चल रहे हैं । हमें यह भ्रम तोड़ना होगा । कायोत्सर्ग का पहला कार्य है—शरीर की जड़ता की शुद्धि। जब कायोत्सर्ग करेंगे, रक्त-संचार का पूरा मार्ग साफ हो जाएगा, कहीं अवरोध नहीं रहेगा।

सुख-दुःख में समभाव

हम वर्तमान समाज की जीवन शैली को देखें । आज समाज आर्थिक साधन-सुविधा की दृष्टि से बहुत आगे बढा है किन्तु चारित्रिक, सामाजिक और नैतिक स्वास्थ्य की दृष्टि से काफी नीचे गिरा है । बहुत लोग उद्योगपति बन गए, बहुत विकास कर लिया किन्तु मुझे ऐसा लगता है, समाज का स्तर

बहुत नीचे पहुंच गया है । समाज का युवा वर्ग नाइट क्लबों में जाने लगा है। शराब का प्रचलन बहुत बढ़ गया है । खान-पान की विशुद्धता कम हुई है । चरित्र का भी हनन हुआ है। जिस समाज में कठोर जीवन जीने की आदत नहीं होती वह कभी चरित्रवान् नहीं बन सकता । सुविधावादी मानसिकता से व्यक्ति तनाव-ग्रस्त बना है। वह शराब आदि मादक पदार्थों का आदी बन रहा है। जिस समाज या व्यक्ति के लिए शराब का दरवाजा खुल जाता है, उसके लिए सब बुराइयों के दरवाजे खुल जाते हैं । सुविधा सुख-लिप्सा को बढ़ाती है और सुख को सहन करना मुश्किल है। सुख को वही सहन कर सकता है, जो या तो पहुंचा हुआ संत है या कोई बहुत समझदार व्यक्ति है। सुख प्रमाद बढाने का एक अवसर है । दुःख को सहन करने की बात समझ में आती है पर सुख को सहन करने की बात कभी समझ में नहीं आती। सुख को सहन करने की बात सुनना भी व्यक्ति पसंद नहीं करता । प्रमाद न बढ़े, इसके लिए सुख को सहन करना आवश्यक है। साधु हो या गृहस्थ, उसे कठोर जीवन जीने का प्रयत्न करना चाहिए। कायोत्सर्ग से ऐसी चैतसिक स्थिति का निर्माण होता है, जिससे सुख-दुःख को सहने की क्षमता विकसित होती है । सुख-दुःख को समभाव से सहने का एक प्रयोग है कायोत्सर्ग । जो व्यक्ति कायोत्सर्ग को साध लेता है, वह सुख-दुःख और सुविधावाद से परे की स्थिति में चला जाता है। ऐसा व्यक्ति ही चारित्रिक, नैतिक और सामाजिक मूल्यों को बनाए रख सकता है।

अनुप्रेक्षा और ध्यान की आधारभूमि

परिवर्तन के दो महत्त्वपूर्ण सूत्र हैं—अनुप्रेक्षा और ध्यान । कायोत्सर्ग की स्थिति में ही उनकी साधना संभव बन सकती है । जब तक कायोत्सर्ग का अच्छा अभ्यास नहीं होगा तब तक ध्यान और अनुप्रेक्षा के प्रयोग सफल नहीं होंगे । कायोत्सर्ग की साधना ध्यान और अनुप्रेक्षा की पृष्ठभूमि का निर्माण करती है । उसके बिना ध्यान और अनुप्रेक्षा का जो परिणाम आना चाहिए, वह नहीं आ पाता । इसीलिए ध्यान और अनुप्रेक्षा करने वाले व्यक्ति के लिए

कायोत्सर्ग जरूरी है

प्रश्न होता है-कायोत्सर्ग क्यों करना चाहिए ? कायोत्सर्ग करने के पांच उद्देश्य बतलाए गए हैं–

देहमइजडसुद्धी, सुहदुक्खतितिक्खया अणुप्पेहा ।

झायइ य सुहं झाणं, एगग्गो काउस्सग्गम्मि ।।

१. देह की जड़ता की शुद्धि के लिए
२. मति की जड़ता की शुद्धि के लिए
३. सुख-दुःख तितिक्षा के लिए
४. अनुप्रेक्षा के लिए
५. ध्यान के लिए

कायोत्सर्ग के ये उद्देश्य प्रत्येक साधनाशील व्यक्ति के लिए महत्त्वपूर्ण हैं। इनका प्रयोग करने वाला व्यक्ति अपने जीवन की सफलता को सुनिश्चित कर लेता है ।

अंतर्यात्रा

हमारे नाड़ीतंत्र के तीन भाग हैं - अनुकंपी, परानुकंपी और केन्द्रीय नाड़ी संस्थान । अनुकंपी और परानुकंपी - दोनों के मध्य है केन्द्रीय नाड़ी-संस्थान नाम की एक नाड़ी । उस नाड़ी में चेतना का प्रवेश, इसका नाम है अंतर्यात्रा। जीवन चलाना है तो उसके लिए कार्य करना होता है और कार्य करने के लिए बाहर आना होता है । बाहर आने के दो मार्ग हैं-अनुकंपी और परानुकंपी। हठयोग की भाषा में इन्हें कहा जाता है - इड़ा नाम का प्राण-प्रवाह और पिंगला नाम का प्राण-प्रवाह । जब भीतर रहना होता है तब चेतना इन दोनों प्रवाहों को छोड़कर केन्द्रीय नाड़ी संस्थान में चली जाती है, सुषुम्ना या मेरुदण्ड में चली जाती है। रीढ़ की हड्डी के भीतर रहना अंतर्यात्रा है और दाएं-बाएं आ जाना बहिर्यात्रा है ।

अंतर्यात्रा : दो पहलू

एक बात के अनेक पहलू हो सकते हैं और हमें उस पर अनेक पहलुओं से ही विचार करना चाहिए । जैन परिभाषा के दो महत्त्वपूर्ण शब्द हैं—द्रव्य और भाव । सुषुम्ना के भीतर चेतना का प्रवेश, यह अंतर्यात्रा की परिभाषा का एक पहलू है और इसे द्रव्य पहलू कहना चाहिए। जितना मूल्य भाव पहलू का है, उतना मूल्य द्रव्य पहलू का नहीं है। हमें द्रव्य के साथ-साथ भाव पहलू पर भी ध्यान देना होगा । अंतर्यात्रा का अर्थ है—सम्यग् दर्शन । जब तक सम्यक्त्व नहीं होता तब तक अन्तर्यात्रा नहीं होती । अंतर्यात्रा की यह परिभाषा उसका भावात्मक पहलू है ।

अंतरात्मा : अन्तर्यात्रा

तीन प्रकार की आत्माएं हैं - बहिरात्मा , अन्तरात्मा और परमात्मा।

अन्तरात्मा होने का अर्थ है - अन्तर्यात्रा में प्रवेश । जो व्यक्ति अंतरात्मा हो जाता है, उसकी यात्रा भी अन्तर्यात्रा बन जाती है। बहिरात्मा वह होता है, जो शरीर और पदार्थों में अटका रहता है, स्थूल बातों की परिक्रमा करता रहता है । बहिरात्मा सदा दूसरों को देखता रहता है। वह आलोचना सुनकर क्षुब्ध हो जाता है, प्रशंसा सुनकर खुश हो जाता है। दूसरों द्वारा किए गए व्यवहार के प्रति प्रतिक्रियाओं के जाल बुनता रहता है। उसने मेरा ऐसा कर दिया, उसने मेरा वैसा कर दिया । ये सारी बातें मिथ्या दृष्टिकोण हैं ।

सम्यग् दर्शन का अर्थ

हमने सम्यक्त्व और मिथ्यात्व को शब्दों की सीमा में इतना बांध दिया कि मूल आत्मा को छूने में कठिनाई हो रही है । कहा गया—जो नव तत्त्व को जानता है, देव, गुरु और धर्म को जानता है, वह है सम्यग् दृष्टि । जो इन सबको नहीं जानता, वह है मिथ्यादृष्टि । यह बात सही है, पर इसे भी स्थूल बना दिया गया । वस्तुतः सम्यग् दर्शन का अर्थ है—निरन्तर आत्मा में रहना, आत्मा में समाधान पाना । जहां दूसरे से समाधान पाने की बात होगी वहां मिथ्या दर्शन ही होगा । जो व्यक्ति आत्म-कर्तृत्व का प्रयोग नहीं करता, वह सम्यग्दर्शी कैसे हो सकता है? हम केवल इस पाठ को रटें—अप्पा कत्ता विकत्ता य दुहाण य सुहाण य—तो यह सम्यग् दर्शन नहीं हो सकता । इस व्यवहार की भूमिका से ऊपर उठकर यह प्रयोग करें - सुख-दुःख का कर्ता मैं स्वयं हूं। यदि यह प्रयोग या अनुभव नहीं होता है तो केवल तोता-रटन जैसी बात हो जाएगी । इस अनुभूति के लिए व्यवहार से हटकर भीतर जाना होगा, अन्तर्यात्रा करनी होगी । अन्तर्यात्रा के बिना इसकी अनुभूति संभव नहीं है।

चित्त का दोष : आत्मा का स्वरूप

सम्यग् दर्शन का अर्थ है अन्तरात्मा होना । व्यक्ति अंतरात्मा हो गया,

इसका अर्थ है—उसने यह साफ-साफ जान लिया कि यह मेरी आत्मा का स्वरूप है और यह मेरे चित्त का दोष है । चित्त का दोष कहां काम कर रहा है और आत्मा का स्वरूप कहां काम कर रहा है, यह बात जिसके बहुत स्पष्ट हो जाती है, वह है अन्तरात्मा । हम दूसरों के कारण बहुत सुखी और बहुत दुःखी बनते हैं । दूसरों के कारण दुःखी होने या दुःख का संवेदन करने में खतरा है ही किन्तु दूसरों के कारण सुखी होना या सुख का संवेदन करना भी खतरे से खाली नहीं है । जहां हम सुख और दुःख का कारण दूसरों को मान लेते हैं वहां आत्मा का स्पर्श नहीं होता । जब तक अपनी आत्मा या पमात्मा का स्पर्श नहीं होता तब तक व्यक्ति केवल दूसरों के भरोसे रहता है और उसमें खतरे आते रहते हैं ।

भरोसा स्वयं का

महाकवि पंडित जगन्नाथ दिल्ली के दरबार में बहुत मान्य थे। ऐसा माना जाता था, जो कुछ होता है, वह सब उनके इशारे पर ही होता है। इतने शक्तिशाली होने पर भी महाकवि दूसरों के भरोसे ही थे। समय ने पलटा खाया, महाकवि को देश-निकाला दे दिया गया। दूसरों का भरोसा एक समस्या बन गया । महाकवि को हिन्दुस्तान छोड़कर बाहर जाना पड़ा । नेपाल नरेश ने उनका अच्छा स्वागत किया। कहा जाता है, महीने का एक लाख रुपया वेतन दिया । उस समय रुपये का कितना मूल्य था! इतना सम्मान मिलने पर भी उनका मानस प्रभावित नहीं हुआ । उन्हें इस सचाई का अनुभव हो गया, दूसरों के भरोसे रहने से क्या होता है । किसी ने पूछा—कविराज कैसा चल रहा है ? क्या आप संतुष्ट हैं?

पंडित जगन्नाथ बोल उठे—

दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा, मनोरथान् पूरयितुं समर्थ : ।

नेपालभूपैः प्रतिदीयमानं, शाकाय वा स्यात् लवणाय वा स्यात् ।।

दिल्ली का ईश्वर या परमात्मा ही मेरे मनोरथों को पूरा सकता है। नेपाल

नरेश द्वारा जो दिया जा रहा है, वह शाक या नमक के लिए ही पर्याप्त हो सकता है ।

आत्मानुभूति की दिशा

हम इस भाषा में कह सकते हैं—आत्मा ही मनोरथों को पूरा कर सकती है । हम कितने ही व्यवहार में चले जाएं, जब तक आत्मा का स्पर्श नहीं होगा, हमारे मनोरथ पूरे नहीं होंगे । आत्मा का स्पर्श करना ही निश्चय नय की बात है । निश्चय इसके बिना है क्या ? कोरा व्यवहार बहुत खतरनाक होता है । जहां कोरा व्यवहार होगा वहां धर्मनीति नहीं होगी, राजनीति का शासन चलेगा, दंडनीति का शासन होगा । जो समर्थ होगा, वह दूसरों को डराएगा, धमकाएगा । जो आतंक, भय, उखाड़-पछाड़ और उठापटक चल रही है, उसका कारण है राजनीति का शासन । जहां धर्मनीति का शासन होगा वहां क्रमशः आत्मानुभूति का विकास होता चला जाएगा । आत्मानुभूति की दिशा में प्रस्थान होना ही अन्तरात्मा होना है ।

जरूरी है अंतर्यात्रा

हम इस बात पर ध्यान दें । जब तक सम्यग् दृष्टिकोण नहीं बनेगा पूरे जीवन व्यवहार के प्रति हमारा व्यवहार सम्यग् नहीं होगा, तब तक बहिरात्म-भाव बना रहेगा । चाहे हम अपनी न्यूनता देखें या विशेषता किन्तु उसे दूसरों के मानदण्ड से न देखें । आत्मनिरीक्षण के द्वारा अपनी न्यूनता को देखें, विशेषता को देखें । इसके लिए हमें बाहरी भटकाव को छोड़कर भीतर आना होगा, अन्तरात्मा होना होगा । अन्तरात्मा बनने के लिए जरूरी है अंतर्यात्रा । जिस दिन इस सचाई का अनुभव होगा, हम एक नई दुनिया में प्रवेश पा लेंगे ।

दीर्घश्वास प्रेक्षा

आजकल वोकल साइंस में दो शब्द बहुत प्रचलित हैं - बीइंग और डूइंग—होना और करना । अध्यात्म के क्षेत्र से जुड़े हुए पश्चिमी लोग कहते हैं—हमें करने से होने में आना है, अपने अस्तित्व में आना है। उस स्थिति में पहुंचना है जहां करना न रहे, केवल होना रहे । करना और होना—इन दो शब्दों के बीच में बहुत कुछ बातें चलती हैं । वस्तुतः यह बात नई नहीं है, बहुत पुरानी है । हम शब्दों से परिचित कम रहते हैं । शब्दों से परिचित रहना भी बहुत जरूरी है । अन्यथा स्थिति यह बनती है—जो शब्द कहना चाहते नहीं, उसे हम जबर्दस्ती सुनना चाहते हैं । आज ऐसा ही कुछ हो रहा है ।

क्रिया : दो प्रकार

जैन आगम में दो बहु प्रचलित शब्द हैं—प्रायोगिकी क्रिया और वैस्रसिकी क्रिया। शरीरशास्त्र के अनुसार हमारी क्रियाएं दो प्रकार की होती हैं—स्वतःचालित और इच्छाचालित । सूत्रकृतांग की वृत्ति में दो प्रकार की क्रियाओं का उल्लेख है—अनुपयोगपूर्विका क्रिया और उपयोगपूर्विका क्रिया। जिस क्रिया में हमारा उपयोग नहीं है, वह अनुपयोगपूर्विका क्रिया है, जैसे-हृदय का धड़कना, पाचन होना, आंख का झपकना आदि । जिस क्रिया का कोई कर्त्ता नहीं, जिस क्रिया पर चेतनात्मक नियंत्रण नहीं है, जो अपने आप होने वाली क्रिया है, वह अनुपयोगपूर्विका क्रिया है, वैस्रसिकी क्रिया है। जिस क्रिया पर हमारा चेतनात्मक नियंत्रण है, जिसे हम अपनी इच्छा से करते हैं, वह उपयोगपूर्विका क्रिया है, प्रायोगिकी क्रिया है।

शरीरशास्त्र की भाषा

शरीरशास्त्र की भाषा भी यही है--जिस क्रिया को हम प्रयत्नपूर्वक करते हैं, वह इच्छाचालित क्रिया है । जो क्रिया अपने आप चल रही है, वह स्वतःचालित क्रिया है । हमारे शरीर में दोनों प्रकार की क्रियाएं चल रही हैं। श्वास तीसरे प्रकार की क्रिया है । श्वास में इन दोनों का मिश्रण है।

आगम में तीन शब्द प्रयुक्त हुए हैं -

वैस्रसिकी -- वह क्रिया , जो स्वभाव से चल रही है ।

प्रायोगिकी -- वह क्रिया, जो प्रयत्नपूर्वक की जाती है ।

मिश्रित- वह क्रिया, जो स्वभाव से भी चल रही है और जिसे प्रयत्नपूर्वक भी किया जाता है ।

श्वास : स्वतःचालित भी, इच्छाचालित भी

श्वास एक ऐसी क्रिया है, जो स्वतःचालित भी है और इच्छाचालित भी है। श्वास पर हमारा चेतनात्मक नियंत्रण भी है और वह अपने आप भी चलता ही रहता है । जब सोते हैं तब भी श्वास चलता रहता है । जब जागते हैं तब भी श्वास चलता रहता है । जब तक व्यक्ति जीता है, श्वास चलता रहता है । यह हमारी इच्छा पर निर्भर है कि हम जब चाहे श्वास लें और जब चाहे, उसे रोक लें । जब चाहे श्वास को लम्बा कर लें या छोटा कर लें। हम श्वास का संयम और कुंभक भी कर सकते हैं । हमारी क्रियाएं तीन प्रकार की हो गईं - स्वतःचालित क्रिया, प्रयत्नचालित क्रिया और उभयात्मक क्रिया । श्वास तीसरी कोटि की क्रिया है। इसमें स्वतःचालित अंश भी है और इच्छाचालित अंश भी है।

अंतर्यात्रा : वाहन

प्रश्न है - हम अन्तर्यात्रा कैसे करें ? बाहर से भीतर जाने की यात्रा लंबी यात्रा है । आदमी इसे कैसे तय कर पाएगा? यात्रा के लिए कोई वाहन

चाहिए। यदि बिना वाहन यात्रा करेगा तो वह थक जाएगा। बाहर की यात्रा बहुत लम्बी नहीं है किन्तु भीतर में एक रक्तसंचार प्रणाली की यात्रा भी इतनी लम्बी है, जिसकी कल्पना नहीं की जा सकती। उसकी यात्रा के लिए वाहन अपेक्षित होता है और वह वाहन है श्वास। यह वाहन व्यक्ति को सब जगह पहुंचा देता है । स्वयं न जाए तो आगे दूसरा तैयार है, जो उससे जुड़ा हुआ है । वह है प्राण। प्राण एक मिनट में ही इतनी बड़ी यात्रा करा सकता है । इसीलिए कहा गया--यत्र पवनस्तत्र मनः, यत्र मनस्तत्र पवनः' --जहां मन वहां प्राण और जहां प्राण वहां मन । पर यह यात्रा तभी संभव है जब कुछ भार हल्का हो।

भीतर की यात्रा : अन्तरिक्ष यात्रा

भीतर की यात्रा अंतरिक्ष की यात्रा के समान है । अंतरिक्ष की यात्रा करें और कुछ भार ले जाएं, यह संभव नहीं है । भार के साथ अंतरिक्ष की यात्रा नहीं की जा सकती। भीतर का अंतरिक्ष हो या बाहर का अंतरिक्ष, यदि उसकी यात्रा करनी है तो निर्भार होना होगा । भार है शरीर का, भार है इन्द्रियों का । इन्द्रियों के द्वारा बहुत भार ढ़ोया जा रहा है इन्द्रियां इतना भारी भार उठाकर लाती हैं, इतने भारी-भारी रसों को लाती हैं कि बेचारी चेतना उसके नीचे दबती चली जाती है। जब हमारे पर इतना भार लदा हुआ है, हम भीतर की यात्रा कैसे कर पाएंगे ? हम पहले भार को छोड़ें। शरीर के प्रति, इन्द्रियों के प्रति, जो अनंत भार है, उस भार को छोडें। इस भार से मुक्त होने का उपाय है--इन्द्रिय प्रतिसंलीनता--इन्द्रियों के बाह्य व्यापार का वर्जन । जितनी इन्द्रिय-प्रतिसंलीनता बढ़ेगी उतना ही भार कम होता चला जाएगा । हम बिलकुल निर्भार बन जाएंगे, हल्के हो जाएंगे । जब हल्कापन आएगा तब अंतर्यात्रा शुरू हो पाएगी । अंतर्यात्रा के लिए सवारी करनी है श्वास की, किन्तु भार की जो गठरी है, उसे उतार कर नीचे रख देना है। भार से मुक्त होकर श्वास के वाहन पर चढ़ना है । हमारी यह निर्भार यात्रा

भीतर में चले और उसका माध्यम श्वास बने तो अंतर्यात्रा का प्रश्न स्वतः समाहित हो जाएगा।

प्रवृत्ति का साक्ष्य है श्वास

श्वास के बारे में हमारी जानकारी कम है इसीलिए अंतर्यात्रा का बोध भी कम है । अंतर्यात्रा के लिए श्वास को साथ रखना जरूरी है। शायद हमने श्वास के स्वरूप को भी समझा नहीं है । हमारी प्रवृत्ति का सबसे बड़ा साक्ष्य कोई है तो वह है श्वास । किसी भी क्रिया या प्रवृत्ति को जानना हो तो श्वास को जान लें, क्रिया समझ में आ जाएगी । श्वास को छोड़कर हम किसी दूसरे साक्ष्य को खोजेंगे तो सफल नहीं होंगे, खतरे में भी पड़ जाएंगे ।

शिकारी जंगल में शिकार के लिए गया । जैसे ही जीप से उतरा, सामने चीता आ गया । उसके पास जो बंदूक थी, वह जल्दबाजी में जीप के भीतर ही रह गई । वह मुसीबत में फंस गया । उसने सोचा—मेरे पास बंदूक तो नहीं है किन्तु लाइसेंस है । उसने अपनी जेब से लाइसेंस निकाला । लाइसेंस को दिखाते हुए वह चीते से बोला—देखो! मेरे पास बंदूक का लाइसेंस है, तुम वहीं रुक जाओ। चीता लाइसेंस को क्या जाने? वह शिकारी पर झपटा । चीते के एक ही प्रहार ने उसे मृत्युधाम पहुंचा दिया।

नियंता है श्वास

हम मूल बात को पकड़ें, लाइसेंस को नहीं । यह लाइसेंस वाली बात पर-साक्ष्य वाली बात है । स्वतः प्रमाण है हमारा श्वास । समस्या यह है-- हम क्रिया को पकड़ते हैं, क्रिया के संचालक को छोड़ देते हैं। हमारी समस्त भीतरी एवं बाहरी क्रियाओं का संचालक है श्वास । बिना आक्सीजन के कभी कोई क्रिया नहीं होती । प्रत्येक कोशिका को अपना काम करने के लिए आक्सीजन चाहिए। इसकी पूर्ति कौन कर रहा है? श्वास ही तो इसकी पूर्ति कर रहा है। हमारी मन की प्रसन्नता,मन की निर्मलता, चैतसिक प्रसन्नता तब संभव है जब भीतर जमा हुआ मैल निकल जाए । हमारे शरीर को चला रहा

है प्राण। चाहे वह शरीर का प्राण है, मन या वाणी का प्राण । प्राण को ईंधन देने वाला, उसे चलाने वाला और उसका नियंता है श्वास

श्वास लेने की कला

श्वास लेने की एक कला है सूक्ष्म श्वास । जैनाचार्यों ने एक ओर प्राणायाम का निषेध किया तो दूसरी ओर सूक्ष्म और मंद श्वास का विधान किया । श्वास को दीर्घ करने पर बल दिया । कुछ लोग कहते हैं--सहज श्वास लें । पर हमारा इसमें विश्वास नहीं है । वस्तुतः वह सहज श्वास है ही नहीं। आदमी गलत श्वास लेता है पर कहता है—मैं सहज श्वास पर ध्यान कर रहा हूं । एक मिनट में व्यक्ति सामान्यतः पंद्रह श्वास लेता है । चार सैकण्ड में एक श्वास । बहुत सारे लोग एक मिनट में बीस-तीस श्वास ले लेते हैं । यह सहज श्वास कैसे होगा? हमें श्वास को दीर्घ करना होगा । पंद्रह श्वास की स्थिति हमें प्रकृति से मिली है । हमारी साधना है प्रयत्नजनित । हम केवल स्वाभाविक में नहीं, प्रायोगिक में विश्वास करते हैं । अभ्यास के द्वारा हमें एक मिनट में दस श्वास तक पहुंचना होगा । यदि एक मिनट में आठ-दस श्वास तक पहुंच जाएं तो अंतर्यात्रा की दिशा उद्घाटित हो जाए । हम धीरे-धीरे आगे बढ़ें, एक दिन ऐसी स्थिति आ सकती है कि एक मिनट में एक या दो श्वास लेने का अभ्यास सध जाए और ऐसा होना एक विशेष घटना होती है।

दीर्घश्वास का परिणाम

दीर्घश्वास की साधना का पहला परिणाम होगा—शरीर की सम्यक् आपूर्तिद्य। इसका दूसरा परिणाम होगा—मनोबल की वृद्धि । इससे मन को शक्ति मिलेगी, धृति बढ़ेगी, हमारा नाड़ीतंत्र और ग्रन्थितंत्र संतुलित काम करने लग जाएगा । आज की बहुत सारी शारीरिक और मानसिक गड़बड़ियों का कारण है--नाड़ीतंत्र और ग्रन्थितंत्र का असंतुलन। जैनाचार्यों ने मंद श्वास-निःश्वास का जो सूत्र दिया है, वह बहुत सोच समझकर दिया है, मंद श्वास लो और मंद श्वास छोड़ो, अपने-आप नियंत्रण शुरू हो जाएगा। आवेगों,

कषायों और वासनाओं—इन सब पर नियंत्रण हो जाएगा। नियंत्रण का सबसे पहला सूत्र है-श्वास। हम स्वयं अनुभव करें—जितना तेज गुस्सा आएगा उतनी ही श्वास की संख्या बढ़ती चली जाएगी। हम जितनी श्वास की संख्या को घटाएंगे, गुस्सा नियंत्रित होता चला जाएगा। हमारे संवेगों का नियंता है श्वास।

सफलता का सूत्र

श्वास का संबंध हमारे जीवन से है । केवल जीने से ही नहीं है, उसका बहुत गहरा संबंध हमारी भावनाओं से है । वैज्ञानिक जगत् में श्वास के बारे में काफी अनुसंधान हुए हैं। वैज्ञानिकों ने इस तथ्य का पता लगाया है कि हमारी भावनाओं और श्वास का परस्पर गहरा संबंध है । योग के पुराने आचार्यों ने इस सचाई को पहले ही उजागर कर दिया था कि श्वास और भावों का क्या संबंध है? जो पहले खोजा गया, विज्ञान ने उसकी पुष्टि कर दी।

हमारे जीवन की सफलता का एक बहुत बड़ा सूत्र है—श्वास। एक आदमी को बहुत गुस्सा आता है । वह हर बात पर बार बार गुस्सा करता है। उसका पारिवारिक जीवन अच्छा होगा या बिगड़ेगा ? बेटे पर गुस्सा, बहू पर गुस्सा, पत्नी पर गुस्सा, नौकरों पर गुस्सा । व्यक्ति सारे दिन तिलमिलाए रहता है, भृकुटि तनी रहती है । अनेक लोग कहते हैं—गुस्से के कारण मैं दुःखी हूं, मेरा सारा परिवार दुःखी है । इस जटिल आदत पर नियंत्रण करना है । कैसे करेंगे? किसी डॉक्टर के पास कोई दवा नहीं है । मनःचिकित्सक के पास जाएं तो वह कुछ उपाय सुझाएगा । होमियोपैथी डाक्टर भी कोई दवा सुझा सकता है, पर दवा से गुस्सा शांत हुआ हो, ऐसे किस्से बहुत कम सुनने में आए हैं। यह प्रमाणित तथ्य है—श्वास को जान लेने से, श्वास पर नियंत्रण कर लेने से गुस्सा शांत होता है । ऐसी सैकड़ों-सैकड़ों घटनाएं हमारे सामने हैं। जिस व्यक्ति ने श्वास का ठीक प्रयोग किया है, उसका कषाय कम हुआ है ।

गति श्वास की

श्वास की सामान्य विधि यह मानी गई है—आदमी दो सैकेंड में श्वास

लेता है और दो सैकेंड में छोड़ता है । इसका अर्थ है—चार सैकेंड में एक श्वास। एक मिनिट में पंद्रह श्वास । यह एक सामान्य विधि मानी जाती है। जब गुस्सा आएगा, श्वास की संख्या बढ जाएगी, एक मिनट में बीस, पच्चीस, तीस हो जाएगी । जितना तेज गुस्सा होता है उतनी ही संख्या बढ़ जाती है। कभी कभी पैंतीस-चालीस तक चली जाती है। श्वास की संख्या उस मात्रा में पहुंच जाती है, जहां हार्ट पर दबाव पड़ता है । हमारा सारा रक्त जहर हो जाता है, रासायनिक प्रक्रिया गड़बड़ा जाती है । गुस्सा बढा और श्वास की संख्या बढी । दोनों में संबंध है। गुस्से पर कंट्रोल करना है तो श्वास पर कंट्रोल करना होगा।

नियंत्रण का अर्थ

श्वास पर कंट्रोल करने का अर्थ है—आवेगों और संवेगों पर नियंत्रण। यदि हम श्वास लेना सीख जाएं, श्वास को लंबा करना सीख जाएं, एक मिनट में दो श्वास लेने का अभ्यास सध जाए तो आवेग-आवेशजनित समस्याओं से मुक्ति मिल जाए । कहां पंद्रह श्वास और कहां दो श्वास । इस स्थिति को उपलब्ध होने में समय लग सकता है । हम श्वास की संख्या को धीरे-धीरे घटाते चले जाएं । पहले एक मिनट में बारह श्वास लेने का अभ्यास करें। धीरे-धीरे दस, आठ, छह, चार और दो श्वास लेने तक का अभ्यास सध जाएगा । इस स्थिति में क्रोध नहीं सताएगा । क्रोध आएगा ही नहीं और आएगा तो उसका पता लग जाएगा । दीर्घ श्वास का प्रयोग शुरू करते ही वह डर कर भाग जाएगा । क्रोध भी डरता है । जितने आवेग हैं, वे सब डरते हैं। जब श्वास लंबा होने लगता है, कषाय पलायन कर जाते हैं ।

आश्चर्य की बात

मनोवैज्ञानिकों ने संवेग और श्वास पर काफी अनुसंधान किए हैं। यह आश्चर्य की बात है—जिस हिन्दुस्तान में आसन-प्राणायाम, श्वास और संवेग—इन सब पर प्रचुर साहित्य लिखा गया, जैन, बौद्ध, नाथ संप्रदाय, हठयोग आदि में इन पर बहुत साधनाएं चली हैं, उसी देश में आज श्वास पर रिसर्च करने वाला एक भी केन्द्र नहीं है । कनाडा में केवल श्वास पर शोध के लिए एक

स्वतंत्र संस्थान स्थापित हुआ है। पचासों वैज्ञानिक श्वास पर रिसर्च कर रहे हैं । श्वास का हमारे जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है ? उन वैज्ञानिकों का कहना है—लंबा श्वास लीजिए और अपने जीवन को बचाइए । हम जितना लंबा श्वास लेंगे, अपने जीवन को बचाएंगे, आयु को लम्बा करेंगे । जितना छोटा श्वास लेंगे, जीवनी शक्ति को उतना ही क्षीण करेंगे । हमें आयुष्य को पूरा भोगना है पर कितने समय में भोगना है, यह हमारे हाथ में भी है । हमने आयुष्य के पुद्‌गल इतने जमा कर रखे हैं कि ठीक से जिएं तो दो-तीन सौ वर्ष तक जी सकते हैं । रूस के एक वैज्ञानिक ने घोषणा की है—आदमी में इतनी ताकत है कि वह तीन सौ वर्ष तक जी सकता है। कठिनाई यह है—हमने इतने पाहुनों को बुला रखा है कि वे तीन सौ वर्षों तक चलने वाली हमारी सामग्री को पचास-साठ वर्षों में ही समाप्त कर देते हैं।

उपेक्षा न करें

श्वास नियामक है, वह रोकता है । अकाल मृत्यु के जितने भी कारण हैं, उन सबको श्वास रोकता है । हम मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से, भावात्मक स्वास्थ्य की दृष्टि से और नियंत्रण की दृष्टि से श्वास का मूल्यांकन करें । उसकी उपेक्षा न करें । यदि छोटे बच्चों को प्रारम्भ से ही प्रतिदिन बीस मिनट दीर्घश्वास का प्रयोग कराया जाए तो उनके जीवन में एक नई शक्ति, नई स्फूर्ति और नए प्रकाश का अनुभव होगा। मैं यह मानता हूं, यह आनापान, जो नामकर्म की एक प्रकृति है, शायद अंतराय कर्म के क्षयोपशम में बहुत बड़ा कारण है, ज्ञानावरण एवं दर्शनावरण के क्षयोपशम में बहुत बड़ा कारण है और मोहनीय कर्म के क्षयोपशम में भी बहुत बड़ा आलंबन बन सकता है। प्रेक्षा-ध्यान का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है दीर्घश्वास प्रेक्षा । हम इसका लाभ उठाएं। इस दिशा में चलना शुरू करें, चलते-चलते एक दिन अवश्य ही मंजिल पर पहुंच जाएंगे ।

समवृत्ति श्वास प्रेक्षा

सत्य की खोज का अर्थ है - नियमों की खोज । प्राकृतिक जगत् में बहुत सारे नियम हैं । पौद्गलिक जगत् के अपने नियम हैं । आत्मिक जगत् के अपने नियम हैं । हमारे सशरीर चैतन्य के भी बहुत सारे नियम हैं । हमारा शरीर और भीतर की चेतना—इन दोनों के योग में बहुत सारे नियम प्राप्त हैं । नियम के आधार पर हमारा जीवन चलता है। जो नियमों को समझता है, बदलने के सूत्र उसके हाथ लग जाते हैं। जो नियमों को नहीं जानता, बदलने के सूत्र उसके हाथ में नहीं आ पाते। ऐसा नहीं है कि जो जैसा चल रहा है, वह वैसा ही चलता है। यदि हम नियमों को जान लें तो जो चल रहा है, उसे बदल सकते हैं। यदि हम नियमों को न जानें तो जैसा चल रहा है वैसा ही चलता रहेगा।

परिवर्तन का नियम

जो स्वर है, श्वास है, वह परिवर्तन का एक नियम है । प्राण का भी एक नाम है स्वर और उससे जुड़ा हुआ है श्वास । हमारे शरीर में स्वर का एक चक्र चलता है । कभी दाईं नासिका से स्वर चलता है तो कभी बाईं नासिका से । स्वर बदलता रहता है । प्राचीन लोगों ने कहा - अढ़ाई घड़ी से स्वर बदलता है । एक घड़ी अड़चास मिनट की होती है। वर्तमान के वैज्ञानिक अनुसंधाता कहते हैं - ढ़ाई घंटा से स्वर-चक्र बदलता रहता है। जब बायां स्वर चलता है तब एक प्रकार की क्रिया होती है । जब दायां स्वर चलता है तब दूसरे प्रकार की क्रिया होती है। इस पर प्राचीन काल में बहुत गहन अध्ययन हुआ और उसके आधार पर स्वरोदय शास्त्र का विकास हुआ।

स्वर के आधार पर वर्तमान, भूत एवं भविष्य की स्थितियां बतलाई गईं। कभी कभी स्वर के आधार पर ऐसी चामत्कारिक बातें कही गईं, जिनकी सामान्य आदमी कल्पना भी नहीं कर सकता । वह उन्हें एक चमत्कार ही मानता है। वस्तुतः हम नियम को जानते हैं तो वह हमारे लिए एक नियम होता है और नियम को नहीं जानते हैं तो वही नियम हमारे लिए एक चमत्कार बन जाता है।

स्वरोदय शास्त्र

एक चामत्कारिक विधि है स्वरोदय शास्त्र । स्वर का बहुत विकास हुआ। किस स्वर में कैसी प्रवृत्ति करनी चाहिए, कैसी प्रवृत्ति नहीं करनी चाहिए — इन सबका विधान किया गया । कहा गया - यदि गर्म प्रकृति का कोई काम करना है तो दायां स्वर चलना चाहिए। ठण्डे दिमाग से काम करना है, सौम्य और शांत काम करना है तो बायां स्वर चलना चाहिए । जब दोनों स्वर एक साथ चलने लग जाते हैं तब समाधि का कार्य होता है । उस समय केवल ध्यान आदि की साधना करनी चाहिए। न चल और न अचल, न सौम्य और न उष्ण, केवल समाधि की अवस्था। यह स्वरविज्ञान की खोज एक बहुत बड़े विज्ञान की खोज है।

मस्तिष्कीय गोलार्द्ध-चक्र

आज के वैज्ञानिकों ने स्वर-चक्र के साथ एक दूसरी खोज की और वह है मस्तिष्क के गोलार्द्धों का चक्र । जैसे यह स्वर-चक्र चलता है वैसे ही मस्तिष्क के गोलार्द्धों का एक चक्र चलता है । इसका समय माना गया है नब्बे मिनट । नब्बे मिनट तक दायां मस्तिष्क काम करता है और नब्बे मिनट तक बायां मस्तिष्क काम करता है । इसका अर्थ यह नहीं है कि एक स्वर-चक्र चलेगा तो दूसरा चक्र बंद हो जाएगा। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि दायां मस्तिष्क काम करेगा तो बायां बिल्कुल बंद हो जायेगा । इसका तात्पर्य है— एक अधिक सक्रिय बन जाएगा तो दूसरा कम सक्रिय हो जाएगा ।

मस्तिष्क का कार्य

प्रश्न होता है–मस्तिष्क का कार्य क्या है ? मस्तिष्क के दोनों गोलार्द्धों का कार्य क्या है? हमारा सारा संचालन मस्तिष्क के द्वारा होता है। मुख्यतया मस्तिष्क या मेरुदण्ड के द्वारा हमारी प्रवृत्तियां संचालित होती हैं। दाएं मस्तिष्क का काम है - अनुशासन, धर्म, आस्था, सौजन्य, अच्छा आचरण आदि । अध्यात्मविद्या–पराविद्या का पूरा काम दाएं मस्तिष्क का है । बाएं मस्तिष्क का काम है - पढ़ना, लिखना आदि। तर्क, गणित, आदि जितनी लौकिक विद्याएं हैं, वे सब दाएं मस्तिष्क का कार्य हैं । दोनों का अपना अपना काम बंटा हुआ है । इन दोनों का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हमारे हाथ में नियंत्रण और परिवर्तन के कई सूत्र आ जाते हैं।

ऋतुचक्र

आदमी की मनोदशा (Mood) बदलती रहती है । सुबह से शाम तक कम से कम सैकड़ों बार मूड बदलता होगा । एक बच्चे का मूड भी बदलता है, एक युवक का मूड भी बदलता है । समझदार और नासमझ–दोनों का मूड बदलता है । शायद ही ऐसा आदमी मिले, जिसका मूड न बदलता हो। बदलने का एक कारण है ऋतुचक्र । हमारे साथ एक ऋतु चक्र भी चलता है। एक वर्ष में छह ऋतुएं होती हैं-ग्रीष्म, वर्षा, शरद् आदि । सूक्ष्म अध्ययन करने वालों ने बताया–आदमी एक दिन में छह ऋतुएं भोगता है । प्रातः काल का समय है तो बसंत ऋतु चल रही है। एक प्रहर बीतेगा, ग्रीष्म ऋतु आ जाएगी, सिर भी गरमाने लग जाएगा । किसी से ठण्डे दिमाग से बात करनी है तो प्रातःकाल करो । दोपहर एक बजे अच्छी बात करेंगे तो वह भी उल्टी पड़ जाएगी । उस वक्त सामान्य बात भले ही करें, बहुत महत्त्वपूर्ण बात नहीं करनी चाहिए। कोई महत्त्वपूर्ण कार्य से जुड़ी बात हो, सुझाव या मार्गदर्शन की बात हो तो ग्रीष्म ऋतु में मत करो । हो सकता है–लेने के देने पड़ जाएं। शाम का समय होता है वर्षा ऋतु का। संध्या होते होते दिमाग ठंडा होने लगता है । प्रायः मंत्रणा का समय होता है सायं चार बजे के बाद । बारह बजे से

चार बजे के बीच का जो समय है, उसमें मंत्रणा नहीं होनी चाहिए।

परिवर्तन के सूत्रों को जानें

यह ऋतु का चक्र बराबर चलता है । तीन ऋतुएं दिन में होती हैं और तीन ऋतुएं रात में । हम कितने चक्रों के बीच चल रहे हैं । स्वर-चक्र, ऋतुचक्र और मस्तिष्कीय पटलों का चक्र । ये चक्र प्रकृति से उपलब्ध हैं। हम इन्हें जान लें तो परिवर्तन के सूत्र हाथ लग जाते हैं । यदि हम इन्हें नहीं जान पाते हैं तो कुछ ऐसी बातें आ जाती हैं, जो वांछनीय नहीं होतीं ।

एक ब्राह्मण पैदल यात्रा कर रहा था। चलते-चलते जंगल आ गया। ब्राह्मण ने सोचा—यहां खुला स्थान है । भोजन बनाकर खाना खा लेना चाहिए। आटा-दाल उसके पास थे । उसने इधर-उधर से पत्थर इकट्ठे किए । गीली मिट्टी का चौका बनाया । वह सारी तैयारी कर लकड़ियां बीनने चला गया। उसी समय एक गधा आया और वह उस चौके में बैठ गया । ब्राह्मण ने देखा—चौके में कोई बैठा हैं । इतने श्रम से बनाया चौका खराब हो गया है। समस्या हो गई रसोई बनाने की । रसोई कहां बनाए ? वह निराश स्वर में बोल उठा—दूसरा कोई होता तो उसे कहता - गधे हो, कुछ देखते नहीं । जब आप स्वयं आकर विराज गए हैं तो आपको क्या कहूं । आपके लिए कोई शब्द ही नहीं रहे । अनुपमेय हैं आप । मैं आपको क्या उपमा दूं?

ऐसा जीवन में भी होता है । हम कोई चौका बनाते हैं और ऐसी घटना घट जाती है, जो समस्या पैदा कर देती है । जरूरी है ऐसी व्यवस्था करना, जिससे चौके की तरफ गधा आए ही नहीं । ऐसे परिवर्तन के नियमों को खोजना अपेक्षित है, जो समस्या को आने ही न दें ।

रहस्यपूर्ण प्रयोग

स्वर-चक्र का हमारे स्वभाव के साथ गहरा संबंध है । लौकिक और अलौकिक विद्याओं के साथ उसका गहरा संबंध है । हमारी मनोदशा के साथ भी उसका संबंध है । हमारे भाग्य के साथ भी उसका संबंध जुड़ा हुआ है ।

समवृत्ति श्वास प्रेक्षा का प्रयोग सामान्य प्रयोग नहीं है । उसकी प्रयोग विधि बहुत सामान्य है-'बाएं नथुने से श्वास लें और दाएं नथुने से श्वास निकालें फिर दाएं नथुने से श्वास लें और बाएं नथुने से श्वास निकालें' इस प्रकार श्वास की आवृत्तियां करते चले जाएं । यह प्रयोग इतना सा ही लगता है पर यह इतना ही नहीं है । यह बहुत रहस्यपूर्ण प्रयोग है ।

वैज्ञानिक खोजों का निष्कर्ष

आजकल स्वरचक्र और मस्तिष्क पर बहुत वैज्ञानिक अनुसंधान चल रहे हैं । वैज्ञानिक खोजों का निष्कर्ष है—जब बायां स्वर चलता है तो मस्तिष्क का दायां पटल सक्रिय हो जाता है और जब दायां स्वर चलताहै तब मस्तिष्क का बायां पटल सक्रिय हो जाता है । हमारे हाथ में कुछ सूत्र आ गए । यदि हमें बहुत शांत, शालीन और अनुशासन में रहना है तो बाएं स्वर को चलाएं। इससे दायां मस्तिष्कीय पटल सक्रिय होगा, हमारी मनोदशा बदल जाएगी, उत्तेजना शांत हो जाएगी, अपने आपको जानने की, आत्मनिरीक्षण की वृत्ति जागेगी । यह एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है—दाएं मस्तिष्क को जगाने के लिए बाएं स्वर का प्रयोग करें । जब जब हम बाएं स्वर को चलाते हैं तब तब ऐसा लगता है—दिमाग बिलकुल शांत होता जा रहा है, वातानुकूलन जैसी स्थिति का अनुभव होता है । हमने इस सचाई का अनुभव किया है । दाएं स्वर को बंद कर बाएं स्वर को चलाया और उसका लम्बे समय तक अभ्यास किया तो ऐसा अनुभव हुआ - भीतर में बिल्कुल शान्ति हो गई है । जो लोग चंचल मन वाले हैं, तनाव और अशान्ति में रहते हैं, उनका दायां स्वर चलेगा तो तनाव बढ़ेगा । तनाव को मिटाना है तो दाएं स्वर को बंद कर बाएं स्वर को चलाएं। थोड़ी देर में तनाव अपने आप कम होता चला जाएगा।

समस्या : समाधान

प्रत्येक व्यक्ति समस्याग्रस्त है। आजकल विद्यार्थी भी समस्या बन रहा है। विद्यार्थी उद्दंड और अच्छृंखल क्यों है? जिस विद्यार्थी का दायां मस्तिष्क सक्रिय नहीं है, वह बहुत उद्दंड और उच्छृंखल होगा । बाएं स्वर को चलाना

उसके लिए बहुत उपयोगी है । हमारी जितनी सृजनात्मक और रचनात्मक प्रवृत्तियां हैं, भाषा, गणित, तर्क आदि जो शक्तियां हैं, उनका विकास करना है तो बाएं स्वर को चलाकर दाएं मस्तिष्क पटल को सक्रिय करना बहुत उपयोगी है । जो लोग बहुत कमजोर हैं, भीरु और डरपोक हैं, दीनता और निराशा की भावना से भरे रहते हैं, उनके लिए भी दाएं स्वर का प्रयोग बहुत हितकर होता है । दायां स्वर चले तो ये सारी समस्याएं मिट जाएं ।

साम्योदय : भाग्योदय

समस्या यह है - कब बाएं स्वर को चलाएं और कब दाएं को चलाएं? इस समस्या को समाधान देने वाली एक विधि का विकास किया गया और वह है समवृत्ति श्वास प्रेक्षा। यह अनुलोम-विलोम प्राणायाम नहीं है किन्तु ध्यान का एक प्रयोग है । हम समता की बात करते हैं, साम्य योग और सामायिक की बात करते हैं । जीवन में समता आनी चाहिए किन्तु जिसका नाड़ीतंत्र संतुलित नहीं है, स्वरचक्र संतुलित नहीं है, मस्तिष्क का दायां और बायां पटल संतुलित नहीं है, उसमें समता का विकास कितना होगा । समता के लिए इस संतुलन को बनाना जरूरी है । बहुत सारी बातें आ जाती हैं और समता नहीं आती है तो सब कुछ व्यर्थ सा हो जाता है । दूसरी भाषा में कहा जा सकता है—जिसमें समता नहीं जागती, उसका भाग्योदय ही नहीं होता, सब कुछ होने पर भी वह रिक्त बना रहता है ।

कुंती की सीख

कुंती पांडवों के साथ जंगल में रह रही थी । कुछ स्त्रियों को इस बात का पता चल गया । वे इकट्ठी होकर कुंती से मिलने चली आईं। महिलाओं ने कुंती से निवेदन किया—महारानी जी! आप जंगल में पधारी हैं। हमें आपके दर्शनों का कब मौका मिलता है । आप हमें कुछ सीख दें। कुंती के मन में गहरी वेदना थी फिर भी वह कुछ शांत हुई। उसने कहा—

भाग्यवंतं प्रसूयेथाः, मा शूरान् माँश्च पंडितान् ।
शूराश्च कृतविद्याश्च, वने सीदंति मत्सुताः ।।

तुम स्त्री हो, माता हो ! तुम बेटे को जन्म दो तो भाग्यवान् को जन्म देना। न शूरवीर को पैदा करना, न विद्वान् को पैदा करना और न पंडित को पैदा करना । जन्म दो तो भाग्यवान को जन्म दो ।

महिलाओं ने पूछा - क्यों ?

कुंती ने कहा – देखो ! ये मेरे पुत्र सामने खड़े हैं । ये कितने शूरवीर हैं, पुरुषार्थी और पराक्रमी हैं । कितने कृतविद्य हैं । इन्होंने सारी धनुर्विद्या को ह तगत कर लिया है फिर भी जंगल में ठोकरें खा रहे हैं। इसलिए मेरी एक ही सीख है—भाग्यवान पुत्र को ही जन्म देना ।

भाग्य है तो सब कुछ है । वह नहीं है तो विद्या और पराक्रम ठोकरें खाते हैं।

समता : भाग्य

हम इस घटना को दूसरे संदर्भ में देखें । भाग्योदय के स्थान पर साम्योदय कर दें । समता को उत्पन्न करो । समता है तो सब कुछ है। वह नहीं है तो कुछ भी नहीं है । जीवन की दो धाराएं हैं—लौकिक धारा और अलौकिक धारा। अलौकिक धारा अध्यात्म की धारा है । जिस व्यक्ति ने आध्यात्मिक जीवन जीना शुरू किया है और उसके जीवन में समता नहीं आ पाई है तो मानना चाहिए—उसने जीवन में कुछ भी नहीं पाया है । पराक्रम और विद्वत्ता का कोई मूल्य नहीं है। व्यक्ति कितना ही पराक्रमी और विद्वान् हो किन्तु यदि उसके जीवन में समता का अवतरण नहीं हुआ तो कुछ भी नहीं हुआ । लौकिक भाषा में कहा जा सकता है—व्यक्ति कितना ही पढ़ा लिखा हो, विद्वान् और पराक्रमी हो, यदि भाग्य उसका साथ नहीं देता है तो सब कुछ हो जाने पर भी वह कुछ कर नहीं पाता।

संतुलन और समता

धार्मिक जीवन का सबसे बड़ा सूत्र है – समता की साधना, सामायिक की आराधना । स्वर-संतुलन के द्वारा हम इस सूत्र को खोज सकते हैं। न

बायां स्वर अधिक सक्रिय और न दायां स्वर अधिक सक्रिय । दोनों स्वर संतुलित रहें तो जीवन में समता का अवतरण हो सकेगा । दायां स्वर अधिक सक्रिय होगा तो क्रोध ज्यादा आना शुरू हो जाएगा, उत्तेजना एवं आक्रामक वृत्ति बढ़ेगी । बायां स्वर अधिक सक्रिय होगा तो डर, भय और हीन भावना बढ़ेगी । यह एक प्रकार की विषमता की स्थिति है । समता वहां है, जहां न भय है और न उद्दंडता । कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो बहुत उद्दंड होते हैं, उनके लिए डर नाम का कोई शब्द नहीं होता । जब तक कोई कुछ न करे, तब तक सब कुछ ठीक है । किसी के कुछ कहते ही व्यक्ति गुस्से में भर जाता है । बहुत बार ऐसी धमकियां भी दे देता है—मैं घर से भाग जाऊंगा, छत से नीचे गिर जाऊंगा आदि-आदि। दूसरों को डराना-धमकाना उसके स्वभाव का एक अंग बन जाता है। कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो बहुत दब्बू और डरपोक होते हैं । घर से बाहर जाने में उन्हें डर लगता है । एक युवक ने कहा - 'मेरी बहुत विचित्र स्थिति है । मैं किसी से काम की बात नहीं कर सकता। व्यापार नहीं चला सकता। किसी के सामने आते ही हार्ट धक् धक् करने लग जाता है ।' हमें ऐसे सूत्र को खोजना है, जिससे ये दोनों वृत्तियां न हों, केवल समता की वृत्ति हों। न उद्दंडता और न भय । अभय हो और उसके साथ हो अहिंसा, मैत्री एवं अनुशासन का योग ।

साम्यवाद

हमारा सारा व्यवहार और आचरण समता से संचालित हो तो उससे बढ़िया कोई प्रणाली नहीं हो सकती । जो लोग कई दशकों से साम्यवाद के विकास में लगे हुए हैं, वे आज कह रहे हैं-साम्यवाद हमारे लिए कोई मॉडल नहीं है। लोकतंत्र और स्वतन्त्रता पर पूंजीवाद का एकाधिकार नहीं है। ये स्वर साम्यवाद से जुड़े लोगों के हैं। इसका अर्थ है—हमारा आचरण समता से अनुस्यूत नहीं रहा और इसीलिए साम्यवाद सफल नहीं हो सका । जहां समता है वहां विषमता पनप नहीं सकती। जहां विषमता है वहां अवश्य ही समता का अभाव है। अध्यात्म के आचार्यों ने लिखा, हमारे आचरण का कोई चरम

का अभाव है। अध्यात्म के आचार्यों ने लिखा, हमारे आचरण का कोई चरम बिन्दु है तो वह है समता। जिस दिन समता एवं सामायिक का विकास होगा, वह दिन धन्य होगा । राजनैतिक प्रणाली हो या सामाजिक प्रणाली—हम इन विभिन्न प्रणालियों का समता के नियमों के द्वारा संचालन करें तो एक स्वस्थ एवं शान्तिपूर्ण जीवन प्रणाली का विकास हो सकता है। उनमें एक नियम है स्वर चक्र के संतुलन का, समवृत्ति श्वास प्रेक्षा का । इसके द्वारा वृत्तियों में संतुलन स्थापित कर समतामय जीवन का निर्माण किया जा सकता है ।

शरीर प्रेक्षा

चिर साथी

अध्यात्म के आचार्यों ने कहा—कर्त्ता भाव को छोड़ो, कर्त्ता मत बनो, अकर्त्ता बनो । बहुत कठिन है अकर्त्ता होना। सहज जिज्ञासा होती है-एक व्यक्ति दो पैर से चलता है तो भी कर्त्ता बन जाता है । एक घूंट पानी पीता है तो भी कर्त्ता बन जाता है । कुछ भी क्रिया करता है तो कर्त्ता बन जाता है । वह अकर्त्ता कैसे हो सकता है? यह कथन भी बड़ा अटपटा सा लगता है—द्रष्टा बनो, देखने वाला बनो । जिस आदमी के पास आंखें हैं वह देखता है। ऐसा कोई नहीं है, जिसके पास आंखें हैं किन्तु जो दिन में न देखता हो। आजकल तो रात में भी देख लेता है । इस स्थिति में बार-बार यह क्यों कहा जा रहा है—द्रष्टा बनो, देखो । अपने शरीर को देखो । शरीर को क्या देखें? जिसमें रह रहे हैं, उसे क्या देखें ? सदा साथ रहता है हमारा शरीर । कुछ ऐसे साथी होते हैं, जो कभी साथ होते हैं, कभी बिछुड़ जाते हैं। किन्तु शरीर ऐसा साथी है,जो कभी बिछुड़ता नहीं है और बिछुड़ जाता है तो फिर कभी मिलता ही नहीं है। यह शरीर, जो चिरकाल से हमारा साथी बना हुआ है और जिसे निरन्तर अपनी आंखों से देखते रहते हैं, उसे देखने की बात क्यों कही जा रही है?

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

वस्तुतः हम देखना जानते ही नहीं हैं। आंखों से देखना एक बात है और द्रष्टा होना अलग बात है । लोग बहुत कुछ जानते हैं, कला और साहित्य को जानते हैं, भाषा और विज्ञान को जानते हैं पर देखना बहुत कम जानते

हैं । बहुत सारी कलाओं को जानने के बाद भी देखने की कला नहीं आती। बहुत बड़ी कला है देखना । बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है--कैसे देखें? एक व्यक्ति सामने आया । उससे हमारा वैर-विरोध चल रहा है । हम उसको देख रहे हैं । प्रश्न होता है--क्या हम उसे ही देख रहे हैं? हमने उस व्यक्ति को बिल्कुल नहीं देखा । हमारे मन में उसके प्रति एक धारणा जमी हुई है । हम धारणा की आंख से उसे देख रहे हैं । हम आंखों से देख रहे हैं पर बीच में एक और तत्त्व आ गया है। वह तत्त्व है अप्रियता का भाव । हमने उस आदमी को नहीं देखा, एक विरोधी या दुश्मन को देखा । कोई प्रिय व्यक्ति सामने आया। हमने उसको देखा। क्या उसको ही देखा? उस व्यक्ति और हमारी दृष्टि के मध्य एक भाव आ गया - प्रियता का भाव । हमने प्रियता को देखा, उसे नहीं देखा ।

मोहित है दृष्टि

वस्तुतः हम किसी व्यक्ति को साक्षात् देख ही नहीं पाते हैं । कभी प्रियता का भाव बीच में आ जाता है और कभी अप्रियता का भाव। कर्मशास्त्रीय भाषा है--देखना ज्ञानावरण और दर्शनावरण कर्म का काम है किन्तु हम ज्ञानावरण और दर्शनावरण का उपयोग ही नहीं करते । बीच में मोहनीय कर्म आ जाता है । वह खीर में मूसल की भांति आ टपकता है । बिन चाहे, बिन बुलाए अनाहूत ही आ पहुंचता है। मोह आगे आ जाता है, देखना-जानना पर्दे के पीछे चला जाता है। हम देखना नहीं जानते, मोह करना जानते हैं । हमारी दृष्टि मोह की दृष्टि बन गई है। इसे मिथ्या दृष्टिकोण कह दें या कांक्षा मोहनीय कह दें । यह हमारी दृष्टि को कभी प्रियता के द्वारा मोहित कर देता है और कभी अप्रियता के द्वारा।

बाधा है सम्मोहन

हम देखते नहीं हैं, सम्मोहित होते हैं । देखना वहां है जहां सम्मोहन नहीं है । सम्मोहन के प्रयोग बहुत चलते हैं । सम्मोहन (हिप्नोटिज्म) विद्या

में कुशल व्यक्ति दूसरे व्यक्ति पर सम्मोहन का प्रयोग करता है। व्यक्ति के सम्मोहित हो जाने पर निर्देशक कहता है—तुम्हारे हाथ पर अंगारा रखा हुआ है । तुम अनुभव करो—तुम्हारा हाथ जल रहा है । तुम्हारे हाथ में फफोला हो गया है और सचमुच व्यक्ति के हाथ में फफोला हो जाता है । होती है बर्फ और वह देखता है अंगारा । बर्फ ठंडी है किंतु उसको हाथ में जलन का अनुभव होता है । उसके देखते-देखते हाथ में फफोला हो जाता है । यह सम्मोहन है और सम्मोहन में ऐसा होता है । सारी दुनिया में एक सम्मोहन चल रहा है । सबसे बड़ा आधिपत्य और साम्राज्य है सम्मोहन का । मोहनीय कर्म का सबसे ज्यादा सम्मोहन है । इससे ज्यादा कोई सम्मोहन है ही नहीं। यह सम्मोहन साक्षात् दर्शन में बहुत बड़ी बाधा है । जब भी देखना होता है, यह मोहनीय कर्म बीच में आ जाता है । देखना वह है, जिसमें राग-द्वेष, घृणा, भय आदि भाव बीच में न आएं । हम सीधा व्यक्ति या वस्तु को देखें। इसका नाम है दर्शन । इसके सिवाय सब कुछ सम्मोहन से जुड़ा दर्शन है, केवल दर्शन नहीं है ।

आदि बिन्दु : अंतिम बिन्दु

केवल देखना सचमुच कठिन साधना है । उसके लिए बहुत तपना और खपना पड़ता है । लम्बी साधना के बाद देखने की शक्ति, द्रष्टा की शक्ति जागती है । द्रष्टा होना सरल बात नहीं है । द्रष्टा वह है, जो केवल देखता है । प्रश्न है—मोह बीच में है तो व्यक्ति द्रष्टा बनेगा कैसे ? मोह द्रष्टा बनने ही नहीं देगा। जो द्रष्टा बन गया, वह सब कुछ बन गया । द्रष्टा के लिए कोई उपदेश नहीं है । उसे न प्रवचन सुनने की जरूरत है, न साधना शिविरों में भाग लेने की जरूरत है। एक शब्द में कहें तो महावीर की साधना का सूत्र है—केवल ज्ञान, केवल दर्शन। साधना का आदि बिन्दु भी यही है और अंतिम बिन्दु भी यही है। साधना का प्रारम्भ बिन्दु है केवल ज्ञान-केवल दर्शन और अंतिम बिन्दु है-केवल ज्ञान-केवल दर्शन। आदि बिन्दु और अंतिम बिन्दु के बीच कोई दूरी नहीं है ।

केवल ज्ञान : इसी क्षण में

अनेक बार प्रश्न आता है—यह पांचवां आरा है, दुःषमकाल है । क्या आज भी केवल ज्ञान हो सकता है ? केवल दर्शन हो सकता है? क्यों नहीं हो सकता ? यदि अभ्यास करें तो आज भी केवल ज्ञान और केवल दर्शन हो सकता है । इसी क्षण हो सकता है यदि मोह को बीच में न आने दें । केवल जानें, केवल देखें । ज्ञाता-द्रष्टा बनें । वस्तु केवल ज्ञेय बने । ज्ञाता और ज्ञेय के बीच हेय को न आने दें । केवल ज्ञाता और ज्ञेय का संबंध रहे ।

केवल ज्ञान शुद्ध ज्ञान है । गंगा का निर्मल पानी बह रहा है। उसमें फैक्ट्रियों का गंदा पानी न मिलने दें । फैक्ट्रियों का गंदा पानी गंगा में नहीं मिलेगा तो गंगा का शुद्ध पानी केवल पानी रहेगा । आज केवल पानी कहां है? उसमें कितना मिश्रण है । बड़े शहरों में सीवरेज व्यवस्था होती है । जल और मल—दोनों के नल साथ साथ चलते हैं। कहीं भी टूट फूट होती है, जल और मल का मिश्रण हो जाता है। वही पानी घरों में पहुंचता है । बीमारियां फैल जाती हैं । उद्घोषणाएं होती हैं—पानी को गर्म करके पीएं। अन्यथा बीमारी फैल जाएगी । हमारा ज्ञान भी शुद्ध ज्ञान नहीं रहा । इसमें मोहनीय कर्म का नाला मिल गया। यदि हम मोहनीय कर्म के नाले को न मिलने दें, हमारा ज्ञान कोरा ज्ञान बना रहे तो इसी क्षण केवल ज्ञान और केवल दर्शन हो सकता है। हम सावधान रहें, ज्ञान में मोह की फैक्टरी का कचरा न मिलने दें। मोहनीय कर्म की जो रासायनिक गंदगी आती है, इससे अपने आपको बचाते रहें ।

निदर्शन मिश्रण का

बालोतरा और जसोल ग्राम के बीच लूनी नदी बहती है । बरसात के दिनों में जब यह नदी बहती है तो आस-पास के कुए पानी से भर जाते हैं। एक समय था—इस नदी के आस-पास बने हुए कुओं का पानी बहुत बढ़िया था, स्वास्थ्यकर था किन्तु जब से नदी के दोनों ओर फैक्टरियों का जाल बिछना शुरू हुआ है, नदी का पानी शुद्ध नहीं रहा। फैक्टरियों का रासायनिक

और दूषित जल नदी में जमने लगा और उसका असर कुओं के पानी में आ गया है। शुद्ध पानी इन रसायनों के प्रभाव से अपनी शुद्धता खो रहा है। यह जसोल, बालोतरा या पाली की ही बात नहीं है। जहां-जहां फैक्ट्रियां और कारखाने पनप रहे हैं, वहां वहां हवा, पानी और जल--सब कुछ दूषित बनते जा रहे हैं। हम इस दोष को बीच में न आने दें, पानी की शुद्धता बनी रहेगी। यही स्थिति ज्ञान के संदर्भ में है। हम मोह को बीच में न आने दें, हमारा ज्ञान शुद्धता से परिपूर्ण रहेगा।

देखने की कला सीखें

देखने की कला वह है, जिसमें मोह न हो। इस कला को सीखने वाला सचमुच महान् बन जाता है। हम पहले इस कला को सीखें फिर शरीर को देखें। यदि हम दर्पण के सामने खड़े होकर शरीर को देखेंगे तो मोह और बढ़ जाएगा। इसीलिए यह कहा गया था—मुखड़ा क्या देखें दर्पण में। समझदार आदमी भी कांच के सामने खड़ा होता है तो आधा पागल बन जाता है। कभी वह मुंह को देखता है, कभी आंख और नाक को देखता है। कभी चश्मा लगाकर चेहरे को देखता है और कभी उसे उतार कर देखता है। अपने चेहरे को विभिन्न रूपों और विभिन्न कोणों से देखता रहता है। जब कांच सामने होता है तो वह पागल जैसा ही बन जाता है। सीधे दर्पण के सामने खड़े होकर देखना कोई कला नहीं है। हम पहले देखने की कला सीखें फिर चाहे दर्पण में अपना चेहरा देखें। चक्रवर्ती भरत ने भी दर्पण में शरीर को देखा था। वे आदर्श मंदिर में उसे देखते देखते ही कैवल्य को उपलब्ध हो गए। सनत्कुमार ने अपने शरीर को देखा और अंतिम बिन्दु तक पहुंच गए। जिसने देखने की कला को सीखा है और उस कला से देखता रहता है, वह साध्य तक पहुंचने में सफल हो जाता है। देखने के लिए न कांच की जरूरत है, न आंख की जरूरत है, केवल अनुभव को जगाने की जरूरत है।

चेष्टा और स्पंदन

प्रश्न होता है—हम शरीर में क्या देखें ? दो तत्त्व हमारे सामने हैं—चेष्टा और स्पंदन । हम चेष्टा को देखें, स्पंदन को देखें । आयुर्वेद की भाषा है—वातेन सर्वाः चेष्टाः -सारी चेष्टाएं वायु के द्वारा हो रही हैं। मेडिकल साइंस की भाषा है—सारी चेष्टाएं ऐच्छिक नाड़ीतंत्र के द्वारा होती है । अंगुली हिलाना, हाथ हिलाना, पैर हिलाना, बोलना—ये सब ऐच्छिक नाड़ीतंत्र की क्रियाएं हैं । जो स्पंदन हैं, वे अनैच्छिक नाड़ीतंत्र की क्रियाएं हैं । पूरे शरीर में स्पंदनों का जाल बिछा हुआ है। वह स्वतः हो रहा है । चेष्टा का होना हमारी इच्छा पर निर्भर है पर स्पंदन का होना हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं है । वह अनैच्छिक नाड़ी तंत्र का कार्य है, उसकी क्रिया है, जो सहज संचालित हो रही है । शरीर को देखें, इसका अर्थ है—अनैच्छिक नाड़ीतंत्र की क्रिया को देखें। उस क्रिया को देखें, जो हमारे अधीन नहीं है ।

शरीर प्रेक्षा का अर्थ

यह माना जाता है—ऐच्छिक नाड़ी तंत्र की क्रिया व्यक्ति के अधीन है। चाहे तो करें और चाहे तो न करें । अनैच्छिक नाड़ीतंत्र की क्रिया हमारे अधीन नहीं है। हृदय धड़कता है । उसका धड़कना या न धड़कना हमारे हाथ में नहीं है । भोजन करना हमारे हाथ में है लेकिन भोजन का पचना हमारे हाथ में नहीं है । बहुत सारे लोग भोजन करने के बाद तत्काल लेट जाते हैं। उन्हें यह पता ही नहीं होता कि भोजन पच रहा है या नहीं पच रहा है । तत्काल लेटना भोजन के पाचन में बाधा जरूर डालता है । सामान्यतः नियम है—भोजन करने के बाद आधा घंटा तक नींद नहीं लेनी चाहिए । हम सो सकते हैं किन्तु नींद आ गई तो भोजन के पचने में बाधा आनी शुरू हो जाएगी। भोजन का पाचन अपने आप चलता है। रक्ताभिसरण की क्रिया अपने आप हो रही है। हम नहीं जानते—रक्त शरीर में कितने चक्कर लगा रहा है। तैजस शरीर के प्रकंपन हो रहे हैं । उनमें कितनी बिजली है, इसका हमें पता नहीं है। अहमदाबाद की एक बहन ने ध्यान का प्रयोग किया। वह

कुछ ही देर में गहराई में चली गई । उसके हाथ की क्रियाएं ऐसे शुरू हो गई, जैस यंत्र चल रहा हो । उसका तैजस शरीर सक्रिय हो गया। स्वयं आसन, स्वयं मुद्रा और स्वयं संचालन—बाहर का कुछ पता ही नहीं चला। सूक्ष्म शरीर के प्रकंपन भी निरन्तर हो रहे हैं । इन सबको देखने का अर्थ है--शरीर को देखना ।

अपनी भाग्यलिपि पढ़ें

हम अपने शरीर के भीतर देखें । शरीर के भीतर जो है, उसे पढ़ें। उसमें हम अपनी भाग्यलिपि को पढ़ सकते हैं।

प्राचीन समय की बात है । सेठ के पास एक व्यक्ति चिट्ठी लेकर आया। सेठ ने उसे अपने मकान के एक हिस्से में ठहराया। उसे रोटी बनाने के लिए आटा दे दिया, दाल और मसाला दे दिया । उस व्यक्ति ने सेठ से कहा—सेठजी! मुझे घी दो, चीनी दो, यह दो, वह दो

सेठ बोला—भले आदमी! लड़ते क्यों हो ? जो देना था, दे दिया।

उसने कहा - मेरे सेठ ने कहा था कि तुम्हारी बहुत आवभगत होगी। घृत-मिष्ठान्न का भोजन मिलेगा। तुम कृपण हो इसलिए कुछ भी नहीं दे रहे हो।

सेठ ने उसे चिट्ठी पकड़ाते हुए कहा—देखो, इसमें क्या लिखा है? तुम्हारे सेठ ने लिखा है--केवल आटा दे देना—

कोरी चिट्ठी चूण की, क्यूं मांगे घी दाल ।

म्हांस्यूं लड़ियां के हुवे, लिखिया सांमो भाल ।।

हमारे भीतर बहुत आकांक्षाएं जगती हैं—यह हो जाए, वह हो जाए, यह करूं वह करूं किन्तु हम यह भी देखें - हमारी क्षमता कितनी है, हमारा पुरुषार्थ कितना है । यह देखना अपने भाग्य को बदलने की कला है, अपने विकास और सफलता की कला है । हम सम्मोहन के मायाजाल से हटकर देखना सीख जाएं तो सफलता निश्चित है ।

चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा (१)

शिष्य की जिज्ञासा

शिष्य के मन में एक जिज्ञासा उभरी । वह समाधान पाने के लिए गुरु की सन्निधि में उपस्थित हुआ । गुरु को नमस्कार कर निवेदन किया—गुरुदेव। मन में एक जिज्ञासा है -

कुतश्चरित्रमायाति, विचारादथवा मतेः ।

चरित्रस्रोतसो ज्ञानं, कर्तुमिच्छामि संप्रति ।।

चरित्र कहां से आता है ? वह विचार से पैदा होता है या बुद्धि से? चरित्र का स्रोत क्या है ?

गुरु ने पूछा – वत्स ! तुम्हारे मन में यह प्रश्न क्यों आया ? क्या कोई उलझन है ?

शिष्य ने कहा -- गुरुदेव ! एक समस्या ने मेरे मन में यह प्रश्न पैदा किया। मैंने एक व्यक्ति से कहा – तुम शराब पीना छोड़ दो । शराब पीना स्वास्थ्य के लिए अच्छा नहीं है । मन एवं भावों की स्वस्थता के लिए भी अच्छा नहीं है और जीवन के लिए भी अच्छा नहीं है।

विचार के स्तर पर वह व्यक्ति मेरी बात से सहमत हो गया। उसने कहा—महाराज! आप ठीक कहते हैं । शराब से लीवर खराब होता है, फेफड़े खराब होते हैं। उसका हार्ट पर भी बुरा असर पड़ता है।

मैंने दूसरे दिन उससे पूछा - कल शराब का सेवन किया ?

उसने कहा - हां! थोड़ी-सी शराब पीनी पड़ी ।

मैंने पूछा – क्यों ? कल तो मैंने तुम्हें शराब न पीने के लिए समझाया था और तुमने इस बात को स्वीकार किया था ।

व्यक्ति ने कहा – महाराज ! मैं यह मानता हूं, शराब पीना ठीक नहीं है, मुझे शराब नहीं पीनी चाहिए। लेकिन मैं जब बाजार जाता हूं, उस वातावरण को देखता हूं तो मेरे भीतर एक मांग उठती है । उस समय न पीने का विचार कहीं रह जाता है और मैं शराब पीने बैठ जाता हूं ।

चरित्र का स्रोत क्या है ?

शिष्य ने कहा – गुरुदेव ! आज तक मैं यह मानता था, आदमी के चरित्र का संबंध विचार से है। विचार अच्छा है तो चरित्र अच्छा होगा। विचार बुरा है तो चरित्र बुरा हो जाएगा। मेरे मन में यह संदेह पैदा हो गया है–व्यक्ति विचार के स्तर पर सब कुछ समझ लेता है, विचार अच्छा भी बन जाता है किन्तु जब भीतर से मांग उठती है, आंतरिक इच्छा प्रबल बनती है तब विचार का दरवाजा टूट जाता है। मैंने सोचा–चरित्र का स्रोत आखिर क्या है? इसका संबंध हमारी बुद्धि से है अथवा विचार-धारा से है। मैं चरित्र के मूलस्रोत को जानना चाहता हूं ?

गुरु ने कहा – तुम्हारा प्रश्न ठीक है । जब तक चरित्र के स्रोत को नहीं समझा जाएगा तब तक चरित्र का परिवर्तन संभव नहीं बन पाएगा। चरित्र का संबंध विचार से नहीं है और विचार से है तो इतना नाजुक है कि उसे एक क्षण में तोड़ा जा सकता है । विचार काँच का महल है। काँच के मकान में बैठकर पत्थर फेकेंगे तो क्या होगा? थोड़ा सा झटका लगेगा और काँच टूट जाएगा। विचार की भी यही स्थिति है। चरित्र का स्रोत है आंतरिक वृत्तियां। चरित्र का स्रोत है कर्मशरीर। सारा सच्चरित्र या दुश्चरित्र कर्मशरीर से आ रहा है ।

नो मतिर्नो विचारश्च, चरित्रस्रोत इष्यते ।

विशुद्धा चेतनान्तःस्था, चरित्रं जनयत्यसौ ।।

चरित्र का संबंध है ग्रंथितंत्र से

बहुत गहरा है चरित्र का स्रोत । भीतर से फूटने वाला यह स्रोत विचार को सीधा नहीं पकड़ता । शरीरविज्ञान के क्षेत्र में यह माना जाता था - मस्तिष्क ही सब कुछ है । हमारी सारी प्रवृत्तियां मस्तिष्क से होती हैं किन्तु आज यह बात साफ हो गई है—चरित्र का संबंध मस्तिष्क से नहीं, ग्रंथितंत्र से है । विचार मस्तिष्क में होता है पर मस्तिष्क उससे प्रभावित नहीं होता । क्रोध और क्षमा, अहंकार और विनम्रता, कपट और ऋजुता, लोभ और संतोष—इन सबका संबंध मस्तिष्क से नहीं है। चारित्रिक क्षुद्रता और चारित्रिक उदात्तता—दोनों का संबंध ग्रंथितंत्र के साथ है, मस्तिष्क के साथ नहीं है । एक व्यक्ति का मस्तिष्क बहुत जागृत है, वह समझदार है, सब कुछ है पर चरित्रवान् नहीं है । इसका कारण है—चरित्र का मार्ग ही अलग है । वह ग्रंथितंत्र से जुड़ा हुआ है और उसका विचार से कोई संबंध नहीं है ।

दो महत्त्वपूर्ण तंत्र

हमारे सारे भाव चरित्र के साथ जुड़े हुए हैं । कर्म शरीर के स्पंदन तैजस शरीर में आते हैं । तैजस शरीर के स्पंदन स्थूल शरीर में आते हैं और वे ग्रंथितंत्र को प्रभावित करते हैं । नाड़ीतंत्र और ग्रंथितंत्र—ये शरीर के दो महत्त्वपूर्ण तंत्र हैं । नाड़ीतंत्र और ग्रंथितंत्र—दोनों जुड़े हुए हैं किन्तु भावों का जो संबंध है, वह ग्रंथितंत्र के साथ अधिक है। जिस व्यक्ति को चरित्र का विकास करना है, उसे ग्रंथितंत्र पर, चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान देना होगा ।

जैन श्रावक की पहचान

हम शराब का उदाहरण लें । आज शराब बहुत प्रिय होती जा रही है। जो जातियां शराब से मुक्त हुई हैं, उनमें जैन धर्म से जुड़ी जातियां मुख्य रही हैं। व्यसन-मुक्त जीवन जैन श्रावक की विशिष्ट पहचान रही है । क्षत्रिय आदि जातियों के लोग इसमें सम्मिलित हुए और उनके लिए यह पहचान बनाई गई—जो शराब और मांस का प्रयोग नहीं करेगा, वह जैन होगा । उसके साथ

ही सात व्यसन भी छुड़ाए जाते। इन्हें छोड़ने वाला व्यक्ति है जैन । यह जैन धर्म की एक पहचान बन गई । इसके कारण जैन लोगों ने बहुत विकास किया है । आज हिन्दुस्तान में संख्या की दृष्टि से बहुत कम होते हुए भी जैन समाज अग्रणी बना हुआ है । शिक्षा, संपन्नता और कार्य-कौशल—इन सब में अपनी एक विशिष्टता बनाए हुए है।

सचाई की स्वीकृति

आचार्य श्री के पास कुछ राजपूत लोग आए। उन्होंने कहा — महाराज! ओसवाल समाज बहुत आगे बढ़ गया । व्यापार-व्यवसाय में पुरुषार्थ नियोजित कर उसने बहुत कुछ प्राप्त किया है । हम शराब और मांस में रच-पच गए इसलिए हम आज भी वहीं हैं, जहां पहले थे। हमने शराब और मांस के व्यसन के कारण बहुत कुछ खोया भी है। इस कथन में एक सचाई की स्वीकृति है किन्तु आज इसका जैन धर्म में भी कहीं कहीं लोप हो रहा है । जब दिमाग शराब से बहुत आक्रांत हो जाता है तब व्यावसायिक मंदता भी आ जाती है, कुंठा और तनाव भी आ जाता है। जब जब विवाह-शादी का प्रसंग आता है तब तब शराब का रंग सा चढ़ जाता है। बड़े-बड़े प्रतिष्ठित परिवारों में खुलकर शराब की बोतलों का प्रयोग होता है । कोई संकोच नहीं, कोई शर्म और लाज नहीं । जब-जब ऐसी घटनाएं सुनते हैं तब-तब ऐसा लगता है—जैन धर्म अपनी पहचान खोता जा रहा है ।

बदल रहा है आंतरिक चरित्र

यह सारा क्यों होता है? जिस चीज से समाज बचा हुआ है, आज वह उसी ओर क्यों जा रहा है? हमें यह मान लेना चाहिए—आंतरिक चरित्र अब बदलने की तैयारी कर रहा है। मादकता की वृत्ति भीतर से उभरती है और वह बाहर आकर अपनी पूर्ति के स्थान ढूंढ लेती है। प्रत्येक वृत्ति के अपने अपने अड्डे बनाए हुए हैं। क्रोध का भी अपना अड्डा है। माया और लोभ के भी अपने अड्डे हैं । चैतन्य केन्द्र क्या है? ये सब अड्डे हैं । जैसे बसों के

ठहरने के अनेक अड्डे (स्टेशन) बने हुए हैं वैसे ही हमारे शरीर में वृत्तियों के ठहरने के बहुत स्टेशन बने हुए हैं । भीतर से वृत्तियों की ट्रेनें आती हैं, बाहर आकर स्थूल शरीर में ठहर जाती हैं और अपना काम कर लेती हैं।

शराब के प्रति घटता रुझान : कारण

रूस के वैज्ञानिक शराब छुड़वाने के अनेक प्रयोग कर रहे हैं । वहां शराब खुले आम चलती है किन्तु शराब के जो परिणाम सामने आ रहे हैं, उनसे लोग आतंकित बन गए हैं । अमेरिका, यूरोप, जापान आदि देशों के नागरिक भी शराब के प्रति सतर्क होते जा रहे हैं । शराब की जो बुराइयां प्रकाश में आई हैं, उससे शराब छोड़ने के प्रति लोगों का रुझान बढ़ता जा रहा है । वे इसलिए छोड़ते है कि उससे स्वास्थ्य को नुकसान पहुंचता है। शराब छोड़ने का कारण आध्यात्मिक दृष्टिकोण नहीं है। यह सुनकर आश्चर्य हो सकता है–जब इस बात की स्पष्ट घोषणा की गई–सिगरेट से स्वास्थ्य को बहुत नुकसान होता है, इससे कैंसर की बीमारी भी हो जाती है तब लोगों में हड़कंप सा मच गया। अकेले अमरीका में दो करोड़ लोगों ने सिगरेट पीना छोड़ दिया । स्वास्थ्य के प्रति कितने जागरूक हैं अमेरिकन लोग। हम लोग अध्यात्म की बात छोड़ दें, अपने जीवन और स्वास्थ्य के प्रति भी जागरूक नहीं हैं। सोवियत रूस जैसे देश में जहां धर्म की चर्चा नहीं है, धर्म की स्पष्ट अवधारणा नहीं है वहां सिगरेट और शराब को छोड़ने के उपाय ढूंढे जा रहे हैं। किसी भी व्यसन की आदत पड़ जाने के बाद उसे छोड़ना बहुत मुश्किल होता है। पहले तो व्यक्ति शौकिया तौर पर नशा करता है और फिर धीरे-धीरे वह एक आदत बन जाती है । एक शराब आती है तो सारे व्यसनों के लिए दरवाजे खुल जाते हैं, अन्यान्य बुराइयां भी बेरोकटोक प्रवेश कर सकती हैं ।

चैतन्य केन्द्र का प्रभाव

एक वैज्ञानिक ने प्रयोग किया -- नशे की आदत से ग्रस्त व्यक्तियों के कान पर विद्युत् सेंसेशन (प्रकंपन) दिए । सत्तर आदमियों को विद्युत् के झटके

लगाए । उनमें से पचास व्यक्तियों को शराब से नफरत हो गई, सिगरेट से भी नफरत हो गई। शेष बीस व्यक्तियों में शराब और सिगरेट पीने की मात्रा में बहुत कमी आ गई । यह चैतन्य केन्द्र का प्रभाव है । चैतन्य केन्द्र व्यक्ति के भावों को प्रभावित करता है । यदि चैतन्य केन्द्र का परिष्कार कर दिया जाए तो नशे की आदत बदल जाए। प्रेक्षाध्यान के शिविरों में भी ऐसे अनेक प्रयोग सफल रहे हैं।

यह है आंतरिक परिवर्तन

बीकानेर में एक शिविर चल रहा था । गंगाशहर के एक संभ्रांत युवक ने उस शिविर भाग लिया । वह दिन में पचास-साठ सिगरेट पीने वाला था। वह बीमार रहता था, खांसी आती रहती थी, उसके फेफड़े भी खराब हो गए। परिवारजनों ने काफी दबाव देकर उसे प्रेक्षाध्यान शिविर में प्रविष्ट करवा दिया। दस दिन ध्यान शिविर चला । उसने ध्यान के प्रयोग किए । दस दिन बाद उससे पूछा—तुम्हारी क्या स्थिति है? सिगरेट पीते हो?

हां, पीता हूं ।

कितनी पीते हो ?

एक या दो ।

इतनी फिर क्यों पीते हो?

महाराज ! मेरे मित्रों ने कहा था—तुम शिविर में बदल जाओगे। मैंने उनसे कहा—कुछ भी हो जाए, मैं सिगरेट नहीं छोडूंगा। उस आग्रह के कारण सिगरेट पीनी पड़ रही है ।

पहले तुम पचास-साठ पीते थे, अब एक दो पर कैसे आ गए ?

पता नहीं, क्या हो गया है? सिगरेट से अपने आप अरुचि हो गई है। एक दो सिगरेट तो मैं अपनी जिद के कारण पी रहा हूं । सच बात तो यह है—पहले पचास-साठ पीता था तो भी कुछ नहीं होता। अब एक दो सिगरेट

भी पीता हूं तो बदबू आती है, वमन होने लग जाती है । मुंह को साफ रखने के लिए इलायची भी खानी पड़ती है।

यह है रासायनिक परिवर्तन, आंतरिक परिवर्तन ।

बदलाव : भीतर भी बाहर भी

आदमी भीतर से बदलता है, इसका अर्थ है—वह बाहर भी बदल जाता है। हम इस सचाई को जानें, आदमी विचार के स्तर पर नहीं बदलता। यदि वह विचार के स्तर पर बदलता तो एक बार प्रवचन सुनने वाला व्यक्ति बदल जाता । पर ऐसा होता नहीं है । प्रश्न है—परिवर्तन क्यों नहीं होता ? कारण यही है—हम विचार पर बहुत भरोसा कर बैठे हैं, भीतर पर भरोसा बहुत कम है और विचार का स्तर बहुत गहरा नहीं है । जब तक हम भीतर की चेतना तक नहीं जाएंगे तब तक बदलने की बात संभव नहीं बन पाएगी । चरित्र भीतर से आ रहा है, हिंसा, झूठ, कपट—सब भीतर से आ रहे हैं।

राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन के जीवन की घटना है। जब वे वकालात का कार्य कर रहे थे तब उनके सामने एक केस आया । मुवक्किल ने अपने केस के बारे में विस्तार से बताया । लिंकन ने केस का अध्ययन करने के बाद उसे लौटा दिया । मुवक्किल ने पूछा—क्यों लौटा रहे हैं आप ? मैं आपके पास बड़ी आशा से आया था । लिंकन बोले—कानूनी दृष्टि से मैं यह केस जीत सकता हूं परन्तु सचाई की दृष्टि से यह केस झूठा है। जब मैं न्यायालय में बोलूंगा तब मेरे भीतर से यह आवाज आएगी—लिंकन! तुम झूठ बोल रहे हो और कहीं ऐसा न हो—मैं न्यायालय में ही यह कह दूं कि मैं झूठ बोल रहा हूं ।

विचार का स्तर : अंतश्चेतना का स्तर

ये दो स्तर हमारे सामने हैं । बौद्धिकता का स्तर है—केस को जीता जा सकता है और आंतरिक चेतना का स्तर है—केस को लड़ा नहीं जा सकता । दो स्तर हैं—विचार का स्तर और अंतश्चेतना का स्तर। चरित्र का संबंध विचार

के साथ नहीं है । उसका संबंध है आंतरिक चेतना के साथ, वृत्तियों के साथ। जब तक उनका परिष्कार नहीं होता, चरित्र का परिष्कार नहीं हो सकता । इसका अर्थ है—जब तक चैतन्य के स्रोतों का परिष्कार नहीं होता तब तक समस्या का समाधान नहीं हो सकता।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । वह समाज में जीता है। उसमें प्रतिदिन कितने भावात्मक परिवर्तन होते रहते हैं। कभी हर्ष और कभी शोक, कभी घृणा और कभी भय, कभी प्यार और कभी क्रोध—ये सारे भाव प्रगट होते रहते हैं। इन पर नियंत्रण नहीं होगा तो चरित्र की बात कैसे आ पाएगी? नियंत्रण आता है भीतर से । उसका बाहरी स्टेशन है चैतन्य केन्द्र। प्रेक्षाध्यान की भाषा में उसे कहा जाता है—ज्योति केन्द्र और दर्शन केन्द्र। शरीरशास्त्र की भाषा है-पिनियल और पिच्यूटरी गलैण्ड। ये वे केन्द्र हैं, जिनका उपयोग चरित्र परिवर्तन के लिए हो सकता है। पिनियल ग्लेण्ड भावों और आवेगों पर नियंत्रण करता है। हम इस नियंत्रक केन्द्र का प्रयोग करें । इससे अंतश्चेतना के परिष्कार की बात भी समझ में आएगी और चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा की उपयोगिता भी स्पष्ट होगी।

चैतन्यकेन्द्र प्रेक्षा (२)

समस्या है दोनों ओर

आदमी सोचता है और सोचना समस्या है। सोच का जगत् समस्याओं का जगत् है। जहां चिन्तन है वहां समस्याओं का होना अनिवार्य है । शिष्य अपनी चिन्तन की समस्या को लेकर गुरु की सन्निधि में प्रस्तुत हुआ। उसने प्रणतिपूर्वक निवेदन किया—गुरुदेव ! मैंने मनोविज्ञान को पढ़ा । उसमें लिखा है—वृत्तियों का दमन नहीं करना चाहिए। दमन करने से वासनाएं अवचेतन मन में चली जाती हैं। ये दमित वासनाएं आदमी को बहुत सताती हैं। मैंने अध्यात्म शास्त्र को पढ़ा । उसमें लिखा है—भोग करने से शक्तियां क्षीण होती हैं, औजस क्षीण हो जाता है, दुर्बलता आती है इसलिए त्याग करना चाहिए, संयम करना चाहिए। दोनों ओर समस्या है । एक ओर समस्या है अध्यात्म की, दूसरी ओर समस्या है मनोविज्ञान की । इस स्थिति में क्या करना चाहिए?

तीसरा मार्ग

आचार्य ने कहा -- वत्स ! यह बात ठीक है कि दमन करने से वृत्तियां समाप्त नहीं होती । उनका उपशमन होता है । उपशमन कभी न कभी तीव्र उभार लाता है, यह बात सर्वथा गलत नहीं है । साधक उपशम के द्वारा ग्यारहवें गुणस्थान तक पहुंच जाता है किन्तु बाद में जब नीचे आता है तब पता नहीं, कहां तक चला जाता है। यह उपशमन का मार्ग अच्छा भी है और खतरनाक भी है। दूसरी बात है—असंयम करें और उपशमन न करें तो शक्तियां बहुत क्षीण होती हैं, शरीर और मन की शक्तियां चुक जाती हैं। ये दोनों समस्याएं हैं। मैं तुम्हें तीसरा मार्ग बताता हूं और वह है जिव्हा-संयम।

संयमो दमिता वृत्तिः, असंयमो बलक्षयः।

द्वयोरपि समाधानं, जिव्हासंयम इष्यते।।

जिव्हा-संयम और ब्रह्मचर्य

जीभ मारने वाली भी है और तारने वाली भी है। जीभ के कारण बड़े से बड़ा कल्याण और बड़े से बड़ा अनिष्ट होता है। जितनी साधना की पद्धतियां हैं, उनमें जीभ को चक्र शायद किसी ने भी नहीं माना है। हठ योग में छह या सात चक्र माने गए हैं पर जीभ को चक्र नहीं माना गया। प्रेक्षाध्यान की पद्धति में जीभ को महत्त्वपूर्ण चतैन्य केन्द्र माना गया है और उसका नाम रखा गया है—ब्रह्म केन्द्र ।

जीभ के साथ ब्रह्मचर्य और संयम का बहुत गहरा संबंध है। ब्रह्मचर्य का एक उपाय है वस्तिसंयम । यह शारीरिक रक्षा से जुड़ा हुआ है। जो शील की नव बाड़ है, वह ब्रह्मचर्य के बाधक निमित्तों से बचाव का पथ है। वस्ति संयम अच्छा है किन्तु जब तक मानसिक एवं भावात्मक संयम नहीं होता तब तक ब्रह्मचर्य का जो विकास होना चाहिए, वह नहीं हो पाता। उस विकास के लिए मन और भाव की पवित्रता बहुत आवश्यक है। व्यक्ति वस्ति-संयम करता है किन्तु उसका मन वासना की ओर दौड़ता है तो प्रतिभा का विकास नहीं हो सकता। प्रज्ञा जागरण की तो कल्पना ही नहीं की जा सकती । वही व्यक्ति सत्य की खोज कर सकता है, नियमों की खोज में आगे बढ़ सकता है, जिसका अपनी जीभ पर संयम हो गया है।

जिव्हा-संयमः अनेक अर्थ

शरीरशास्त्रीय दृष्टि से जीभ को ऋण विद्युत् (नेगेटिव) माना गया है और मस्तिष्क को धन (पोजिटिव) विद्युत् माना गया है । जीभ को थोड़ा ऊंचा करें तो मस्तिष्क की शक्ति का आकर्षण शुरू हो जाएगा। एक मुद्रा का विकास किया गया—खेचरी मुद्रा—जीभ को मोड़कर तालु पर ले जाना । अनुपम और आंतरिक ब्रह्मचर्य की साधना का सूत्र है खेचरी मुद्रा। मन कितना भी चंचल

क्यों न हो, खेचरी मुद्रा करते ही चंचलता कम हो जाएगी । यह अनुभव सिद्ध प्रयोग है । जीभ के ऐसे अनेक रहस्य हैं, जिन्हें हम जान ही नहीं पा रहे हैं। केवल खाने का संयम ही जीभ का संयम नहीं है । खाना और बोलना जीभ के साथ जुड़ा हुआ है, यह सब जानते हैं किन्तु उसके अन्य जो संदर्भ हैं, उन्हें हम नहीं जानते । जिव्हा-संयम का एक अर्थ है—खाद्य संयम । उसका दूसरा अर्थ है—वाक् संयम । तीसरा अर्थ है—चंचलता पर नियंत्रण और उसका चौथा अर्थ है—कामवासना पर नियंत्रण। हम इन सब अर्थों को जानें। अर्थ को जाने बिना कोरी क्रिया काम नहीं देती।

अर्थवान् हो क्रिया

पुराने जमाने की बात है। एक आदमी सब दिशाओं में प्रणाम कर रहा था। साधना की मुद्रा रही है प्रणामी मुद्रा । उसने छहों दिशाओं को प्रणाम किया। एक तत्त्वज्ञ साधक ने उससे पूछा—यह क्या कर रहे हो?

मैं सब दिशाओं को नमस्कार कर रहा हूं।

क्यों कर रहे हो ?

यह हमारे धर्म का विधान है ।

किसलिए करते हो ?

यह तो मुझे पता नहीं है ।

साधक ने बात को आगे बढ़ाया – तुम अपने नौकरों के साथ कैसा व्यवहार करते हो? कुछ लोग अपने नौकरों के साथ बहुत क्रूरतापूर्ण व्यवहार करते हैं। तुम उनके साथ क्रूर व्यवहार तो नहीं करते ?

कभी अच्छा व्यवहार करता हूं और कभी क्रूर व्यवहार भी कर लेता हूं।

अपने गुरुजनों का सम्मान करते हो ?

कभी करता हूं और कभी नहीं करता ।

मित्रों के साथ लड़ाई करते हो ?

कभी कभी लड़ाई भी कर लेता हूं ।

साधक ने कहा – कोरा दिशाओं को नमस्कार करने से क्या होगा? दिशाओं को नमस्कार करने का रहस्य क्या है? पहले इसे जानो।

क्या आप उस रहस्य को जानते हैं?

हां।

क्या आप कृपाकर मुझे इसका रहस्य बताएंगे ?

साधक ने कहा – पूर्व दिशा को नमस्कार करने का अर्थ है—अपने पूर्वजों का सम्मान करना। पश्चिम दिशा को नमस्कार करने का अर्थ है—अपने अनुगामियों का सम्मान करना । दक्षिण दिशा को नमस्कार करने का अर्थ है—अपने गुरु के आदेशों का पालन करना । गुरु को दक्षिण बनाना, अपने अनुकूल बनाना। उत्तर दिशा को नमस्कार करने का अर्थ है—अपने मित्रों के साथ सद्व्यवहार करना । ऊंची दिशा को नमस्कार करने का अर्थ है—अपने धर्म गुरुओं, आचार्यों का सम्मान करना । नीची दिशा को नमस्कार करने का अर्थ है—नौकर-चाकरों का सम्मान करना ।

साधक से समाधान पा व्यक्ति कृतज्ञता से भर गया ।

जिव्हा से जुड़े प्रयोग

यदि यह बात समझ में आ जाए तो जीवन की सारी कला समझ में आ जाए। हम नियम या विधान को जानते हैं पर उसके पीछे जो भावना है, उसे नहीं जानते। जीभ के नियम हमें ज्ञात हैं पर उनके पीछे भावना क्या है, यह जानना भी अपेक्षित है । प्रेक्षा ध्यान शिविर में एक प्रयोग कराया जाता है जीभ को स्थिर रखने का। निर्देश दिया जाता है—जीभ को अधर में रखें, दाएं बाएं कहीं स्पर्श न हो । जीभ अधर और स्थिर रहे । जीभ के अग्रभाग पर ध्यान केन्द्रित करें। मन की एकाग्रता के लिए यह बहुत अच्छा प्रयोग है।

एक प्रयोग है—जीभ को दांतों की जड़ में दबाएं । जीभ जितनी स्थिर होगी मन उतना ही एकाग्र बनेगा। जीभ जितनी चंचल होगी आदमी उतना ही चंचल होगा, वृत्तियां उतनी ही चंचल होंगी । जीभ को तालु के लगा लें, मन शान्त और एकाग्र बन जाएगा ।

अमृत स्राव : महत्त्वपूर्ण प्रयोग

हठयोग का एक महत्त्वपूर्ण शब्द है-अमृत-स्राव । अमृत का स्राव हो तो मन बिलकुल शान्त बन जाएगा। उसका एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है—जिव्हासंयम। इस स्थिति का अभ्यास न हो तो दमन करने की बात आएगी, असंयम की बात आएगी । इन दोनों स्थितियों से बचने का मार्ग है जीभ का संयम । नियंत्रण से उत्पन्न संयम नहीं, सहज उत्पन्न संयम।

मस्तिष्क की अपनी एक लयबद्ध क्रिया चलती है । जब जब काम, क्रोध, लोभ के आवेश जागते हैं, उसमें एक विघ्न पैदा करते हैं। विकार पैदा होता है और लय टूट जाती है । वह आदमी अपने जीवन में ज्यादा सफल होता है, जो इन विघ्नों को पैदा नहीं होने देता । यह स्थिति तब संभव है जब वृत्ति का उदात्तीकरण हो जाए। क्या आईंस्टीन को इतना बड़ा बनने का अवसर वासना ने दिया? यदि आईंस्टीन इस चक्र में फंस जाते तो कभी इतने बड़े न बन पाते । एक प्रयोग और खोज में लगने के बाद उनका ध्यान किसी दूसरी दिशा में नहीं जाता। जिस खोज में लग जाते, उसमें पूरी तन्मयता से लगे रहते। इतनी तन्मयता होती है तभी कोई बड़ा काम संभव बन पाता है।

निदर्शन वाचस्पति मिश्र का

न्यायशास्त्र का एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है—भामती । ग्रंथ के रचयिता हैं वाचस्पति मिश्र । उन्होंने शादी कर ली किन्तु उनकी सारी शक्ति ग्रंथ के निर्माण में लगी हुई थी । अनेक वर्ष बीत गए । उन्हें यह पता ही नहीं था कि मैंने शादी की है । पत्नी का नाम था भामती । वह निरंतर सेवा में रत रहती । दोनों वक्त भोजन का थाल रख जाती । संध्या बीतते ही दीपक जला

जाती । यह क्रम वर्षों तक चलता रहा । ग्रन्थ पूरा हुआ । संध्या के समय भामती दीपक जलाने आई। मिश्र ने ऊपर की ओर देखा—सामने पत्नी खड़ी है। उन्हें भान हुआ—मैंने पत्नी के साथ न्याय नहीं किया । उसे यह पूछा तक नहीं—तुम कैसी हो? श्री मिश्र के मन में प्रश्न उभरा—इसका ऋण कैसे चुकाऊं? उन्होंने अपने ग्रंथ का नाम रख दिया—भामती ।

यह बात जचने वाली नहीं है किन्तु सच है । जिन व्यक्तियों ने बड़े काम किए हैं, उन्होंने अपनी वासनाओं पर नियंत्रण पाया है।

ब्रह्मकेन्द्र : वृषण ग्रंथि

ब्रह्म-केन्द्र का संयम और वृषण-ग्रंथि का संयम—दोनों जुड़े हुए हैं। कोई व्यक्ति यह कहे—मेरा वृषणग्रंथि पर संयम है किन्तु ब्रह्म-केन्द्र पर संयम नहीं है तो वह सच नहीं बोल रहा है । यदि व्यक्ति यह कहे—मेरा ब्रह्म केन्द्र पर संयम है पर वृषण ग्रंथि का संयम नहीं है तो भी वह सच नहीं बोल रहा है। संयम की साधना के लिए इन दोनों चैतन्य केन्द्रों के रहस्यों को जानना बहुत आवश्यक है । इनके नियमों को जाने बिना हम वृत्तियों का विकास एवं उदात्तीकरण नहीं कर पाएंगे। चेतना के विकास के लिए कुछ संयम करना ही होता है । असंयम का जीवन जीएं और कोई बड़ा काम भी करना चाहें—ये दोनों बातें नहीं हो सकतीं। जिन लोगों ने अपने मस्तिष्क से बड़ा काम लेने का संकल्प किया है, उन्हें नीचे के भाग पर संयम करना होगा।

लोक : शरीर

जैसे लोक तीन भागों में बंटा हुआ है वैसे ही हमारा शरीर भी तीन भागों में बंटा हुआ है । प्राचीन साहित्य में लोक शब्द शरीर के लिए भी प्रयुक्त हुआ है । आयुर्वेद में भी लोक शब्द शरीर के अर्थ में है । धर्मशास्त्रों में भी लोक शब्द का एक अर्थ मिलता है शरीर। शरीर का लोक भी तीन भागों में बंटा हुआ है । नाभि से ऊपर का भाग है ऊंचा लोक । नाभि का भाग है तिरछा लोक और नाभि से नीचे का भाग है अधोलोक । जो व्यक्ति

अपना विकास करना चाहता है, उसे ऊर्ध्वलोक में ज्यादा रहना होता है । जो व्यक्ति ऊंचे लोक में नहीं रहता, वह ऊंचा काम नहीं कर सकता । ज्यादा स्वार्थी वृत्ति—अपना स्वार्थ साधना, धोखाधड़ी करना, दूसरों के साथ वंचना करना—ये सब वृत्तियां नीचे लोक की चेतना से पनपती हैं । चेतना बार बार नीचे की ओर जाती है तो व्यक्ति में स्वार्थ, घृणा आदि वृत्तियां विस्तार पाती हैं। ऐसा व्यक्ति कभी कृतज्ञ नहीं हो सकता, उपकार को याद नहीं रख सकता। जब चेतना ऊपर के केन्द्रों में रहती है, ऊंचे लोक में रहती है तब उदात्त और परिष्कृत वृत्तियां विकसित होती हैं।

महानता का मूल आधार

ऊंचे लोक में अवस्थित एक केन्द्र है—ब्रह्मकेन्द्र । मस्तिष्क के विकास का एक शीर्ष मोड़ है—ब्रह्मकेन्द्र । जिस व्यक्ति को मस्तिष्क से काम लेना है, अच्छा विचार, अच्छा चिन्तन, सृजनात्मक शक्ति, ऊंची कल्पना और योजना को कार्यरूप देना है, उसे जीभ का संयम करना होगा, खाने का संयम भी करना होगा। दिमाग की पूजा करो या पेट की पूजा करो—दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं । दो देवों की पूजा, आराधना एक साथ नहीं की जा सकती। किसी भी क्षेत्र में बड़ा काम करने के लिए अपनी चेतना को ऊर्ध्वमुखी रखना होगा। यह ऊर्ध्वमुखता ही हमारी महानता का मूल आधार है ।

जैन साहित्य में अतीन्द्रिय चेतना के स्रोत

महत्त्वपूर्ण प्रश्न

गोरक्ष पद्धति में ध्यान के नौ स्थान बतलाए गए हैं[1]—

१.	आधार-चक्र	६.	घण्टिकामूल
२.	स्वाधिष्ठान	७.	लम्बिका स्थान
३.	मणिपूर	८.	आज्ञाचक्र
४.	हृत्पद्म (अनाहत)	९.	शून्य स्थान
५.	विशुद्धि		

प्रश्न होता है कि तंत्रशास्त्र और हठयोग में चक्रों का निरूपण है किन्तु जैन साहित्य में उनका कोई निरूपण नहीं है । जैन परम्परा में ध्यान की पद्धति का विलोप हो जाने के कारण इस प्रश्न का उत्तर खोजा भी नहीं गया। हरिभद्र सूरि, शुभचन्द्र, हेमचन्द्र आदि आचार्यों ने अपने योग-ग्रंथों में हठयोग का समावेश किया, किन्तु जैन साहित्य में उपलब्ध चक्रों की ओर ध्यान नहीं दिया। अतीन्द्रिय ज्ञान की खोज और उसकी उपलब्धि में जैन साधक आगे नहीं बढ़ सके । वास्तविकता है कि शरीर के बारे में सही जानकारी नहीं रही और उसका सही मूल्यांकन नहीं किया गया। हम केवल आत्मा शब्द पर अटक गए।

---

१. गोरक्ष पद्धति २/७५-७६:

गुदं मेढ्रं च नाभिश्च, हृत्पद्मं च तदूर्ध्वतः।

घण्टिका लम्बिकास्थानं, भ्रूमध्ये च नभोविलम्।

कथितानि नवैतानि, ध्यान-स्थानानि योगिभिः।

उपाधितत्वमुक्तानि, कुर्वन्त्यष्टगुणोदयम्।।

ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया जाए तो आध्यात्मिकता या आत्म-तत्त्व की अतिवादी धारणा ने शरीर का सही मूल्यांकन नहीं होने दिया। भेद-विज्ञान के दृष्टिकोण ने आत्मा और शरीर के भेद को जानने की साधना दी, किन्तु उन दोनों के योग से होने वाले लाभांशों की उपेक्षा की गई । शरीरधारी मनुष्य का ज्ञान केवल आत्मा से संबद्ध नहीं होता। वह आत्मा और शरीर—दोनों से सम्बन्ध रखता है। आचार्य मलयगिरी ने इस सत्य को बहुत अच्छी तरह अभिव्यक्ति दी है। उन्होंने लिखा— केवलज्ञानी आत्मा और शरीर के सभी प्रदेशों से जानता-देखता है और छद्मस्थ मनुष्य अंगोपांग नामकर्म द्वारा संस्कृत-इन्द्रिय-द्वारों से जानता-देखता है।

करण : चैतन्य केन्द्र

प्राणी के पास चार करण होते हैं[२]-मन करण, वचन करण, काय करण और कर्म करण। अशुभ करण से असुख का और शुभ करण से सुख का संवेदन होता है।[३]

श्वेताम्बर साहित्य में करण के विषय में अर्थ की परम्परा विस्मृत हो गई । दिगंबर साहित्य में उसकी अर्थ-परम्परा आज भी उपलब्ध है। उससे चक्र या चैतन्य केन्द्र के बारे में बहुत महत्त्वपूर्ण जानकारी मिलती है।

करण का-एक अर्थ है—निर्मल चित्तधारा। उसका दूसरा अर्थ है--चित्त की निर्मलता से होने वाली शरीर, मन आदि की निर्मलता। शरीर के जिस देश में निर्मलता हो जाती है अर्थात् शरीर का जो भाग करण रूप में परिणत हो जाता है, उस भाग से अतीन्द्रिय ज्ञान होने लग जाता है।[४] इस दृष्टि से हमारे

---

२. भगवती ६/५ ।

३. भगवती ६/१४ ।

४. षड्खंडागम, पुस्तक १३, पृ० २९६ धवला:
ओहिणाणमणेयक्खेत्तं चेव, सव्वजीवपदेसेसु अक्कमेण खओवसमं गदेसु सरीरेगदेसेणेव बज्झट्ठावगमाणुववत्तीदो? ण, अण्णत्थ करणाभावेण करणसरूवेण परिणदसरीरेगदेसेण तदवगमस्स विरोहाभावादो।

शरीर में अवधिज्ञान के अनेक क्षेत्र हैं, अनेक संस्थान हैं।[५] ये संस्थान ही चक्र या चैतन्य-केन्द्र हैं ।

चक्र सिद्धान्त का मौलिक आधार

श्वेताम्बर साहित्य में चक्र सिद्धांत का मौलिक आधार है देशावधिज्ञान।

प्रज्ञापना में अवधिज्ञान के दो प्रकार उपलब्ध हैं—देशावधि और सर्वावधि[६]। नंदी में देशावधि, सर्वावधि का उल्लेख नहीं है, केवल परमावधि का उल्लेख मिलता है[७]। गोमटसार में अवधिज्ञान के तीन प्रकार मिलते हैं—देशावधि, परमावधि और सर्वावधि[८]।

नंदी में अवधिज्ञान के छह प्रकार किये गए हैं,[९] उनमें पहला प्रकार आनुगामिक है । उसके दो प्रकार हैं—अन्तगत और मध्यगत।[१०] यह विषय अन्य किसी भी उपलब्ध आगम में नहीं है। प्रतीत होता है कि देवर्द्धिगणी ने यह पूरा प्रकरण ज्ञानप्रवाद पूर्व से लिया था। इस दृष्टि से नन्दी सूत्र का मुख्य आधार ज्ञानप्रवाद पूर्व हो सकता है। स्थानांग, समवायांग, भगवती आदि इसके आधार नहीं हो सकते । ज्ञानप्रवाद चौदह पूर्वों में पांचवां पूर्व है। उसकी विशाल ग्रन्थ राशि में केवल ज्ञान का ही निरूपण है।[११]

---

५. षड्खंडागम, पुस्तक ६३, पृ० २९६ धवला:

खेत्तदो ताव अणेयसंठाणसंठिदा ।।५७।। जहा कायाणमिंदियाणं च पडिणियदं संठाणं तहा ओहिणाणस्स ण होदि, किंतु ओहिणाणावरणीय-खओवसमगदजीवपदेसाणं करणी-भूदसरीरपदेसा अणेगसंठाणसंठिदा होंति।

६. प्रज्ञापना ३३।३३ ।

७. नन्दी सूत्र, १८, गा० २ ।

८. गोमटसार जीवकाण्ड, गा० ३७३ :

भवपच्चइगो ओही, देसोही होदि परमसव्वोही।

गुणपच्चइगो णियमा, देसोही वि य गुणे होदि।।

९. नन्दी सूत्र ९ ।

१०. नन्दी सूत्र १० ।

११. नन्दी, चूर्णि पृ० ७५: पंचमं णाणप्पवादं ति, तम्मि मतिणाणाइपंचकस्स सप्पभेदं परूवणा जम्हा कता तम्हा णाणप्पवादं। तम्मि पदपरिमाणं एका पदकोडी एगपदूणा।

नंदी के इस प्रकरण से एक चिर जिज्ञासित प्रश्न का समाधान होता है। कहा जाता है कि तंत्रशास्त्र और हठयोग में चक्रों का निरूपण है किन्तु जैन साहित्य में उनका कोई निरूपण नहीं है। वास्तव में यह सही नहीं है।

अंतगत अवधिज्ञान

नन्दी सूत्र में देशावधि और सर्वावधि का उल्लेख नहीं है किन्तु उनकी व्याख्या बहुत विस्तार से मिलती है। अन्तगत देशावधि का सूचक है और मध्यगत सर्वावधि का सूचक है। अन्तगत अवधिज्ञान के तीन प्रकार हैं—

१. पुरतः अन्तगत।

२. पृष्ठतः अन्तगत।

३. पार्श्वतः अन्तगत।

अंतगत : अर्थ मीमांसा

चूर्णिकार और हरिभद्रसूरि ने अन्तगत शब्द के अनेक अर्थ किए हैं—

१. यह औदारिक शरीर के पर्यन्त भाग में स्थित होता है, इसलिए अंतगत है।

२. यह स्पर्धक[१२] अवधि होने के कारण आत्म प्रदेशों के अंतभाग में रहता है इसलिए अन्तगत है।

३. यह औदारिक शरीर के किसी देश (भाग) से साक्षात् जानता है, इसलिए अन्तगत है।[१३]

---

१२. आत्म-गुण का आच्छादन करने वाली कर्म की शक्ति का नाम स्पर्धक है। वह दो प्रकार का होता है-देशघाति और सर्वघाति। आत्मा के किसी एक देश का आच्छादन करने वाली कर्मशक्ति को देशघाति स्पर्धक और सर्व-देश का आच्छादन करने वाली कर्म-शक्ति को सर्वधाति कहा जाता है।

१३. नन्दी चूर्णि, पृ० १६: (क)एवं ओरालियसरीरंते ठितं गतंति एगट्ठं, तं च आत-प्पदेसफड्डगावहि, एगदिसोवलंभाओ य अंतगत मोधिण्णाणं भण्णति। अहवा सव्वात-प्पदेसविसुद्धेसु वि ओरालियसरीरेगंतेण एगदिसिपासणगतं ति अंतगतं भण्णति। अहवा फुडतरमत्थो भण्णति—एगदिसावधि- उवलद्धखेत्तातो सो अवधिपुरिसो अंतगतो ति जम्हा तम्हा अंतगतं भण्णति। (ख) नंदी सूत्र, हरिभद्रवृति पृ० २३

मध्यगत अवधिज्ञान

औदारिक शरीर के मध्यवर्ती स्पर्धकों की विशुद्धि, सब आत्म-प्रदेशों की विशुद्धि अथवा सब दिशाओं का ज्ञान होने के कारण यह अवधिज्ञान मध्यगत कहलाता है।[१४]

अन्तगत : मध्यगत

जब आगे के चक्र या चैतन्य-केन्द्र जागृत होते हैं तब पुरतः अन्तगत अवधिज्ञान होता है। उससे अग्रवर्ती ज्ञेय जाना जाता है।

जब पीछे के चैतन्य-केन्द्र जागृत होते हैं तब पृष्ठतः अन्तगत अवधिज्ञान होता है, उससे पृष्ठवर्ती ज्ञेय जाना जाता है।

जब पार्श्व के चैतन्य-केन्द्र जागृत होते हैं, तब पार्श्वतः अन्तगत अवधिज्ञान उत्पन्न होता है, उससे पार्श्ववर्ती ज्ञेय जाना जाता है।

जब मध्यवर्ती चैतन्य-केन्द्र जागृत होते हैं तब मध्यगत अवधिज्ञान उत्पन्न होता है। उससे सर्वतः समन्तात् (चारों ओर से) ज्ञेय जाना जाता है।[१५]

निष्कर्ष की भाषा

इसका निष्कर्ष है कि हमारे समूचे शरीर में चैतन्य-केन्द्र अवस्थित हैं ।

---

१४. नन्दी चूर्णि, पृ० १६:

मज्झगतं पुण ओरालियसरीरमज्झे फड्डगविसुद्धितो वा सव्वातप्पदेसविसुद्धतो वा सव्वदिसोवलंभत्तणतो मज्झगतो ति भण्णति।

१५. नंदी, सूत्र १६: अंतगयस्स मज्झगयस्स य को पइविसेसो ?

पुरओ अंतगएणं ओहिणाणेणं पुरओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ।

मग्गओ अंतगएणं ओहिणाणेणं मग्गओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ।

पासओ अंतगएण ओहिणाणेणं पासओ चेव संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ।

मज्झगएणं ओहिणाणेणं सव्वओ समंता संखेज्जाणि वा असंखेज्जाणि वा जोयणाइं जाणइ पासइ।

साधना के तारतम्य के अनुसार जो चैतन्य-केन्द्र जागृत होता है उसी में से अतीन्द्रिय ज्ञान की रश्मियां बाहर निकलने लग जाती हैं। पूरे शरीर को जागृत कर लिया जाता है तो पूरे शरीर में से अतीन्द्रिय ज्ञान की रश्मियां फूट पड़ती हैं। किसी एक या अनेक चैतन्य-केन्द्रों की सक्रियता से होने वाले अवधिज्ञान का नाम देशावधि है। पूरे शरीर की सक्रियता से होने वाला अवधिज्ञान सर्वावधि है।

अवधिज्ञान के प्रकार

नन्दी सूत्र में अवधिज्ञान के छह प्रकार बतलाए गए हैं[१६]–

१. आनुगामिक
२. अनानुगामिक
३. वर्धमान
४. हीयमान
५. प्रतिपाति
६. अप्रतिपाति

षट्खंडागम में अवधिज्ञान के तेरह प्रकार बतलाए गए हैं-[१७]

१. देशावधि
२. परमावधि
३. सर्वावधि
४. हीयमान
५. वर्धमान
६. अवस्थित
७. अनवस्थित
८. अनुगामी
९. अननुगामी
१०. प्रतिपाती
११. अप्रतिपाती
१२. एक क्षेत्र
१३. अनेक क्षेत्र।

महत्त्वपूर्ण भेद

प्रस्तुत प्रसंग में एक क्षेत्र और अनेक क्षेत्र—ये दो भेद बहुत महत्त्वपूर्ण

---

१६. नन्दी, सूत्र ९।

१७. षट्खंडागम, पुस्तक, १३ पृ० २९२।

हैं। जिसमें जीव-शरीर का एक देश (चैतन्य-केन्द्र) करण बनता है, वह एक क्षेत्र अवधिज्ञान है।[१८] जो प्रतिनियत क्षेत्र के माध्यम से नहीं होता, किन्तु शरीर के सभी अवयवों के माध्यम से होता है—शरीर के सभी अवयव करण बन जाते हैं, वह अनेक क्षेत्र अवधिज्ञान है।[१९]

यद्यपि अवधिज्ञान की क्षमता सभी आत्म-प्रदेशों में प्रकट होती है, फिर भी शरीर का जो देश करण बनता है, उसी के माध्यम से अवधिज्ञान प्रकट होता है। शरीर का जो भाग करणस्वरूप में परिणत हो जाता है, वही अवधिज्ञान के प्रकट होने का माध्यम बन सकता है । नंदी सूत्र में भी सब अवयवों से जानने और किसी एक अवयव से जानने की चर्चा मिलती है।[२०]

एक क्षेत्र अवधिज्ञान में शरीर का एक चैतन्य-केन्द्र भी जागृत हो सकता है तथा दो, तीन, चार, पांच आदि चैतन्य-केन्द्र भी एक साथ जागृत हो सकते हैं।[२१]

चैतन्य केन्द्र : संस्थान

चैतन्य-केन्द्र अनेक संस्थान वाले होते हैं । जैसे इन्द्रियों का संस्थान प्रतिनियत होता है वैसे चैतन्य-केन्द्रों का संस्थान प्रतिनयित नहीं होता, किन्तु करण रूप में परिणत शरीर-प्रदेश अनेक संस्थान वाले होते हैं।[२२] कुछ संस्थानों

---

१८. षड्खंडागम, पुस्तक १३, पृ० २९५:
जस्स ओहिणाणस्स जीवसरीरस्स एगदेसो करणं होदि तमोहिणाणमेगक्खेत्तं णाम।

१९. षट्खंडागम, पुस्तक १३, पृ० २९५:
जमोहिणाणं पडिणियदखेत्तं वज्जिय सरीरसव्वावयवे वट्टदि तमणेयक्खेत्तं णाम।

२०. नन्दी सूत्र २२:
नेरइयदेवतित्थंकरा य, ओहिस्सऽबाहिरा हुंति।
पासंति सव्वओ खलु, सेसा देसेण पासंति।।

२१. षट्खंडागम, पुस्तक १३, पृ० २९७:
ण च एक्कस्स जीवस्स एक्कम्हि चेव पदेसे ओहिणाणकरणं होदित्ति णियमो अत्थि, एक-दो-तिण्णि-चत्तारि - पंच - छआदि खेत्ताणमेगजीवम्हि संखादिसुह-संठाणाणं कम्हि वि संभवादो ।

२२. वही, पृ० २९६ : खेत्तदो ताव अणेयसंठाणसंठिदा ।।५७।।

के नाम-निर्देश मिलते हैं।[२३] जैसे—श्रीवत्स, कलश, शंख, स्वस्तिक, नन्द्यावर्त आदि। धवलाकार ने आदि शब्द के द्वारा अन्य अनेक शुभ संस्थानों का निर्देश किया है।[२४] तंत्रशास्त्र और हठयोग में चक्रों के लिए कमल शब्द की प्रकल्पना मिलती है। यहां कमल शब्द का उल्लेख नहीं है किन्तु आदि शब्द के द्वारा उसका निर्देश स्वतः प्राप्त हो जाता है। आचार्य नेमिचन्द्र ने गुणप्रत्यय अवधिज्ञान को शंख आदि चिन्हों से उत्पन्न होने वाला बतलाया है।[२५] टीकाकार ने आदि शब्द की व्याख्या में पद्म, वज्र, स्वस्तिक, मत्स्य, कलश आदि शब्दों का निर्देश दिया है।[२६] जैन साहित्य में अष्ट मंगल की मान्यता है।[२७] अनुमान किया जा सकता है कि अवधिज्ञान के शरीरगत चिन्हों और अष्ट मंगलों में कोई सामंजस्य का सूत्र रहा हो।

शुभ संस्थान : अशुभ संस्थान

श्रीवत्स आदि शुभ संस्थान वाले चैतन्य-केन्द्र मनुष्य और पशु के नाभि के ऊपर के भाग में होते हैं। वीरसेन आचार्य का मत है कि शुभ संस्थान वाले चैतन्य-केन्द्र नीचे के भाग में नहीं होते।[२८] नाभि के नीचे होने वाले

---

२३. षड्खंडागम, पुस्तक १३, पृ० २९७ :
सिरिवच्छ - कलस - संख - सोत्थिय - णंदावत्तादीणि संठाणाणि णादव्वाणि भवंति।

२४. वही, पृ० २९७:
एत्थ आदिसदेण अण्णेसिं पि सुहसंठाणाणं गहणं कायव्वं।

२५. गोमटसार, जीवकाण्ड, गा० ३७१:
भवपच्चइगो सुरणिरयाणं, तित्थेवि सव्वअंगुत्थो।
गुणपच्चइगो णरतिरियाणं संखादिचिण्हभवो ॥

२६. वही, टीका : नाभेरुपरि शंङ्खपद्मवज्रस्वस्तिकझषकलशादि शुभचिन्हलक्षितप्रदे श-स्थावधिज्ञानावरणवीर्यान्तराय- कर्मद्वयक्षयोपशमोत्पन्नमित्यर्थः।

२७. ओवाइयं, सूत्र ६४:
इमे अट्ठट्ठ मंगलया पुरओ अहाणपुव्वीए संपट्ठिया, तं जहा-सोवत्थिय- सिरिवच्छ - णंदियावत्त - वद्धमाणग - भद्दासण - कलस - मच्छ - दप्पणया।

२८. षट्खंडागम, पुस्तक १३, पृ० २९७ :
एदाणि संठाणाणि तिरिक्ख-मणुस्साणं णाहीए उवरिमभागे होंति, णो हेट्ठा सुहसंठाणाणमधो-भागेण सह विरोहादो ।

चैतन्य-केन्द्रों के संस्थान अशुभ होते हैं, गिरगिट आदि अशुभ आकार वाले होते हैं। आचार्य वीरसेन के अनुसार इस विषय का षट्खंडागम में सूत्र नहीं है किन्तु यह विषय उन्हें गुरु-परम्परा से उपलब्ध है।[२६]

चैतन्य-केन्द्रों के संस्थानों में परिवर्तन भी हो सकता है। सम्यक्त्व उपलब्ध होने पर नाभि से नीचे के अशुभ संस्थान मिट जाते हैं, नाभि से ऊपर के शुभ संस्थान निर्मित हो जाते हैं। इसी प्रकार सम्यक्दृष्टि के मिथ्यात्व अवस्था में चले जाने पर नाभि से ऊपर के शुभ संस्थान मिट जाते हैं और नाभि के नीचे के अशुभ संस्थान निर्मित हो जाते हैं।[३०]

महत्त्वपूर्ण विषय

चैतन्य-केन्द्र का विषय साधना की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। जैनदर्शन के अनुसार आत्मा पूरे शरीर में व्याप्त होती है। किन्तु उनके प्रदेशों या चैतन्य की सघनता एक जैसी नहीं होती। शरीर के कुछ भागों में चैतन्य सघन होता है और कुछ भागों में विरल । अतीन्द्रियज्ञान, शक्ति-विकास और आनंद की अनुभूति के लिए उन सघन क्षेत्रों की सक्रियता हमारे लिए बहुत अर्थपूर्ण है। इस दृष्टि से यह विषय बहुत मननीय है।

---

२६. षड्खंडागम, पुस्तक १३, पृ० २९८ :
तिरिक्खमणुस्सविहंगणाणीणं णाहीए हेट्ठा सरडादि - असुहसंठाणाणिं होंति त्ति गुरुदेवसो, ण सुत्तमत्थि।

३०. वही, पुस्तक १३ पृ० २९८ :
विहंगणाणीणमोहिणाणे सम्मत्तादिफलेण समुप्पण्णे सरडादिअसुहसंठाणाणि फिट्टिदूण णाहीए उवरि संखादिसुहसंठाणाणि होंति त्ति घेतव्वं। एवमोहिणाणपच्छायदविहंगणाणीणं पि सुहसंठाणाणि फिट्टिदूणं असुहसंठाणाणि होंति त्ति घेत्तव्वं ।

शक्ति जागरण का प्रयोग

प्रत्येक व्यक्ति शक्ति की इकाई है, किन्तु समस्या है शक्ति की अभिव्यक्ति की। कुछ लोग अपनी शक्ति के विषय में अनजान रहते हैं। कुछ लोग उसके विषय में जानते हैं पर उसको जागृत करने के लिए अभ्यास नहीं करते। कुछ लोग जानते भी हैं, अभ्यास भी करते हैं, उनकी शक्ति प्रकट भी हो जाती है। अज्ञानी और प्रमत्त आदमी की शक्ति का स्रोत प्रस्फुटित नहीं होता। ज्ञानी और अप्रमत्त मनुष्य ही उसे प्रकट कर सकता है।

चैतन्य केन्द्र

हमारे शरीर में अनेक शक्तिकेन्द्र हैं तंत्रशास्त्र और हठयोग में वे चक्र कहलाते हैं। आयुर्वेद में उन्हें मर्मस्थान कहा जाता है। प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति में उनका नाम चैतन्य केन्द्र है। ये केन्द्र सुप्त अवस्था में रहते हैं इसलिए शक्ति होने पर भी उसका पता नहीं चलता। जागृत शक्ति ही मनुष्य के लिए उपयोगी बनती है। प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति में प्रधानतया तेरह चैतन्य केन्द्रों की साधना की जाती है। वे चैतन्य केन्द्र ये हैं—

(१) शक्ति केन्द्र
(२) स्वास्थ्य केन्द्र
(३) तैजस केन्द्र
(४) आनन्द केन्द्र
(५) विशुद्धि केन्द्र
(६) ब्रह्म केन्द्र
(७) प्राण केन्द
(८) अप्रमाद केन्द्र
(९) चाक्षुष केन्द्र
(१०) दर्शन केन्द्र
(११) ज्योति केन्द्र
(१२) शान्ति केन्द्र
(१३) ज्ञान केन्द्र ।

शक्ति केन्द्र

पृष्ठरज्जु के नीचे का स्थान शक्ति केन्द्र है। यह शारीरिक ऊर्जा—जैविक विद्युत् का भण्डार है । यहां से विद्युत् का प्रसारण होता है।

स्वास्थ्य केन्द्र

पेडू के नीचे जननेन्द्रिय का अधोवर्ती स्थान स्वास्थ्य केन्द्र है। ग्रंथितन्त्र की दृष्टि से यह कामग्रंथि (गोनाड्स) का प्रभाव क्षेत्र है । इसके द्वारा मनुष्य का अचेतन मन नियंत्रित होता है। योग विद्या के अनुसार इसे स्वाधिष्ठान चक्र कहा जाता है । इसके छः दल होते हैं। प्रत्येक दल एक-एक वृत्ति का क्षेत्र है। जैसे - अवज्ञा, मूर्च्छा, प्रश्रय (सम्मान), अविश्वास, सर्वनाश और क्रूरता।

तैजस केन्द्र

तैजस केन्द्र नाभि का स्थान है । इसका संबंध एड्रीनल (अधिवृक्क) ग्रंथि और वृक्क (गुर्दे) के साथ है । योगविद्या के अनुसार इसके दस दल होते हैं । उनमें से प्रत्येक दल में एक-एक वृत्ति विद्यमान है। जैसे—लज्जा, पिशुनता, ईर्ष्या, सुषुप्ति, विषाद, कषाय, तृष्णा, मोह, घृणा और भय ।

आनंद केन्द्र

आनंद केन्द्र फुफ्फुस के नीचे हृदय का पार्श्ववर्ती स्थान है। यह थाइमस ग्रंथि का प्रभाव क्षेत्र है। हठयोग में इसे अनाहत चक्र कहा जाता है। योग विद्या के अनुसार इसके बारह दल होते हैं। उनमें से प्रत्येक में एक-एक वृत्ति का वास माना गया है, जैसे—आशा, चिन्ता, चेष्टा, ममता, दंभ, चंचलता, विवेक, अहंकार, लोलुपता, कपट, वितर्क और अनुमान।

एक जैन ग्रंथ में हृदय कमल आठ पंखड़ियों वाला बतलाया गया है। प्रत्येक पंखुड़ी में एक-एक वृत्ति रहती है, जैसे – कुमति, जुगुप्सा, भक्षिणी, माया, शुभमति, साता, कामिनी, असाता । इन पंखुड़ियों पर मनुष्य के भावों का परिवर्तन होता रहता है। उसके आधार पर नाना प्रकार की वृत्तियां प्रकट होती रहती हैं।

विशुद्धि केन्द्र

विशुद्धि केन्द्र का स्थान कंठ देश है । यह थायराइड ग्रंथि का प्रभाव क्षेत्र है। मन का इस केन्द्र के साथ गहरा संबंध है। योगविद्या के अनुसार इसके सोलह दल माने गए हैं।

ब्रह्म केन्द्र

ब्रह्म केन्द्र का स्थान है-जीभ का अग्रभाग । उसकी स्थिरता जननेन्द्रिय के नियन्त्रण में सहायक बनती है।

कुछ केन्द्र अनुकंपी और परानुकंपी नाड़ी संस्थान के संगम पर बनते हैं, जैसे –तैजस केन्द्र, आनन्द केन्द्र और विशुद्धि केन्द्र । कुछ केन्द्र ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों से संबद्ध हैं।

जीभ एक ज्ञानेन्द्रिय है । उसका अग्रभाग चंचलता और स्थिरता–दोनों का संवाहक बनता है।

प्राण केन्द्र

प्राण केन्द्र का स्थान नासाग्र है । यह प्राणशक्ति का मुख्य स्थान है। निर्विकल्प ध्यान के लिए इसका प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण है।

अप्रमाद केन्द्र

अप्रमाद केन्द्र का स्थान कान है । इसका जागरूकता से बहुत सम्बन्ध है। आज के विज्ञान ने नाक और कान के विषय में काफी जानकारी विकसित की है । ये दोनों मनुष्य की बहुत सारी वृत्तियों का नियन्त्रण करने वाले हैं और मस्तिष्क के साथ जुड़े हुए हैं।

चाक्षुष केन्द्र

चाक्षुष केन्द्र का स्थान चक्षु है। इसका जीवनीशक्ति के साथ गहरा संबंध है।

दर्शन केन्द्र

दर्शन केन्द्र दोनों आंखों और दोनों भृकुटियों के बीच में अवस्थित है।

यह पिच्युटरी ग्लैण्ड का प्रभाव क्षेत्र है। हठयोग में इसे आज्ञाचक्र कहा जाता है। योगविद्या के अनुसार इसके दो दल होते हैं । यहां इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना—तीनों प्राण-प्रवाहों का संगम होता है।

ज्योति केन्द्र

ज्योति केन्द्र ललाट के मध्य भाग में स्थित है। यह पीनियल ग्लैण्ड का प्रभाव क्षेत्र है। हठयोग के कुछ आचार्य नौ चक्र मानते हैं। उनके अनुसार तालु के मूल में चौंसठ दलवाला ललना-चक्र विद्यमान है। इससे ज्योति केन्द्र की तुलना की जा सकती है।

शांति केन्द्र

शान्ति केन्द्र अग्रमस्तिष्क में स्थित है। इसका संबंध मनुष्य की भावधारा से है । यह अवचेतक मस्तिष्क (हाइपोथेलेमस) का प्रभाव क्षेत्र है।

ज्ञान केन्द्र

ज्ञान केन्द्र केन्द्रीय नाड़ी संस्थान का प्रमुख स्थान है। लघु मस्तिष्क, बृहन्-मस्तिष्क एवं पश्च-मस्तिष्क के विभिन्न भाग इससे सम्बद्ध हैं। यह अतीन्द्रिय चेतना का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत है । हठयोग के सहस्रार चक्र से इसकी तुलना की जा सकती है।

उपाय जागरण का

चैतन्य केन्द्रों की शक्ति को जागृत करने के अनेक उपाय हैं। उनमें आसन, प्राणायाम, जप आदि उल्लेखनीय हैं। इनसे भी अधिक शक्तिशाली उपाय है—प्रेक्षा । एकाग्रता के साथ जिस चैतन्य केन्द्र को देखा जाता है, उसमें प्रकंपन शुरू हो जाते हैं। वे प्रकम्पन सुप्त शक्ति को जगा देते हैं । प्रेक्षा की पद्धति यह है—पद्मासन, वज्रासन अथवा सुखासन में से किसी एक सुविधाजनक आसन का चुनाव करें, आसन में आसीन होकर कायोत्सर्ग (जागरूकतापूर्ण शिथिलीकरण) करें । फिर प्रेक्षा के लिए चैतन्य केन्द्र का चुनाव करें, धारणा

से अभ्यास शुरू करें, निरन्तर लक्षीकृत केन्द्र को देखते-देखते गहन एकाग्रता के बिन्दु पर पहुंच जाएं। ध्यान अथवा समाधि की स्थिति का अनुभव करें। इस पद्धति से प्रत्येक चैतन्य केन्द्र को निर्मल बनाएं । इनकी निर्मलता से विशिष्ट प्रकार की शक्तियां जागृत होती हैं।

निष्पत्ति जागरण की

शक्ति केन्द्र की निर्मलता से वाक्सिद्धि, कवित्व और आरोग्य का विकास होता है।

स्वास्थ्य केन्द्र की निर्मलता से अचेतन मन पर नियंत्रण करने की क्षमता पैदा होती है । आरोग्य और ऐश्वर्य का विकास होता है।

तैजस केन्द्र के निर्मल होने पर क्रोध आदि वृत्तियों के साक्षात्कार की क्षमता पैदा होती है । प्राणशक्ति की प्रबलता भी प्राप्त होती है।

आनन्द केन्द्र की निर्मलता द्वारा बुढ़ापे की व्यथा को कम किया जा सकता है, विचार का प्रवाह रुक जाता है, सहज आनन्द की अनुभूति होती है।

विशुद्धि केन्द्र की सक्रियता से वृत्तियों के परिष्कार की क्षमता पैदा होती है। बुढ़ापे को रोकने की क्षमता पैदा करना भी इसका एक महत्वपूर्ण कार्य है।

ब्रह्म केन्द्र की निर्मलता द्वारा कामवृत्ति के नियंत्रण की क्षमता प्राप्त होती है ।

प्राण केन्द्र की निर्मलता द्वारा निर्विचार अवस्था प्राप्त होती है।

अप्रमाद केन्द्र की साधना से नशे की आदत को बदला जा सकता है। शराब, तम्बाकू आदि मादक वस्तुओं के सेवन की आदत को बदलना एक जटिल समस्या है । अप्रमाद केन्द्र की प्रेक्षा करते-करते उस आदत में परिवर्तन शुरू होता है और कुछ दिनों के अभ्यास से परिवर्तन स्थिर हो जाता है।

चाक्षुष केन्द्र की साधना के द्वारा एकाग्रता को सघन बनाया जा सकता है।

दर्शन केन्द्र की प्रेक्षा के द्वारा अन्तर्दृष्टि का विकास होता है। यह हमारी अतीन्द्रिय क्षमता है। इसके द्वारा वस्तु-धर्म और घटना के साथ साक्षात् सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है।

ज्योति केन्द्र की साधना के द्वारा क्रोध को उपशांत किया जा सकता है।

शान्ति केन्द्र पर प्रेक्षा का प्रयोग कर हम भाव संस्थान को पवित्र बना सकते हैं । 'लिम्बिक सिस्टम' मस्तिष्क का एक महत्त्वपूर्ण भाग है, जहां भावनाएं पैदा होती हैं । शान्ति केन्द्र प्रेक्षा उसी स्थान को प्रभावित करने का प्रयोग है । प्राचीन भाषा में यह हृदय परिवर्तन का प्रयोग है।

ज्ञान केन्द्र की साधना के द्वारा अन्तर्ज्ञान को विकसित किया जा सकता है । यह अतीन्द्रिय चेतना का विकसित रूप है।

चैतन्य केन्द्र की साधना के साथ लघु मस्तिष्क की प्रेक्षा भी महत्त्वपूर्ण है। यह अतीन्द्रिय चेतना के विकास में बहुत सहयोगी बनता है।

समस्या का मूल : समाधान-सूत्र

आज की समस्या का मूल है--चित्त की दुर्बलता, मनोबल की कमी। जब मन की शक्ति कम होती है तब समस्याएं भयंकर बनती चली जाती हैं । जब मन की शक्ति दृढ़ होती है, तब भयंकर समस्या आने पर भी नहीं लगता कि यह कोई समस्या है। बहुत बड़ी समस्या भी छोटी हो जाती है। जब मन का बल टूट जाता है, तब राई भी पहाड़ बन जाती है। समस्या को बड़ा या छोटा नहीं कहा जा सकता । कोई भी समस्या स्वयं में बड़ी नहीं है और कोई भी समस्या स्वयं में छोटी नहीं है । मनोबल अटूट है तो प्रत्येक समस्या छोटी है। मनोबल टूटा हुआ है तो प्रत्येक समस्या बड़ी है । समस्या का छोटा होना या बड़ा होना, भयंकर होना या सरल होना इस बात पर निर्भर है कि मनोबल कम है या अधिक । आदमी समस्या पर ध्यान अधिक केन्द्रित करता है।

समस्या को सुलझाने का अधिक प्रयत्न करता है। जैसे-जैसे वह सुलझाने का प्रयत्न करता है, वैसे-वैसे समस्या उलझती जाती है और इसलिए उलझती जाती है कि मनोबल नहीं बढ़ता और मनोबल के अभाव में समस्या का समाधान हो सके, यह संभव नहीं हो सकता। समस्या के समाधान के लिए शक्ति का संचय जरूरी है । जितनी शक्ति है, उतनी यदि खर्च हो जाती है तो समस्या का समाधान नहीं हो सकता।

ध्यान के द्वारा मिलता है—मनोबल, चित्तशक्ति, शुद्ध चेतना का पराक्रम। ध्यान के द्वारा एक ऐसी शक्ति मिलती है, जो व्यक्ति को प्रत्येक समस्या को झेलने में सक्षम बनाती है। व्यक्ति में ऐसी शक्ति जगा देती है कि वह प्रत्येक परिस्थिति का हंसते-हंसते सामना कर सकता है, समस्या को सुलझा सकता है, अच्छी - बुरी घटना घटित होने पर भी सन्तुलन नहीं खोता ।

लेश्या : भावधारा

तुम्हारी इच्छा क्या है? तुम्हारी भावना क्या है? तुम क्या सोचते हो? ये तीन प्रयोग हमारी चेतना के तीन स्तरों को अभिव्यक्त करते हैं। हमारी चेतना के कई स्तर हैं । इन स्तरों के आधार पर भाषा के भी अलग-अलग प्रयोग विकसित हुए हैं । 'तुम्हारी इच्छा क्या है' इस वाक्य में कोई चिन्तन नहीं है, मन का भी सवाल नहीं है । यह मन से परे की बात है । इच्छा चेतना का बहुत गहरा स्तर है। मन बहुत ऊपर रह जाता है।

इच्छा का स्तर

एक व्यक्ति ने दर्जी को अपना कोट सिलाई के लिए दिया। कुछ दिन बीत गए । उस व्यक्ति ने दर्जी से कहा—मेरे कोट की सिलाई की या नहीं? मेरा कोट कब दोगे? दर्जी ने कहा – जब भगवान् की मर्जी होगी। व्यक्ति यह उत्तर सुनकर चला गया । चार पांच दिन बाद उसने फिर वही प्रश्न पूछा—मेरा कोट कब दोगे? दर्जी ने फिर वही उत्तर दोहरा दिया। तीसरी बार भी दर्जी ने वही उत्तर दिया। उस व्यक्ति ने कहा—भगवान् की मर्जी जाने दो, तुम्हारी मर्जी कब होगी, यह बताओ।

भावना का स्तर

आदमी इच्छा के आधार पर, इच्छा की चेतना के आधार पर काम करता है । यह इच्छा का स्तर गहराई में है । उससे आगे भावना का स्तर है। 'तुम्हारी भावना क्या है' यह भावना होने का स्तर है। इसके नीचे रहती है इच्छा । क्या होना है? जो घटित हो रहा है, अपने आप हो रहा है और

जिसे हम कर नहीं रहे है, वह भावना है। भीतर में कुछ ऐसा है कि सब कुछ अपने आप चल रहा है। हमारी कोई चेष्टा नहीं है, प्रयत्न नहीं है किन्तु ऐसी कोई आंतरिक शक्ति और प्रेरणा जागती है, जिससे अपने आप एक क्रम चल रहा है। यह है भावना का स्तर । बाहर से कुछ दिखाई नहीं दे रहा है और भीतर में सब कुछ घटित होता जा रहा है।

भीतर जल रही है आग

कबीर का प्रसिद्ध वाक्य है—

बाहिर से तो कछु य न दीखे भीतर जल रही जोत।

आग को राख से ढक दिया । बाहर से कुछ नहीं दिख रहा है पर भीतर एक ज्योति जल रही है । इसी प्रकार भाव हमारी चेतना का वह स्तर है, जो बाहर से कुछ नहीं दिखता पर भीतर ही भीतर अपना काम कर रहा है। भीतर में एक आग निरंतर जल रही है। अनेक बार हम कई लोगों से पूछते हैं—तुम यह सब कर रहे हो आखिर इसके पीछे तुम्हारी भावना क्या है? ऐसा प्रश्न अनेक बार पूछा जाता है—जो आचरण किया जा रहा है, उसके पीछे भावना क्या है? इसका अर्थ है—करने के नीचे है भावना का स्तर ।

बंदर का चातुर्य

एक मगरमच्छ ने बंदर से दोस्ती कर ली । आम का मौसम आया। नदी के किनारे आम का एक विशाल पेड़ था। बंदर ने आम तोड़ा और उसे मगरमच्छ के मुंह में डाल दिया । उसे भी आम बड़ा मीठा लगा। मगरमच्छ को आम खाने का चस्का लग गया। एक दिन मगरमच्छ की पत्नी ने पूछा—आजकल तुम देर से क्यों आते हो? क्या बात है? मगरमच्छ ने कहा—नदी के किनारे मेरा एक मित्र रहता है। वह मुझे रोज मीठे मीठे आम खिलाता है। आम इतने मीठे होते हैं कि मैं उन्हें छोड़ नहीं सकता इसीलिए रोज देरी हो जाती है। पत्नी ने कहा -- अकेले अकेले ही खा लेते हो, मुझे नहीं खिलाते। पत्नी के मन में दूसरा विकल्प उठा—जो बंदर रोज इतने आम खाता है, उसका

मांस कितना मधुर होगा? उसने पति से आग्रह किया--मुझे आम नहीं चाहिए। मुझे वह बंदर चाहिए, जो इतने मीठे मीठे आम खाता है। आप उस बंदर को लाएं, मैं उसे खाऊंगी। मुझे बंदर का कलेजा चाहिए । मगरमच्छ ने कहा— तुम कैसी बात करती हो? वह मेरा मित्र है, मैं उसे कैसे मारूं? मगरमच्छ की पत्नी अपने आग्रह पर अड़ी रही । मगरमच्छ कृतघ्न नहीं था किन्तु पत्नी के दुराग्रह के सामने उसे झुकना पड़ा। उसने सोचा--यदि इसकी भावना पूरी नहीं करूंगा तो घर में कलह होगा, अशांति हो जाएगी । वह दूसरे दिन बंदर से बोला—भैया ! मेरी पत्नी ने तुम्हें बुलाया है? क्या तुम उससे मिलना नहीं चाहोगे? बहुत आग्रह किया है उसने मिलने के लिए । बंदर बोला—मैं पानी में कैसे जा सकता हूं? मगरमच्छ ने उसकी समस्या को समाहित करते हुए कहा – तुम मेरी पीठ पर बैठ जाओ, मैं तुम्हें ले चलूंगा। मगरमच्छ की बात स्वीकार कर बंदर उसकी पीठ पर बैठ गया। मगरमच्छ बहुत भावुक था। उसने मार्ग में यह बात बता दी—तुम्हारी भाभी ने तुम्हारा कलेजा खाने के लिए तुम्हें बुलाया है। बंदर ने चतुराई से काम लिया। उसने कहा—तुम कैसे मूर्ख हो? हम तो पेड़ों पर इधर-उधर फांदते रहते हैं, कलेजा साथ में नहीं रखते। पहले बताते तो कलेजा साथ ले आता । चलो, वापस चलो, हम कलेजा ले आते हैं। मगरमच्छ वापस किनारे की तरफ चल पड़ा । जैसे ही तट आया, बंदर उछलकर पेड़ पर चढ़ गया ।

मगरमच्छ भावना के स्तर पर था, उसमें चिन्तन नहीं था। ज्योंहि बंदर पेड़ पर चढ़ा, मगरमच्छ उसे देखता रह गया । उसे बंदर का चातुर्य समझ में आ गया ।

चिन्तन और भावना

हर प्राणी भावना के स्तर पर काम करता है । गाय, भैंस, हाथी, घोड़ा--इनमें चिन्तन नहीं होता । इनके पास मन है, पर बहुत छोटा मन है। त्रैकालिकसंज्ञानं मनः— दीर्घकालिकी संज्ञा है मन—मन की यह परिभाषा शायद पशुओं में ज्यादा घटित नहीं होती। यह परिभाषा मनुष्यों के लिए घटित हो

सकती है पर सभी मनुष्यों के लिए भी नहीं। ऐसे भोले आदमी भी हैं, जो एक घंटा बाद की बात भी नहीं सोच सकते और एक घंटा पहले क्या किया, यह भी नहीं सोच सकते। न उन्हें कुछ याद रहता है, न कल्पना कर सकते हैं, न योजना बना सकते हैं और न चिन्तन कर सकते हैं । समनस्क होते हुए भी अनेक मनुष्य इस प्रकार के होते हैं। पशुओं की बात ही क्या है?

मनोविज्ञान की भाषा

मन का काम है- सोचना, चिन्तन करना । मन और भाव एक नहीं हैं। लेश्या मन नहीं है । भाव हमारी चेतना का गहरा स्तर है, जिसे मनोविज्ञान की भाषा में सबकोंशियस कहा जा सकता है। मनोविज्ञान में तीन शब्द हैं- कोंशियस, सब-कोंशियस और अन-कोंशियस। अन-कोंशियस—अचेतन मन हमारा अध्यवसाय हो सकता है। यहां अचेतन का अर्थ जड़ नहीं है। जहां चेतन मन काम नहीं करता वहां भीतरी चेतना काम करती है और उसी का नाम है अचेतन मन ।

जैन दर्शन की भाषा

जैन दर्शन की भाषा में कहा जा सकता है-अध्यवसाय हमारी सूक्ष्मतर चेतना है । भाव या लेश्या हमारी सूक्ष्म चेतना का स्तर है और चित्त हमारी स्थूल चेतना है। जो लेश्या का स्तर है, वह होने का, सूक्ष्म चेतना का स्तर है, जहां प्रतिक्षण घटित हो रहा है, भाव का चक्का निरंतर चल रहा है । जब हम नींद में सोते है तब हमारा चेतन-मन काम नहीं करता किन्तु भाव बराबर काम करता रहता है। नींद में भी भावनाएं चल रही हैं, लेश्याएं चल रही हैं। आदमी सोता है, लेश्याएं कभी नहीं सोती, भाव कभी नहीं सोते । भाव मन से काम लेता भी है और नहीं भी लेता । आदमी जागता है तो मन से काम लेता है और सोता है तो मन से काम नहीं लेता । चेतन मन काम करता है तभी हम मन से काम करते हैं । यह चेतना का स्थूल स्तर है।

लेश्या : शब्द मीमांसा

लेश्या हमारी चेतना की एक रश्मि है। शब्द भी बड़ा जटिल खोजा गया–लेश्या । इस शब्द पर भी बहुत उलझनें पैदा हुई हैं । लेश्या का अर्थ किया गया है–ज्योति–रश्मि । जैसे सूरज की रश्मियां होती हैं वैसे ही हमारी चेतना की रश्मियां होती हैं । चेतना हमारे भीतर है किन्तु उसकी किरणें बाहर तक फैल जाती हैं। नंदी की चूर्णि में इस शब्द पर बहुत ध्यान दिया गया है। यह शब्द है रस्सी । रस्सी से बना लस्सी और उससे बन गया – लेस्सा–लेश्या । एक समीकरण बन गया–रस्सी + लस्सी + लेस्सा = लेश्या । रस्सी रज्जु का भी नाम है।

भाव से है आचरण का संबंध

हमारा जो आचरण है, व्यवहार है, उसका संबंध मन से नहीं है, मन से परे की चेतना से है। एक आदमी बहुत समझदार और चिन्तनशील है किन्तु वह प्रकृति से कुटिल है । चिन्तन का संबंध मन से है पर कुटिलता का संबंध मन से नहीं है। व्यवहार में यह आरोपण भी कर दिया जाता है - अमुक व्यक्ति का मन बहुत कुटिल है। मन न सीधा होता है न टेढा । उसका काम ही दूसरा है । यह टेढापन, यह वक्रता कहां से आती है? यह वक्रता भाव से पैदा हाती है । एक आदमी क्रूर है, नृशंस है। प्रश्न होता है- यह नृशंसता और क्रूरता कहां से पैदा हुई? यह मन से नहीं, भाव से आती है।

कृष्ण लेश्या का एक परिणाम बतलाया गया है - नृशंसता। इसी प्रकार जो व्यक्ति पांच आश्रवों में प्रवृत्त है, तीव्र आरंभ में संलग्न है, षट्काय में अविरत है, क्षुद्र है, अजितेन्द्रिय है, बिना विचारे काम करने वाला है, वह कृष्ण लेश्या में परिणत होता है । प्रमत्तता, आसक्ति, रस-लोलुपता, मूर्च्छा आदि से युक्त जो प्रवृत्ति है, वह मन का काम नहीं है। वह भावना के स्तर पर घटित होने वाली क्रिया है।

पशु में भी है भावना का स्तर

यह भावना का स्तर प्रत्येक प्राणी में होता है । क्या एक कुत्ते में मन की शक्ति है? उसमें कल्पना और योजना बनाने की शक्ति है किन्तु वह भावना के स्तर पर होती है । जब बादल आते हैं तब टिट्टिभ (टिटोड़ी) बहुत तेज बोलती है। वह अंडा देती है, खुले में घोंसला नहीं बनाती । वह इतनी सुरक्षा करती है कि आदमी सोच ही नहीं सकता। वह सुरक्षा किस आधार पर करती है? यह सारा प्रयत्न भावना से प्रेरित होता है । भावना का स्तर पशु में भी बहुत प्रबल होता है।

शिकारी जंगल में शिकार की टोह में घूम रहा था। उसे एक हरिणी दिखाई दी । उसने हरिणी की ओर निशाना साधा। हरिणी ने भावुक स्वर में कहा -

आदाय मांसमखिलं स्तनवर्जितांगाद्,

मां मुञ्च वागुरिक! यामि कुरु प्रसादम् ।

अद्यापि शस्यकवलग्रहणादभिज्ञाः,

मन्मार्गवीक्षणपराः शिशवो मदीयाः ।।

ऐ शिकारी! तुम मेरा पूरा मांस ले लो, केवल दो स्तनों को छोड़ दो। मैं एक बार अपने बच्चों के पास जाना चाहती हूं क्योंकि मेरे बच्चे बहुत छोटे हैं । वे अभी तक घास चरना भी नहीं जानते हैं। वे मेरी बाट जो रहे हैं—कब मां आती है? कब स्तनपान कराती है? इसलिए हे शिकारी! तुम कृपा करो और कुछ देर के लिए मुझे छोड़ दो।

यह बात चिन्तन के स्तर पर नहीं, केवल भावना के स्तर पर ही पैदा हो सकती है।

विकास हो नई शाखा का

हम इस सचाई को समझें—हमारा आचरण और व्यवहार मन से जुड़ा हुआ नहीं है । बार बार यह कहा जाता है - मन ही ऐसा है? मन पकड़ में

ही नहीं आता । वह पकड़ में कैसे आएगा? जो काम मन का नहीं है, हम उसका आरोपण मन पर कर रहे हैं । हमें मन से आगे पहुंचना होगा, लेश्या के स्तर पर, भावना के स्तर पर पहुंचना होगा। उस स्तर को पकड़ कर ही हम समस्या का समाधान कर सकते हैं। पूरे आचार शास्त्र और व्यवहार शास्त्र की मीमांसा भावना के स्तर पर की जा सकती है । आज विज्ञान की एक पूर्ण शाखा बन गई—मनोविज्ञान (साइकोलॉजी)। यह बहुत भ्रामक शब्द बन गया है । हमारे आचरण और व्यवहार की व्याख्या मन के स्तर पर नहीं की जा सकती। यदि हम मन के स्तर पर उसकी व्याख्या करेंगे तो भ्रांति के चक्रव्यूह में फंस जाएंगे। जैसे मनोविज्ञान विज्ञान की एक शाखा है वैसे ही एक नई शाखा का विकास होना चाहिए ।

लेश्या है भाव विज्ञान

लेश्या का मतलब है भावविज्ञान । पहला नंबर होना चाहिए भाव विज्ञान का और दूसरे नंबर पर रहना चाहिए मनोविज्ञान। हम भाव विज्ञान को छोड़कर मनोविज्ञान के आधार पर अपने व्यक्तित्व का अंकन करना चाहेंगे तो भ्रांतियां बढती चली जाएंगी । आज मनोविज्ञान के संदर्भ में जो चल रहा है, क्या हम उसे आंख मूंद कर मान लें? स्वीकार कर लें? ऐसा करना ठीक नहीं होगा। हमारे पास ज्ञान और चिन्तन की बहुत बड़ी राशि है और वह हमें विरासत में मिली है। हम इसका उपयोग करें और मनोविज्ञान के सामने इस बात को प्रस्तुत करें - मनोविज्ञान के आधार पर व्यक्तित्व का जो अंकन किया जाता है, उसकी जो चिकित्सा की जाती है, वह तब तक सफल नहीं होगी जब तक भावना का बल उसके साथ नहीं जुड़ेगा । मनोविज्ञान की सफलता के लिए भावविज्ञान का मूल्यांकन और उपयोग अनिवार्य है।

भावना का चमत्कार

राजलदेसर के एक भाई ने कहा—महाराज ! मेरा बारह साल का एक लड़का छह माह से बहुत बीमार था। मैं छह माह से इसका इलाज करा रहा हूं पर कुछ भी लाभ नहीं हुआ । चलना तो दूर की बात है, वह उठ भी नहीं

सकता था। प्रेक्षाध्यान के प्रशिक्षक ने उसे भावना का प्रयोग कराया, संकल्प शक्ति का प्रयोग कराया । पांच-छह दिन के प्रयोग से ही लड़के के स्वास्थ्य में आश्चर्यजनक सुधार आ गया । जो लड़का उठ भी नहीं सकता था, वह आज राजलदेसर से चलकर आपके दर्शनार्थ लाडनूं पहुंच गया है।

यह है भावना का चमत्कार । बहुत गहरा है भावना का प्रयोग। हम जो सजेशन देते हैं, वे मन को नहीं, भाव को छूते हैं। जो मन के स्तर पर रहता है, वह कभी सफल नहीं हो सकता । हम मन के उस पार भावना के स्तर पर चले जाएं, भावना के स्तर पर अपनी बात पहुंचा दें, एक दिन में परिवर्तन घटित हो जाएगा। इसके लिए अपेक्षित है मनोविज्ञान के साथ साथ भावविज्ञान का गहरा अध्ययन। उत्तराध्ययन का तेतीसवां लेश्या अध्ययन भावविज्ञान का अध्ययन है। यदि हम इसका गहराई से विश्लेषण करें तो शायद एक भ्रांति चक्र को तोड़कर गहरी सचाई तक पहुंच पाएंगे ।

लेश्या सिद्धान्त : ऐतिहासिक अवलोकन

भामण्डल : आभामण्डल

लेश्या का सिद्धान्त पहले दार्शनिक जगत में चर्चित था और आज वह वैज्ञानिक चर्चा का विषय बन चुका है। नाम बदल सकता है पर सिद्धान्त वही है । आज विज्ञान के क्षेत्र में 'ओरा' पर काफी चर्चा हो रही है । दो शब्द हैं--ओरा और हेलो। पूरे शरीर के चारों ओर जो वलय होता है, वह ओरा है, आभामण्डल है । जो सिर के चारों ओर मंडलाकार में होता है, वह हेलो है, भामण्डल है । महापुरुषों के सिर के पीछे जो एक ज्योतिर्मय चक्राकार मण्डल दिखाया जाता है, उसका नाम है भामण्डल । आभामंडल और भामंडल--ये दोनों बहुत चर्चित हो गए हैं । इनके फोटो भी लिए गए हैं। इटेलियन फोटोग्राफी इस विषय में काफी प्रसिद्ध हो चुकी है। इस क्षेत्र में और भी अनेक लोग काम कर रहे हैं।

वैज्ञानिक सिद्धान्त

अमेरिका की एक महिला है डा. जे. सी. ट्रस्ट। उसने इस क्षेत्र में बहुत काम किया है । डा. जे. सी. ट्रस्ट ने इस विषय पर एक पुस्तक भी लिखी है--एटम एण्ड ओरा । ओरा के अनेक चित्र भी प्रकाशित किए हैं। मद्रास के एक डाक्टर ने ओरा के फोटो लेने की मशीन का निर्माण किया है। वे अंगूठे के आभामंडल का फोटो लेते हैं और उसके आधार पर लोगों का निदान करते हैं। उन्होंने अनेक रोगों के निदान इस पद्धति से किए हैं और वे काफी सफल रहे हैं।

लेश्या का सिद्धान्त आज वैज्ञानिक सिद्धान्त बन चुका है। कम से कम ढाई हजार वर्ष की यात्रा इस सिद्धान्त ने की है। यह सिद्धान्त महावीर के

समय में था और इसका सबसे बड़ा प्रमाण है आचारांग सूत्र का यह वाक्य–'अबहिल्लेसे' । सबसे प्राचीन आगम माना जाता है आचारांग। उसमें लेश्या शब्द का प्रयोग प्राप्त है । महावीर से लेकर आज तक यह लेश्या का सिद्धान्त बराबर चल रहा है ।

ऐतिहासिक दृष्टि : मूल स्रोत की खोज

ऐतिहासिक दृष्टि से यह खोजना होता है - अमुक विचार सबसे पहले किसने दिया ? भारतीय दर्शन और जैन दर्शन के संदर्भ में इस तथ्य की खोज ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत अपेक्षित है । आज जितने विचार और जितने सिद्धान्त मिलते हैं, वे सबसे पहले कहां से आए? इनका मूल स्रोत क्या है? महत्त्वपूर्ण है मूल स्रोत की खोज । उसके बाद संक्रमण होता रहता है। एक अच्छे सिद्धान्त को दूसरा भी अपना लेता है, केवल थोड़ी सी भाषा में बदलाव कर दिया जाता है । विचार और कथानक सबका संक्रमण होता रहा है। हिन्दुस्तान की कहानियां रूस तक पहुंच गई। भारत में रक्षिता-रोहिणी की कहानी बहुत प्रचलित रही है, वह रूस में भी प्रचलित है । कहानियों का बहुत संक्रमण हुआ है । दूसरे देशों के यात्री आते रहे हैं । वहां की कहानियां यहां पहुंची और यहां की कहानियां वहां पहुंच गई । हिन्दुस्तान का विचार और दर्शन दूसरे देशों में पहुंचा, बाहर का विचार और दर्शन हिन्दुस्तान में भी आया। आज हिन्दुस्तान में सात वार (Seven days) प्रचलित हैं। ये कहां से आए हैं? रविवार, सोमवार, मंगलवार - इनका प्रचलन पहले भारत में नहीं था। हम कहानी के चरित्र को देखें, चाहे दूसरे महापुरुषों का चरित्र देखें, कहीं वार का उल्लेख नहीं है। तिथि और मास का उल्लेख मिल जाएगा किन्तु वार का उल्लेख नहीं है। सोमवार, मंगलवार - ये सब बाहर से आए हैं। इनका मूल उत्स हिन्दुस्तान में नहीं है। ये सारे कालान्तर में हिन्दुस्तान में संक्रात हुए हैं।

महाभारत में लेश्या

प्रश्न है - लेश्या का सिद्धान्त कहां से आया ? इसका मूल स्रोत क्या है? यह कहना बड़ा कठिन है कि सबसे पहले यह विचार किसने रखा किन्तु

जितने प्रमाणिक स्रोत हैं, जितने ग्रंथ और साहित्य आज उपलब्ध है, उसके आधार पर विचार करें तो लेश्या की बात महाभारत में मिलती है। महाभारत में कहा गया है—जीव के छह वर्ण होते हैं—कृष्ण, धूम्र, नील, रक्त, हारिद्र और शुक्ल । इनके आधार पर सुख-दुःख को मापा जा सकता है।

षड्जीववर्णाः परमं प्रमाणं, कृष्णो धूम्रो नीलमथास्यमध्यम्।

रक्तं पुनः सह्यतरं सुखं तु, हारिद्रवर्णं सुसुखं च शुक्लम् ।।

वर्ण और सुख का वर्गीकरण

कहा गया—कृष्ण वर्ण वाले बड़े क्रूर होते हैं। उनमें सुख नहीं होता। धूम्र वर्ण वालों में सुख का अभाव सा रहता है। उन्हें लव मात्र सुख उपलब्ध होता है। नीले रंग वालों में थोड़ा सुख अधिक होता है । लाल वर्ण वालों में सुख की मात्रा और अधिक हो जाती है। शुक्ल वर्ण वाले व्यक्तियों में सुख की प्रबलता होती है । परम शुक्ल वर्ण में अत्यन्त सुख होता है।

वर्ण और सुख का यह एक वर्गीकरण है । इसमें छह वर्ण बतलाए हैं और छह वर्णों के आधार पर होने वाले सुख-दुःख का विवेचन किया है। महाभारत का यह सिद्धान्त लेश्या के सिद्धान्त से बहुत निकट है। यद्यपि पूरा साम्य नहीं है फिर भी इसे काफी निकट माना जा सकता है।

लौकिक ग्रंथ है महाभारत

महाभारत एक संकलन ग्रंथ है। यह किसी एक दर्शन का ग्रंथ नहीं है। हिन्दुस्तान में जितने विचार प्रचलित थे, उन सबका इसमें संग्रहण कर लिया गया, कोई सीमा-रेखा नहीं रही । वस्तुतः महाभारत है लौकिक ग्रंथ। यह किसी धर्म-संप्रदाय विशेष का ग्रंथ नहीं है। साहित्य को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया—लौकिक साहित्य, वैदिक साहित्य और श्रमण साहित्य।

वेद आदि वैदिक साहित्य है । आगम, त्रिपिटक आदि श्रमण साहित्य है। महाभारत, रामायण आदि लौकिक साहित्य है । आज भी जो लौकिक कथाएं, काव्य और लोकगीत हैं, वे आम जनता के लिए हैं । किसी धर्म-संप्रदाय

विशेष के लिए नहीं हैं। जहां लोकगीत या लोक कहानियों का प्रश्न है, हिन्दु हो या मुसलमान, वे सबके लिए समान हैं ।

महाभारत भी लौकिक काव्य है। इसमें सब धर्मों और दर्शनों का समाहार है । इसमें जैन दर्शन भी मिल जाएगा, बौद्ध और वैदिक दर्शन भी मिल जाएंगे। उस समय का जितना भारतीय दर्शन और चिन्तन है, उन सबका समाहार महाभारत में उपलब्ध है । जो भी अच्छा लगा, उसे इसमें सम्मिलित कर लिया गया, इसीलिए इसमें बहुत सारी विरोधी बातें मिलती हैं । इसमें जहां एक ओर प्रवृत्ति धर्म पर बल दिया है वहीं दूसरी ओर निवृत्ति धर्म पर भी बहुत बल दिया है। इन दोनों में कोई तालमेल नहीं है। एक सामान्य व्यक्ति पढेगा तो उसे लगेगा—कितनी विरोधी बातें लिखी गई हैं । वस्तुतः विरोधी बातें लिखी नहीं गई हैं, संकलित की गई हैं। इसमें अनेक विचारों का समाहार है।

कितना पुराना है महाभारत

प्रश्न यह है—क्या महाभारत बहुत पुराना है? महाभारत बहुत पुराना है, यह मानना बड़ा कठिन है। हो सकता है, यह हजार वर्ष पुराना हो, डेढ हजार या दो हजार वर्ष पुराना हो किन्तु यह महावीर से पहले का है, यह कहना बहुत मुश्किल है। महावीर से पहले का महाभारत इतना बड़ा बना ही नहीं था। उस समय इसका रूप बहुत छोटा था। प्रारंभ में सम्भवतः इसके सात हजार श्लोक रहे होंगे। फिर इक्कीस हजार बने और आज इसका श्लोक परिमाण एक लाख से भी अधिक है। यह सारा उत्तरकालीन विकास है।

विमर्शनीय बातें

दूसरा है बौद्ध साहित्य । अंगुत्तर निकाय में छह अभिजातियों की चर्चा है। डा. ल्यूमैन और डा. हरमन जेकोबी ने अपने अनुसंधान के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला—महावीर ने लेश्या का सिद्धान्त आजीवकों से लिया। कुछ विदेशी विद्वान् अनुमान करने में तेज रहे हैं और उन्होंने कुछ विचित्र अनुमान

किए हैं। इसका एक कारण यह रहा--उनके सामने पूरी परंपरा नहीं थी। एक दो ग्रंथ पढ़ लिए और उनके आधार पर अनुमान प्रस्तुत कर दिया। यद्यपि उनमें प्रतिभा है, बुद्धि है, उनका कुछ स्टेण्डर्ड है, कुछ तरीके और कसौटियां हैं किन्तु परंपरा के अभाव में उनके अनेक निर्णय सही नहीं ठहरते । उनका निष्कर्ष रहा - आजीवक संप्रदाय काफी पुराना रहा है और महावीर ने उनसे काफी बातें ली। एक है नग्नता। महावीर ने नग्नता आजीवक संप्रदाय से ली। कष्ट सहने की परंपरा महावीर ने आजीवक संप्रदाय से ली। ऐसी बहुत सारी बातों के बारे में लिखा गया है । इतिहास की दृष्टि से ये सारी बातें विमर्शनीय हैं। इनमें से कुछ बातों का काफी खंडन हो चुका है। ऐसे ही अनुमान किया गया--लेश्या का सिद्धान्त आजीवकों से लिया गया है।

छह अभिजातियां

पहली बात यह है--ये जो छह अभिजातियां हैं, वे आजीवक संप्रदाय की नहीं हैं। उस समय जो छह तीर्थंकर कहलाते थे, उनमें एक तीर्थंकर थे पूरणकश्यप। पूरणकश्यप ने इन छह अभिजातियों का वर्णन किया है। उनके द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण लेश्या के सिद्धान्त जैसा वर्गीकरण नहीं है। यद्यपि नाम कृष्णाभिजाति, नीलाभिजाति आदि मिलते हैं किन्तु इनका आधार सर्वथा दूसरा है। इन अभिजातियों का वर्गीकरण इस प्रकार है--

१. कृष्णाभिजाति	क्रूर कर्म करने वाले
२. नीलाभिजाति	बौद्ध भिक्षु
३. लोहिताभिजाति	एक शाटक निर्ग्रंथ
४. हारिद्राभिजाति	श्वेत वस्त्र धारी या निर्वस्त्र मुनि
५. शुक्लाभिजाति	आजीवक
६. परमशुक्लाभिजाति	आजीवक आचार्य

निर्ग्रन्थों की परंपरा

इनमें एक शाटक निर्ग्रंथों की परंपरा थी । जैन मुनि एक शाटक कंधे पर डाल लेते, न कुछ नीचे पहनते और न कुछ ऊपर ओढते । जब महावीर

मुनि बने थे तब वे एक शाटक में ही बने थे । यह कह दिया जाता है—महावीर जब दीक्षित हुए तब उन्होंने कंधे पर एक वस्त्र डाल लिया पर वस्तुतः महावीर एक शाटक परंपरा में दीक्षित हुए थे। एक शाटक का अर्थ यही हो सकता है कि थोड़ा सा लज्जा का निवारण हो जाए। हारिद्राभिजाति में श्वेत वस्त्रधारी और निर्वस्त्र मुनियों को लिया गया है। उससे यह लगता है—उस समय भी श्वेत वस्त्रधारी मुनि थे और उनकी एक परंपरा थी । बौद्ध भिक्षु नीलाभिजाति में, आजीवक शुक्लाभिजाति में और आजीवकों के आचार्य थे परम शुक्लाभिजाति में।

कहां है लेश्या का सिद्धान्तः

यह वर्गीकरण लेश्या के सिद्धान्त के साथ कहां मेल खाता है? थोड़े नाम अवश्य मिल गए हैं पर यह लेश्या का सिद्धान्त बिल्कुल नहीं है। इन रंगों के आधार पर संप्रदायों का एक वर्गीकरण अवश्य हो गया। नीलाभिजाति बौद्ध भिक्षु हैं। अमुक रंग वाले एक शाटक निर्ग्रंथ हैं और अमुक रंग वाले आजीवक हैं। एक प्रकार से सारे संप्रदायों को कपड़ों के आधार पर बांट दिया गया अथवा अपनी धारणा के आधार पर संप्रदायों को बांट दिया गया। इसे लेश्या का सिद्धान्त कैसे कहा जा सकता है? प्रोफेसर ल्यूमेन और डाक्टर हर्मन जेकोबी ने इस आधार पर यह कह दिया—महावीर ने लेश्या का सिद्धान्त आजीवकों से लिया है। इसे लेश्या का सिद्धान्त कैसे कहा जा सकता है?

महावीर का लेश्या सिद्धान्त

महावीर ने जिस लेश्या सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, वह दो धाराओं में चलता है। एक धारा है भाव की और दूसरी धारा है रंग की। भाव और रंग—इन दोनों का योग, यह है लेश्या का सिद्धान्त। यह अध्यात्म का महत्त्वपूर्ण सिद्धांत है। लेश्या को छोड़कर अध्यात्म की बात नहीं कही जा सकती । अकेला लेश्या का सिद्धान्त ऐसा है, जो अध्यात्म की दिशा में बहुत महत्त्व का है।

बुद्धिमान् कौन?

एक लौकिक कहानी है। सैला, सांप और सियार—तीनों मित्र थे। जहां मित्रता होती है वहां हर प्रकार की चर्चा चल पड़ती है। एक बार तीनों के मन में प्रश्न उभरा—हम तीनों में बुद्धिमान् कौन है? जहां बुद्धिमत्ता का प्रश्न आता है वहां प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको बुद्धिमान् बताने की कोशिश करता है। यदि दो छोटे बच्चों से पूछा जाए—तुम दोनों में बुद्धिमान् कौन है? उन दोनों का एक साथ उत्तर आएगा—बुद्धिमान् मैं हूं। बच्चा कभी दूसरों को बुद्धिमान् स्वीकार नहीं करता। जो दूसरों को बुद्धिमान् मानता है, वह बच्चा ही नहीं है और जो दूसरों को बुद्धिमान् नहीं मानता, वह बड़ा होकर भी बच्चा है। प्रत्येक आदमी दूसरे को अपने से कम बुद्धिमान् मानता है। प्रत्येक आदमी सोचता है—मैं सोलह आना सही हूं। सामने वाला व्यक्ति ठीक नहीं है। भोला आदमी भी दूसरों की त्रुटि निकालने में होशियार होता है और बुद्धिमानी का ठेका स्वयं लिए रहता है।

सांप ने कहा – मैं सौ तरह की बुद्धियां जानता हूं । सैला बोला—मैं पचास तरह की बुद्धियां जानता हूं। सियार ने कहा—मैं तो न सौ बुद्धियां जानता हूं और न पचास। मुझमें तो एक ही बुद्धि है। जब समस्या आती है तब उस बुद्धि को काम में ले लेता हूं।

बात समाप्त हो गई । कुछ दिन बाद अचानक जंगल में आग लग गई। आग सारे जंगल में फैलने लगी। सांप आग से बचकर निकल नहीं सका । सैले का चलना तो और भी कठिन था। कांटों का भार लिए दौड़ना कब संभव था? दोनों आग में जलकर भस्म हो गए। सियार बहुत तेजी से दौड़ा और दौड़ता ही चला गया। जंगल के समाप्त होने पर खुले मैदान में पहुंचकर उसने राहत की सांस ली । वह जंगल की भभकती आग को देखकर बोल उठा-

सौ की होगी सींधड़ी, पचासां की दड़ी ।

आछी म्हांरी एकली, लम्बे खाल खड़ी।।

जिसमें सौ बुद्धियां है, वह रस्सी जैसा पड़ा है। जिसमें पचास बुद्धियां है, वह दड़ी (गेंद) जैसा गोल बन गया है । मेरी अकेली बुद्धि ही अच्छी है, जिससे मैं सकुशल जीवित खड़ा हूं।

व्यापक सिद्धान्त

लेश्या का सिद्धान्त एक ऐसा सिद्धान्त है, एक ऐसी बुद्धि है, जिसके सामने सारी बुद्धियां धरी रह जाती हैं। अध्यात्म का ऐसा कोई सिद्धान्त नहीं है, जो लेश्या के बिना एक कदम भी चल सके । लेश्या के बिना कोई ज्ञान नहीं होता । जातिस्मरण ज्ञान का प्रश्न हो अथवा अवधिज्ञान या केवलज्ञान का प्रश्न, लेश्या के बिना यह संभव नहीं है। ज्ञान का अर्थ पुस्तकीय ज्ञान नहीं है। पुस्तकों के ज्ञान के साथ लेश्या का कोई संबंध नहीं है। भूगोल-खगोल के ज्ञान के साथ लेश्या का संबंध नहीं है। वह ज्ञान, जो आत्मसमुत्थ है, आत्मा से उपजता है, उसका संबंध है लेश्या के साथ। आत्मा के साथ जो ज्ञान पैदा होता है, उसके साथ लेश्या का होना जरूरी है। लेश्या शुद्ध होगी तो वह ज्ञान होगा। लेश्या अशुद्ध होगी तो वह ज्ञान पैदा नहीं होगा। हमारा जितना क्षायोपशमिक भाव है, क्षायिक भाव है, सबके साथ लेश्या का संबंध है। औदयिक भाव के साथ भी उसका संबंध है। आयुष्य का बंध और मृत्यु—दोनों लेश्या के साथ जुड़े हुए हैं। जैन आगमों में कहा गया - जल्लेसे मरई तल्लेसे उववज्जई।

व्यक्ति जिस लेश्या में मरेगा, उसी लेश्या में उत्पन्न होगा। जैन दर्शन में लेश्या का सिद्धान्त बहुत व्यापक रहा है। यदि जैन आगमों से लेश्या के सिद्धान्त को निकाल दिया जाए तो उसका एक बहुत मूल्यवान् भाग कम हो जाए, जैन आगमों का पचास प्रतिशत भाग ही अवशिष्ट रह पाए ।

जैन धर्म की मूल देन

ऐतिहासिक दृष्टि से यह मानने में कठिनाई होती है कि महावीर ने लेश्या का सिद्धान्त किसी से लिया है। कहीं से लिया है, यह मानें तो कहा

जा सकता है—पार्श्व की परंपरा से, पूर्वज्ञान की परंपरा से जो लेश्या का सिद्धान्त चला आ रहा था, महावीर ने उसे अपनाया। वस्तुतः पूर्वों का ज्ञान इतना विशाल था कि उसमें दुनियां का सारा ज्ञान समाविष्ट था। लेश्या का सिद्धान्त पार्श्व की परंपरा से चला आ रहा था और पार्श्व के ज्ञान की सारी विरासत महावीर की परंपरा को मिली, यह कहने में कोई कठिनाई नहीं होती। किन्तु इसके अतिरिक्त किसी अन्य परंपरा से—वैदिक, बौद्ध या आजीवक परंपरा से इस सिद्धान्त को लिया है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। हालांकि इन सब परंपराओं में रंगों का वर्णन मिलेगा, क्योंकि रंगों को छोड़कर कोई धर्मशास्त्र चल नहीं सकता। प्रत्येक धर्मशास्त्र में रंगों के आधार पर कुछ न कुछ कहा गया है किन्तु लेश्या का जितना विकास जैन परंपरा में हुआ है उतना किसी अन्य परंपरा में नहीं हुआ। यह बात भी स्वीकार की जा सकती है—लेश्या एवं कर्म—ये दो सिद्धान्त ऐसे हैं, जिन पर जैनों का एकाधिकार रहा है और ये जैनों की मूल देन हैं।

दर्पण है लेश्या

लेश्या—आभामण्डल हमारा एक दर्पण है, जिसमें व्यक्ति अपने आपको देख सकता है, अपने विचारों और भावनाओं को देख सकता है, अपने आचार और व्यवहार को देख सकता है।

महान् दार्शनिक और तत्त्ववेत्ता सुकरात का चेहरा बहुत भद्दा था फिर भी वे दर्पण में बहुत बार अपना चेहरा देखते रहते थे। जब जब सुकरात दर्पण के सामने खड़े होकर अपना चेहरा देखते, उनके शिष्य हंसने लगते किन्तु सुकरात को कुछ नहीं कह पाते।

गुरु की कई बातें ऐसी होती हैं, जो शिष्यों की समझ में नहीं आतीं किन्तु गुरु से पूछने का साहस भी नहीं होता । कुछ व्यक्ति श्रद्धा से उस बात को समाप्त कर देते हैं किंतु सब में श्रद्धा भी गहरी नहीं होती। ऐसे लोग पीछे से हंसते हैं या आलोचना करते हैं। उनमें इतनी क्षमता नहीं होती कि वे गुरु से ऐसे विषयों पर पूछ सकें और मन में उठ रहे विकल्पों को

दबाना उनके लिए संभव नहीं होता इसलिए उनके मन की बात कहीं न कहीं आलोचना के रूप में प्रस्फुटित हो जाती है। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। यह अलग बात है कि व्यक्ति को ऐसा नहीं करना चाहिए।

सुकरात का बार-बार दर्पण में देखना शिष्यों के लिए एक समस्या बन गया। वे न कुछ पूछ पाते और न ही रह पाते । वे आपस में बतियाते—इतना महान् तत्वज्ञानी भद्दे चेहरे को दर्पण में बार-बार क्यों देखता है? चेहरा सुन्दर हो तो देखने में मजा आए। ऐसा भद्दा चेहरा, जिसे आदमी दूसरी बार भी नहीं देखना चाहे और ये बार-बार देखे जा रहे हैं । क्यों? ऐसे ही एक दिन सुकरात शीशा देख रहे थे। कुछ शिष्यों की हंसी एक साथ फूट पड़ी । सुकरात उनकी प्रकृति को जानते ही थे। सुकरात ने कहा—मैं शीशा देख रहा हूं इसीलिए तुम हंस रहे हो। तुम सोचते हो--मैं भद्दा हूं फिर शीशा क्यों देखता हूं, पर तुम यह नहीं जानते—सुन्दर आदमी को शीशा देखने की जरूरत ही नहीं है। जो स्वयं सुन्दर है, वह शीशा किसलिए देखे? शीशा देखने की जरूरत उसे है, जिसका चेहरा भद्दा है । मैं शीशे में यह देखता हूं—मेरा चेहरा भद्दा है पर ऐसा काम न हो जाए, जिससे मेरा चेहरा और अधिक भद्दा बन जाए। मैं यह देखता हूं--कहीं मेरा ऐसा आचरण और व्यवहार तो नहीं हो रहा है, जिससे मेरा चेहरा अधिक कुरूप हो जाए।

सुकरात के इस कथन ने शिष्यों की जिज्ञासा और संदेह को समाहित कर दिया।

नई संभावनाएं

लेश्या का सिद्धान्त हमारे सामने एक ऐसा दर्पण है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपना चेहरा देख सकता है। आचार, विचार और व्यवहार--सबका प्रतिबिम्ब लेश्या के दर्पण में देखा जा सकता है।

लेश्या का यह सिद्धान्त भगवान् महावीर की दार्शनिक जगत् को बहुत बड़ी देन है। दर्शन और अध्यात्म के जगत् में इसका मूल्य सदा रहा है। आज

लेश्या का सिद्धान्त वैज्ञानिक जगत् में प्रतिष्ठित होता जा रहा है। वह समय आने वाला है--जहां निदान करने के बहुत सारे यंत्र नाकामयाब होंगे वहां यह आभामंडल का सिद्धान्त और यह निदान का दर्पण अपनी शक्तिशाली भूमिका निभाने के लिए प्रस्तुत रहेगा। तीन महीने या छह महीने पहले यह घोषणा की जा सकेगी--क्या बीमारी होने वाली है? यह भी बताया जा सकेगा--कब मौत होने वाली है? यह विषय आज विकास की दिशा में गतिशील बना हुआ है और इससे कुछ नई संभावनाएं जन्म लेंगी। ऐसा विषय हमारे लिए ऐतिहासिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक--सब दृष्टियों से मननीय है।

लेश्या : पौद्गलिक है या चैतसिक

चुनाव करें रंग का

क्या हम अपने जीवन में सफल होना चाहते हैं? सफल जीवन जीना चाहते हैं? यदि हम ऐसा चाहते हैं तो हमें ध्यान देना होगा अपने कपड़ों पर। हमने किस रंग के कपड़े पहन रखे हैं? प्रायः जैन साधु-साध्वियां सफेद कपड़े पहनते हैं। लाल, पीला, काला या नीला वस्त्र नहीं पहनते । प्रश्न हो सकता है-सफेद रंग ही क्यों चुना गया? विराग में जाना है तो अन्य आकर्षक दिखने वाले रंगों को छोड़ देना होता है। सफेद रंग शुक्ल लेश्या और परम शुक्ल लेश्या का रंग है। वैराग्य की दृष्टि से यह सर्वोत्तम रंग है।

उद्दंडता का कारण

रंगों का प्रभाव बहुत व्यापक होता है। रंग व्यक्ति की मनःस्थिति को प्रभावित ही नहीं करते, परिवर्तित भी कर देते हैं। सोवियत रूस में एक स्कूल के विद्यार्थी बहुत उद्दंड और उच्छृंखल थे। स्कूल के अधिकारियों और अध्यापकों के सामने एक बहुत बड़ी समस्या पैदा हो गई । उन्होंने सोचा—उद्दंडता का कारण क्या है? दो-चार बच्चे उद्दंड हो जाए, यह बात समझ में आ सकती है। प्रायः सभी विद्यार्थी उद्दंड कैसे हो सकते हैं? इसका कारण क्या है? जो विद्यार्थी बहुत शान्त और संयत लग रहे थे, वे भी उद्दंड और असंयत बनते जा रहे हैं। बहुत खोज की गई पर कोई कारण समझ में नहीं आया। आखिर रंग-वैज्ञानिकों को बुलाया गया। उन्होंने इस समस्या का कारण बतलाया—आपकी स्कूल का रंग भी लाल है, खिड़कियां और दरवाजे भी लाल रंग से पुते हुए हैं। खिड़कियों में जो कांच के शीशे हैं, वे भी लाल हैं। पर्दे भी लाल हैं और फर्श पर जो कालीन बिछे हुए हैं, वे भी लाल हैं । बच्चों की स्कूल ड्रेस भी

लाल है। जहां लाल रंग की अधिकता होगी वहां उद्दंडता और उच्छृंखलता की वृत्ति प्रबल बनेगी।

रंग बदला : स्वभाव बदला

रंग-वैज्ञानिकों ने सुझाव दिया, इस रंग को बदला जाए, हरा, गुलाबी या नीला रंग कर दिया जाए। स्कूल के अधिकारियों को उनका सुझाव उपयुक्त लगा। कमरों के रंग बदल दिए गए। कालीन और पर्दे बदल दिए गए। खिड़कियों के शीशे और दरवाजों के रंग में भी परिवर्तन कर दिया गया। कुछ दिन बीते, विद्यार्थियों के स्वभाव में परिवर्तन आना शुरू हो गया। उनकी उद्दंडता कम हो गई । बच्चे शान्त और शालीन बनते चले गए । अधिकारियों एवं चिकित्सकों की समस्या को समाधान मिल गया।

रंग का महत्त्व

यह देखना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि मकान का रंग कौन सा है? छत का रंग कौन-सा है? यदि इन सबका रंग लाल है तो गुस्सा न आने वाले व्यक्ति को भी गुस्सा आने लग जाएगा। लड़ाई-झगड़ें कम होते हैं तो ज्यादा होने लग जाएंगे। जहां मजदूरों का संबंध है, श्रमयुक्त कार्य करना है वहां लाल रंग उपयोगी होता है। जहां ज्यादा भार उठाना है, सामान से भरी बोरियों को उठाना है वहां लाल रंग का मूल्य है। यदि मकान का रंग लाल है, दुकान और गोदाम का रंग लाल है तो मजदूर ज्यादा भार को भी आसानी से उठा लेंगे। उनकी भार उठाने की क्षमता बढ जाएगी। यदि उनका रंग नीला है तो मजदूर सुस्त बन जाएंगे, थोड़ा भार उठाने में भी उन्हें परेशानी होगी। उनकी भार उठाने की क्षमता कम हो जाएगी।

यह लेश्या का सिद्धान्त जीवन से जुड़ा हुआ सिद्धान्त है। हमारे जीवन की सफलता या असफलता में यह बहुत बड़ा कारक तत्त्व है। हम इसे समझ कर अपने जीवन को सफलता की दिशा में ले जा सकते हैं, अपने व्यक्तित्व

को उन्नत और प्रभावी बना सकते हैं,अपने चिन्तन को स्वस्थ और शक्तिशाली बना सकते हैं।

लेश्या : तीन प्रकार

लेश्या के तीन प्रकार हैं--कर्म लेश्या, नोकर्म लेश्या और भाव लेश्या। दूसरी भाषा में कहें तो लेश्या के दो प्रकार हैं--पौद्‌गलिक लेश्या और चैतसिक या आत्मिक लेश्या। पौद्‌गलिक लेश्या के दो प्रकार हैं--कर्म लेश्या और नोकर्म लेश्या। उत्तराध्ययन के लेश्याध्ययन के प्रारंभ में ही छह कर्म लेश्याओं का उल्लेख है--

लेसज्झयणं पवक्खामि आणुपुव्विं जहक्कमं।

छण्हं पि कम्मलेसाणं, अणुभावे सुणेह मे।।

कर्म लेश्या

कर्म बंधन के साथ लेश्या का गहरा संबंध है। लेश्या संक्लिश्यमान होती है तो अशुभ कर्म का बंध होता है। लेश्या विशुद्ध्यमान होती है तो शुभ कर्म का बंध होता है और क्षयोपशम बढता है। एक लेश्या हमारे शरीर के साथ निरन्तर चल रही है, आभामण्डल चल रहा है और कर्म को ग्रहण करते समय लेश्या वर्गणा के पुद्‌गल हमारे साथ निरन्तर काम कर रहे हैं। यह कर्म लेश्या है।

नोकर्म लेश्या

एक है नोकर्म लेश्या । यह जो सूरज का प्रकाश है, वह नोकर्म लेश्या है । जीवन के साथ उसका गहरा संबंध है। जहां सूरज का प्रकाश है, वहां जीवन है। जहां सूरज का प्रकाश नहीं है, वहां जीवन नहीं है। हमारी दुनिया का जीवन सूर्य के आधार पर चल रहा है। अगर सूर्य का प्रकाश बंद हो जाए तो पाचन तंत्र बिगड़ जाए। जब दिनभर आकाश बादलों से घिरा रहता है तब आदमी का पाचन-तंत्र गड़बड़ा जाता है, पाचन शक्ति कमजोर हो जाती है। पांच-सात दिन तक सूरज न दीखे और आदमी खाता ही चला जाए तो

वह बीमार पड़ जाए। रात्रिभोजन के निषेध का एक कारण जीव हिंसा की दृष्टि रही है। उसका दूसरा कारण सूरज के अस्त होने पर पाचन तंत्र का मंद हो जाना है। आचार्य हेमचंद्र ने योगशास्त्र में लिखा--सूर्य के अस्त हो जाने पर हृदय कमल संकुचित हो जाता है, पाचन तंत्र भी संकुचित हो जाता है। रक्त-संचार भी धीमा पड़ जाता है।

दर्द रात में अधिक क्यों ?

शरीर में जितना दर्द होता है, उसका पता दिन में कम चलता है, रात्री में अधिक चलता है। रात आते ही घुटनों का दर्द बढ जाएगा, पीठ और गर्दन का दर्द बढ जाएगा। प्रश्न हो सकता है--सारे दर्द रात में ही अधिक क्यों सताते हैं ? दिन में अधिक क्यों नहीं सताते? जितना अजीर्ण होता है, वह प्रायः रात में ही होता है। दिन में कब अजीर्ण होता है? किसी अपवाद को छोड़ दें, प्रायः यह रात में ही होता है। वायु भी रात में अपना खेल दिखाती है। इन सबका कारण क्या है? जब तक सूरज रहता है, ये सब शान्त रहते हैं। सूर्य के अस्त होते ही सबको मौका मिल जाता है। चोरी करने का मौका भी रात को ही मिलता है। नींद भी रात में ही सताती है। जितने तामसिक भाव हैं, उन सबको रात में खुलकर अभिव्यक्त होने का अवसर मिल जाता है।

रत्न चिकित्सा और लेश्या

सूर्य की एक लेश्या है। चंद्रमा की भी लेश्या है। रत्नों की भी लेश्या है। ये सब नोकर्म लेश्या हैं । रत्नों में सूर्य का प्रकाश बहुत संचित होता है। इसके आधार पर ही जेम्स थेरापी (रत्न चिकित्सा) का विकास हुआ है। रत्न चिकित्सा पर काफी साहित्य लिखा गया है। कलकत्ता के एक विद्वान् हैं, भट्टाचार्य। वे इस मामले में काफी दक्ष हैं । रत्न का प्रभाव बड़ा विचित्र है। इसका कारण है सूर्य की रश्मियों का संचय।

बम्बई की घटना है ।एक व्यक्ति निरन्तर बुखार से ग्रस्त रहता था।

उसने बहुत दवाइयां लीं पर बुखार नहीं उतरा। उसने रत्न चिकित्सक को अपनी समस्या बताई। रत्न चिकित्सक ने सारी स्थितियों का अध्ययन किया। उसने देखा—अंगुली में लाल माणक पहना हुआ है। समस्या समझ में आ गई। चिकित्सक ने कहा—इस माणक (रत्न) को अंगुली से निकाल दिया जाए। इसे इस कमरे में भी न रखा जाए। चिकित्सक का परामर्श स्वीकार कर लिया गया। जो बुखार इतनी दवाइयों से नहीं मिटा, वह उस रत्न को अंगुली से निकालने के बाद दूसरे दिन ही समाप्त हो गया ।

यह रत्न के प्रभाव का निदर्शन है।

पौद्गलिक लेश्या का अर्थ

यदि रत्न का अनुकूल प्रभाव होता है तो वह व्यक्ति को निहाल कर देता है और यदि उसका प्रतिकूल प्रभाव होता है तो वह व्यक्ति को कंगाल भी बना देता है। उसका प्रभाव दोनों ओर होता है। यह नोकर्म लेश्या—द्रव्य लेश्या का प्रभाव है।

पौद्गलिक लेश्या का अर्थ है—किरण, रश्मि, या ज्योति। ये यदि प्रशस्त होते हैं, तो बहुत लाभकारी होते हैं। यदि अप्रशस्त होते हैं तो बहुत हानिकारक होते हैं। हम रंगों के प्रति जागरूक बनें तो हानि से बच सकते हैं, बहुत लाभ उठा सकते हैं। किस रंग का कपड़ा पहनें, किस रंग का खाना खाएं, मकान या कमरे का रंग कैसा हो? इसका विवेक होना जरूरी है।

रंग से उपजी समस्या

एक सिनेमा हॉल में बहुत गहरा लाल रंग करवाया गया । जो दर्शक सिनेमा देखने जाते, वे सिर-दर्द से परेशान हो जाते। काफी दिनों तक यह क्रम चलता रहा। सिनेमा में दर्शकों की संख्या घटने लगी। एक दिन ऐसा आया—सिनेमा हॉल से घाटा होने लगा। मालिक समस्या और चिन्ता से घिर गया। चपरासी ने मालिक से कहा—क्या बात है? आप उदास क्यों हैं? मालिक बोला—बहुत घाटा हो गया है। मुझे अभी अभी पांच हजार रुपयों की ज़रूरत

है। यदि वे नहीं मिलते हैं तो मेरी प्रतिष्ठा को धक्का लग जाएगा। चपरासी ने कहा—आप चिन्ता मत कीजिए। मैं आपको अभी पांच हजार रुपए ला देता हूं। मालिक आश्चर्य से भर गया। उसने पूछा—तुम्हारे पास इतने रुपए कहां से आए? मैं तुम्हें वेतन तो बहुत थोड़ा देता हूं। चपरासी बोला—जब आपका सिनेमा चलता है तब मैं गेट के बाहर सिर-दर्द की गोलियां बेचता हूं। जो लोग सिनेमा देखकर बाहर निकलते हैं, वे सिर-दर्द से परेशान होते हैं। जब वे सिर दर्द की गोलियां लेते हैं तो उन्हें राहत मिल जाती है। मेरे पास जो रुपए जमा हुए हैं, वे सिर-दर्द की गोलियां बेचकर कमाए हुए हैं।

यह लाल रंग और फिल्म में दिखाए जाने वाले उत्तेजक दृश्यों का परिणाम था। ये सारे पुद्गल हैं, जो हमें बहुत प्रभावित करते हैं।

चैतसिक लेश्या

लेश्या का दूसरा पक्ष है चैतसिक लेश्या। भाव लेश्या चैतसिक लेश्या है। प्राणातिपात, मृषावाद आदि अठारह पाप, पांच आश्रव—ये सब भाव लेश्याएं हैं। इन सबमें रंग हैं। एक व्यक्ति झूठ बोलता है तो वैसा रंग बन जाता है। झूठ बोलने वाला व्यक्ति का आभामण्डल भी धुंधला बन जाता है। हमारा आभामण्डल बहुत स्वच्छ है किन्तु जो आदमी झूठ बोलता है, उसका आभामण्डल भद्दा बन जाता है। हम आचरण की बात छोड़ दें। मन में चोरी की भावना जाग गई, हिंसा की भावना जाग गई तो आभामण्डल मलिन बन जाएगा। झूठ या घृणा का भाव जागा तो आभामण्डल भी वैसा ही बन जाएगा। जैसी भावना जागती है, वैसा आभामण्डल बन जाता है। जैसा आभामण्डल बनता है वैसी ही भावना पैदा हो जाती है।

संबंध है दोनों में

पौद्गलिक लेश्या (द्रव्य लेश्या)और चैतसिक लेश्या (भाव लेश्या)— इन दोनों में गहरा संबंध है। जितने स्थान द्रव्य लेश्या के हैं उतने ही स्थान भाव लेश्या के हैं। जितने स्थान भाव लेश्या के हैं उतने ही स्थान द्रव्य लेश्या के

हैं। द्रव्य लेश्या संक्लिष्ट होती है तो भाव लेश्या संक्लिष्ट हो जाती है। भाव लेश्या संक्लिष्ट होती है तो द्रव्य लेश्या संक्लिष्ट हो जाती है। भाव लेश्या विशुद्ध होती है तो द्रव्य लेश्या विशुद्ध हो जाती है। द्रव्य लेश्या विशुद्ध होती है तो भाव लेश्या विशुद्ध हो जाती है। इन दोनों में गहरा संबंध है। हमें इन दोनों आयामों में जागरूक रहना होगा। हम रंग और आभामण्डल के प्रति भी जागरूक बनें और अपनी भावनाओं के प्रति भी जागरूक बनें। इन दोनों क्षेत्रों में जागरूकता बढ जाए तो जीवन में बहुत विकास किया जा सकता है।

समस्या है लेश्याओं में मेल न होना

आदमी में तनाव बहुत है। वह अनेक प्रकार की चिन्ताओं से घिरा रहता है। वह कभी उदास हो जाता है। उसे वातावरण में रूखापन महसूस होता है। जीवन में सरसता नहीं रहती। इस स्थिति में दूसरे व्यक्ति के प्रति आकर्षण का भाव पैदा नहीं होता। कारण क्या है? इसका कारण है—लेश्याओं का मेल न होना। दो व्यक्ति हैं, दोनों को साथ में रहना है। दोनों की लेश्याओं में मेल नहीं है तो साथ कैसे निभेगा? एक पूरब में जाएगा तो दूसरा दक्षिण में जाएगा। शादी के अनुबंध से पूर्व लड़के-लड़की के गण मिलाए जाते हैं। यह देखा जाता है कि गण मिलता है या नहीं ? गण मिलते हैं तो कितने मिलते हैं और कितने नहीं मिलते। ऐसा माना जाता है—यदि गण मिलते हैं तो संबंध ठीक निभेगा। यदि गण नहीं मिलते हैं तो संबंध ठीक नहीं रह पाएगा। लड़ाई-झगड़ा, तनाव और मन-मुटाव पैदा होते रहेंगे,संबंधों में मधुरता नहीं रह पाएगी। स्वस्थ दांपत्य की दृष्टि से लोग शादी के समय गण मिलाते हैं। यह लेश्या का गण प्रतिदिन मिलाने का है। यदि लेश्या का गण नहीं मिलता है तो कठिनाइयां पैदा हो जाती हैं।

हम लेश्या का गण मिलाएं । इसका सूत्र है लेश्या का परिवर्तन। लेश्या को बदला जा सकता है। यदि लेश्या को बदलने की बात समझ में आ जाए तो सब कुछ समझ में आ जाए।

परिवर्तन का कारक तत्त्व

हम भावों को शुद्ध रखने का अभ्यास करें। उसके साथ साथ द्रव्य लेश्या को बदलने पर भी ध्यान दें। भाव लेश्या और द्रव्य लेश्या--दोनों की शुद्धि परिवर्तन का कारक तत्त्व है। परिवर्तन की जो चर्चा है, वह सारी लेश्या से जुड़ी हुई है। हम प्रयोग शुरू करें द्रव्य लेश्या से। द्रव्य लेश्या को बदलेंगे तो भाव लेश्या में परिवर्तन आना शुरू हो जाएगा। प्रेक्षाध्यान में ज्योति केन्द्र पर सफेद रंग का ध्यान कराया जाता है। जो व्यक्ति सफेद रंग को देखने की साधना करता है, उसे यह अनुभूति हो जाती है—तनाव कम हो रहा है, भाव शुद्ध और पवित्र बनते जा रहे हैं। अनेक लोगों ने इसका प्रयोग किया। उनका सिरदर्द मिट गया। ललाट पर सफेद रंग का ध्यान करने के दो परिणाम सामने आते हैं—भाव विशुद्धि और सिरदर्द से मुक्ति। सिरदर्द के कारण भी भाव अपवित्र हो सकते हैं। जो ललाट का स्थान है,वह आवेगों का स्थान है, कषाय का स्थान है। यह कषाय का कार्यक्षेत्र है।

आत्मा और शरीर का मिलन

इस बात पर विचार किया गया – आत्मा और शरीर, सूक्ष्म शरीर और स्थूल शरीर—इनके संगम बिन्दु कहां हैं? आत्मा और शरीर का मिलन कहां होता है? सूक्ष्म शरीर भीतर है और स्थूल शरीर बाहर है। आत्मा भीतर है और शरीर बाहर है। इन दोनों का संगम-स्थल कौनसा है? शरीर में तीन-चार स्थान ऐसे हैं, जहां इनका मिलन होता है। उनमें एक संगम-स्थल है हमारा लिम्बिक सिस्टम । हमारे मस्तिष्क का एक हिस्सा है लिम्बिक सिस्टम। यह वह बिंदु है, जहां आत्मा और शरीर का मिलन होता है। इस मिलन का माध्यम है लेश्या। लेश्या वहां आती है और शरीर तथा आत्मा को मिला देती है।

पहला संगम-स्थल

गाड़ियों के ठहरने के स्टेशन बहुत हैं पर जंक्शन बहुत कम हैं। जंक्शन वह होता है, जहां गाड़ियों का मिलन होता है, जहां से नई ट्रेनें चलती हैं ।

यह लिम्बिक सिस्टम वह केन्द्र है, जहां आत्मा और शरीर का मिलन होता है। यह स्थान बहुत संवेदनशील है, बहुत भावना प्रधान है। इसे जितना शांत रखा जाए, ठण्डा रखा जाए उतना ही भाव विशुद्ध और पवित्र हो जाए। यह शान्त होता है तो न सिरदर्द होता है, न क्रोध और उत्तेजना सताती है। इस बिन्दु को पकड़ना लेश्या को पकड़ना है।

दूसरा संगम-स्थल

शरीर और आत्मा का दूसरा संगम-स्थल है—नाभि—तैजस केन्द्र। नाभि न्यूक्लीयस केन्द्र होता है । नाभि का बहुत महत्त्व बतलाया गया है। कहा जाता है—नाभि टल गई, पेट में दर्द हो गया, शरीर में दर्द हो गया। पुराने अनुभवी लोग सबसे पहले यह देखते हैं—अमुक व्यक्ति बीमार है। उसकी नाभि टली है या नहीं? नाभि के टलने को 'धरण' कहा जाता है। पेट की एक विशेष प्रकार से नाप-जोख कर यह निर्णय लिया जाता है—धरण है या नहीं? यदि धरण होती है तो सबसे पहले उसे ठीक किया जाता है। यह महत्त्वपूर्ण संगम-स्थल है।

तीसरा संगम-स्थल

शरीर और आत्मा का तीसरा संगम-स्थल है—आनंद केन्द्र। यह भी बहुत महत्त्वपूर्ण चैतन्य केन्द्र है। इस पर रंगों का ध्यान करना लेश्या को विशुद्ध और पवित्र बनाना है। इन सब केन्द्रों पर सूर्य का ध्यान, चंद्रमा का ध्यान, चमकते सफेद रंग का ध्यान किया जाता है और इससे चैतन्य केन्द्र निर्मल बनते हैं।

रंग : प्रशस्त भी, अप्रशस्त भी

ध्यान के ये सारे प्रयोग पौद्गलिक लेश्या से जुड़े हुए हैं। यदि हम अपनी वृत्तियों और भावनाओं को शुद्ध रखना चाहते हैं, अपनी चैतसिक लेश्या को पवित्र रखना चाहते हैं तो हमें द्रव्य लेश्या की निर्मलता पर भी ध्यान देना होगा, निर्मल रंगों का ध्यान करना होगा। सब रंग एक जैसे नहीं

होते। सफेद रंग भी एक जैसा नहीं होता। वह प्रशस्त भी होता है, अप्रशस्त भी होता है। यदि सफेद रंग अप्रशस्त है तो वह अच्छा नहीं है। वही रंग अच्छा होता है, जो प्रशस्त होता है। हम प्रशस्त रंग का चुनाव करें।

काले रंग का महत्त्व

न्यायालय में जज काला कोट पहनता है। वकील भी काला कोट पहनता है। न्यायालय परिसर में सब जगह काला रंग ही काला रंग दिखाई देता है। काला रंग एकदम खराब ही नहीं होता। वह प्रशस्त भी होता है। काले रंग में यह विशेषता है कि वह प्रभावित नहीं होता। राजस्थान की प्रसिद्ध कहावत है- 'काली कंबल पर रंग नहीं चढ़ता'। बहुत सारे रंग कमजोर होते हैं, उन पर दूसरे रंग चढ जाते हैं किन्तु जो कालें रंग का होता है, उस पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता। शायद इसीलिए न्याय के क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिए काले रंग का चुनाव किया गया। ताकि न्यायाधीश निष्पक्ष रह सके, सामने आने वाले दबावों से अप्रभावित रह सके। वकील को भी निष्पक्ष रहना चाहिए। न्यायालय निष्पक्षता का स्थान है। उससे जुड़े हुए व्यक्ति के लिए काले रंग का चुनाव इसी दृष्टि से किया गया होगा।

रंग : व्यवसाय विज्ञापन का

आजकल आम आदमी भी रंग के चुनाव पर बहुत ध्यान देता है। वह कोई भी ड्रेस खरीदता या सिलवाता है तो इस बात पर ध्यान देता है कि ड्रेस की मैचिंग ठीक है या नहीं। रंगों का मैचिंग ठीक हो, वह ड्रेस ठीक है। आजकल इस क्षेत्र में न जाने कितने सलाहकार और परामर्शक हैं । बड़ी बड़ी कंपनियां और विज्ञापनदाता उनसे सलाह लेते हैं। केवल सलाह के वे हजारों रुपया पारिश्रमिक ले लेते हैं। विज्ञापन दें तो किस रंग का दें। यदि विज्ञापन ठीक रंग का नहीं होगा तो कंपनी फैल हो जाएगी। विज्ञापन में आकर्षक रंग आ गया तो कंपनी चल पड़ेगी। विज्ञापित माल में कुछ दम हो या नहीं, विज्ञापन अच्छा होना चाहिए। यह विज्ञापन का व्यवसाय रंगों के आधार पर पनप रहा है।

जीवन से जुड़ी हुई सचाई

इस सारे सिद्धान्त को जैन दर्शन की भाषा में लेश्या का सिद्धान्त कहा गया । ये सारे रंग द्रव्य लेश्या हैं। हमारा इनसे काम ज्यादा पड़ता है। भाव लेश्या हमारे भीतर की बात है। वह हमारे सारे आचार और व्यवहार को प्रभावित करती है। परिवर्तन के लिए इन दोनों लेश्याओं--द्रव्य लेश्या और भाव लेश्या को जानना जरूरी है। अनेक लोग इस भाषा में सोचते हैं--हम इन सबको क्यों जानें? ये सारे तत्त्वज्ञान के पचड़े हैं। हमें इनसे क्या लेना-देना है? व्यक्ति इस सचाई को भूल जाता है--कोई भी व्यक्ति इन सबको जाने बिना अच्छा जीवन जीने की कला नहीं सीख सकता। जिसे अच्छा जीवन जीना है, उसे यह सब जानना होगा। जिसको पशु-सा जीवन जीना है, वह ऐसी बात सोच सकता है। जीवन की सफलता के लिए इन सारी सचाइयों को जानना अपेक्षित है। लेश्या हमारे जीवन से जुड़ी हुई एक सचाई है। हम उसे जानें, सफल जीवन की कुंजी हमारे हाथ में होगी ।

लेश्या और रंग

वर्षा बरसी । लोगों के चेहरे खिल गए । आकाश स्वच्छ और प्रसन्न हो गया । सबके रंग बदल गए । आकाश का भी रंग बदल गया, पेड़ पौधों का भी रंग बदल गया और मनुष्य का भी रंग बदल गया। रंग ही है, जो बदलता है। हम परिवर्तन की बात कहते हैं। परिवर्तन करने वाला कौन है? सारा रंगों का खेल है। रंग बदला, स्वभाव बदला। रंग बदला, मन बदला। रंग बदल जाए तो सब कुछ बदल जाए। रंग न बदले तो कुछ भी न बदल पाए। शरीर, मन और भाव—तीनों को रंग प्रभावित करते हैं। मनुष्य पर बाहरी पदार्थों का जो प्रभाव होता है, उसमें सबसे ज्यादा प्रभावित करने वाला है रंग। और भी बहुत सारी बातें प्रभावित करती हैं किन्तु रंग सबसे ज्यादा प्रभावित करता है।

तीन रंग

हमारे शरीर में तीन तत्त्व या दोष माने जाते हैं। आयुर्वेद के अनुसार वात, पित्त और कफ—ये तीन दोष शरीर को चला रहे हैं। हम तीन रंगों को लें—नीला, हरा और लाल। नीला रंग बहुत शान्तिदायक होता है। गर्मी उष्मा या उत्तेजना—इन सबको मिटाता है नीला रंग। गर्मी के मौसम में नीला रंग बहुत उपयोगी होता है। जितने भी पित्त प्रधान रोग हैं, उन्हें नीला रंग मिटाता है, दूर करता है। हरा रंग रक्तशोधक होता है। यह विजातीय तत्त्वों को बाहर निकालता है। जितने विजातीय तत्त्व शरीर में जमते चले जाते हैं, हरा रंग उन्हें दूर कर देता है। वात प्रधान रोगों को शान्त करने में भी हरा रंग बहुत उपयोगी है। लाल रंग स्फूर्तिदायक है। यह शरीर में चुस्ती लाता है, सुस्ती को

दूर करता है। जो आलसी हैं, नींद में ऊंघते रहते हैं, सुस्त बैठे रहते हैं, उनके लिए लाल रंग बहुत लाभदायक है। यह कफ प्रधान रोगों को शान्त करता है।

रंगों का कार्य

रंगों का काम है शरीर का संतुलन बनाए रखना। एक आदमी बहुत मोटा है, भारी-भरकम है, चर्बी बढ़ती चली जा रही है और दूसरा आदमी बहुत दुबला-पतला है। इसका कारण क्या है? इसका एक कारण है रंगों का असंतुलन। लाल रंग अधिक बढ़ गया है तो व्यक्ति दुबला-पतला हो जाएगा। नीला रंग अधिक बढ़ गया है तो व्यक्ति मोटा-ताजा होगा, उसकी चर्बी बढ़ती चली जाएगी। जिस व्यक्ति में लाल और नीला—ये दोनों रंग संतुलित हैं, वह न मोटा होगा और न दुबला-पतला। उसका शरीर संतुलित होगा, सुन्दर और सुगठित होगा।

रंगों का प्रभाव

रंगों का मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी होता है। लाल रंग अधिक बढ़ गया है तो गुस्सा आने लग जाएगा, उत्तेजना ही उत्तेजना आएगी। यदि नीला रंग कम हो गया है तो व्यक्ति स्वार्थी बन जाएगा। वह केवल अपनी बात सोचेगा, दूसरों का हित-अहित नहीं देखेगा। मानसिक प्रभाव की दृष्टि से भी रंगों का संतुलन जरूरी है।

हमारे शरीर के जितने अंग हैं, उन सबके अपने अपने रंग हैं। बाहर से चमड़ी का रंग एक सा दिखाई देता है पर भीतर में हर अवयव का अपना-अपना रंग है। जिसने शरीर के भीतर गहराई से देखा है, उसने इस तथ्य का साक्षात्कार किया है। रश्मि और रंग का हमारे शरीर पर क्या प्रभाव है? यह आज वैज्ञानिक अध्ययन का विषय बन चुका है।

गौतम की जिज्ञासाः महावीर का समाधान

गौतम ने भगवान महावीर से पूछा—भन्ते! क्या कृष्ण लेश्या नील लेश्या के पुद्गलों को प्राप्त कर तद्रूप में (नील लेश्या में) परिणत हो जाती है?

महावीर ने कहा—गौतम! ऐसा होता है। कृष्ण लेश्या केवल नील लेश्या

के रूप में ही परिणत नहीं होती किन्तु वह कापोत लेश्या, तेजोलेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या के रूप में भी परिणत हो जाती है। थोड़े अच्छे पुद्गलों का योग मिला, कृष्ण लेश्या के पुद्गल नील लेश्या में बदल गए । पीत लेश्या के पुद्गलों का योग मिला,कृष्ण लेश्या के पुद्गल पद्म लेश्या में बदल गए। तेजोलेश्या के पुद्गलों का योग मिला, कृष्ण लेश्या तेजालेश्या के रूप में परिणत हो गई। शुक्ल लेश्या के पुद्गलों का योग मिला, कृष्ण लेश्या शुक्ल लेश्या में बदल गई ।

परिवर्तन का सिद्धान्त

हम लेश्या ध्यान का प्रयोग करते हैं, उसका आधार क्या है? उसका आधार है प्रज्ञापना का यह प्रकरण, जिसमें लेश्या परिवर्तन का सिद्धान्त प्रतिपादित है। हम रंगों के आधार पर लेश्या को बदल सकते हैं। हम सफेद रंग का ध्यान करते हैं, इसका अर्थ है-यदि कृष्ण लेश्या या अन्य किसी लेश्या के जो परिणाम विद्यमान हैं तो वे शुक्ल लेश्या में बदल जाएंगे।

यह लेश्या परिवर्तन का सिद्धान्त बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। हम अनेक बार देखते हैं-व्यक्ति के सामने कोई स्थिति आती है और व्यक्ति बदल जाता है। स्थूल रूप में हमारा निष्कर्ष होता है-एक घटना घटी और आदमी बदल गया । वस्तुतः स्थूल घटना के साथ-साथ रंग भी बदल जाते हैं और आदमी का अंतःकरण भी बदल जाता है।

महाराणा प्रताप और शक्तिसिंह

महाराणा प्रताप और शक्तिसिंह--दोनों भाई शिकार खेलने के लिए जंगल में गए । विजयादशमी का दिन था। दोनों भाइयों ने बाण चलाया और एक हिरण को मार डाला। बाण चला और हिरण मर गया, यह एक घटना घटी और इस घटना को लेकर एक विवाद भी छिड़ गया। प्रताप ने कहा – हिरण मेरे बाण से मरा है। शक्तिसिंह ने कहा–हिरण मेरे बाण से मरा है।

इस बात को लेकर भाइयों में विवाद बढ़ गया। दोनों भाई बहुत शक्तिशाली

और समर्थ थे। किन्तु दोनों में ही अक्खड़पन भी बहुत था, राठौड़ीपन भी था। राठौड़ी वृत्ति के लोग समझौता करना नहीं जानते। उन्होंने लचीला होना सीखा ही नहीं था। दोनों एकान्त आग्रह पर अड़ गए। प्रताप कहता है—हिरण मैंने मारा है और शक्तिसिंह कहता है—हिरण मैंने मारा है। हिरण किसके बाण से मरा? इसका निपटारा कौन करे? दोनों सगे भाई, दोनों में बड़ा प्रेम किन्तु इस एक बात ने दोनों को आमने-सामने खड़ा कर दिया। ऐसा लगता है—उस समय दोनों कृष्ण लेश्या के परिणामों में चले गए। दोनों ने शस्त्र निकाल लिए और एक-दूसरे को मारने के लिए कटिबद्ध बन गए।

परिवर्तन के प्रयत्न

मेवाड़ का राजपुरोहित दोनों राजकुमारों के साथ था। उसने देखा—अनर्थ हो रहा है। यह अन्याय होगा। दोनों शक्तिशाली हैं, शस्त्रों से सज्जित हैं। दोनों ओर से एक साथ प्रहार होगा,दोनों अकाल मौत मर जाएंगे । मेवाड़ पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ेगा। राजपुरोहित उन दोनों में बीच-बचाव करने के लिए आगे आया। उसने कहा—राजकुमारो! आप क्या कर रहे हैं? मेवाड़ की धरती शत्रुओं से घिरी हुई है, चारों ओर से कठिनाइयां प्रस्तुत हो रही हैं। शत्रु घात लगाए बैठे हैं। आप लोग ऐसा करेंगे तो मेवाड़ का क्या होगा? हमारी स्वतंत्रता का क्या होगा? राजपुरोहित ने बहुत समझाया पर दोनों राजकुमार अपनी बात से हटने के लिए तैयार नहीं हुए। जब तवा गर्म होता है तब उस पर पानी की जो बूंदे गिरती हैं, उनका कोई विशेष असर नहीं होता।

राजपुरोहित का बलिदान

राजकुमारों का अपरिवर्तित मानस राजपुरोहित के लिए चिन्ता का विषय बन गया। बदलने के लिए लेश्या का परिवर्तन जरूरी है। यह एक तथ्य है—जब जब किसी व्यक्ति ने अनशन या सत्याग्रह किया है तब तब लेश्या का परिवर्तन हुआ है। वह इतनी बड़ी घटना होती है कि व्यक्ति बदल जाता है, उसकी लेश्या बदल जाती है, रंग बदल जाता है और सामने वाले व्यक्ति का हृदय

भी बदल जाता है। कभी कभी क्रूर आदमी का हृदय भी पसीज जाता है। ऐसे व्यक्ति, जिन्होंने कभी हिन्दुस्तान न छोड़ने की बात कही थी, जो हिन्दुस्तान को छोड़ना नहीं चाहते थे, वे भी पसीज गए, हिन्दुस्तान स्वतंत्र हो गया । जब बड़ी घटना घटती है, लेश्या बदल जाती है, स्थिति में बदलाव आ जाता है।

राजपुरोहित ने सोचा—ऐसे काम नहीं होगा। उसमें आत्मोत्सर्ग का भाव प्रबल बन गया—यदि आप मारना ही चाहते हैं तो मुझे मार दें। यदि मारने से ही संतोष मिले तो मैं आपके सामने प्रस्तुत हूं। इतना कहने पर भी राजकुमारों का रोष शान्त नहीं हुआ। राजपुरोहित एक कदम आगे बढ़ा—उसने कटार निकाली और अपनी छाती में भौंक ली। राजपुरोहित का बलिदान देखकर दोनों कुमार स्तब्ध रह गए । महाराणा प्रताप और शक्तिसिंह का हृदय बदल गया, दोनों भाई शान्त हो गए।

अपेक्षित है प्रयोग

एक घटना का इतना प्रभाव होता है कि व्यक्ति बदल जाता है। किसी बड़े परिवर्तन के लिए बड़ी घटना का होना जरूरी है, बड़े त्याग या बलिदान का होना जरूरी है। लेश्या का परिवर्तन भी कुछ ऐसे ही होता है। बड़ी बात या बड़ी घटना सामने आती है, आदमी बदल जाता है, कृष्ण लेश्या शुक्ल लेश्या में परिणत हो जाती है। लेश्या बदली, भाव बदला और आदमी बदल गया। लेश्या नहीं बदली तो कुछ भी नहीं बदला। रंगों के द्वारा लेश्या का परिवर्तन होता है। यह बात सिद्धान्ततः ठीक है, किन्तु केवल सिद्धान्त से नहीं, प्रयोग से परिणाम आता है। हम परिवर्तन के लिए इसका प्रयोग करें, यह अपेक्षित है।

तात्पर्य वैदिक संध्या का

एक योगी ने लिखा—जो व्यक्ति वैदिक संध्या की ठीक से उपासना करता है, वह शरीर और मन—दोनों से स्वस्थ रहेगा। वैदिक संध्या में तीन रंगों का विधान है—लाल, नीला और सफेद । ब्रह्मा, विष्णु और महेश—इनके ये तीन

रंग हैं। कृष्ण का वर्ण है श्याम। श्याम का अर्थ काला नहीं है। बहुत बार श्याम का अर्थ काला कर दिया जाता है पर वस्तुतः उसका अर्थ नीला है। महेश का नीला, ब्रह्म का लाल और शिव का रंग सफेद है। वैदिक संध्या का तात्पर्य है—जो इन तीनों वर्णों का संध्या के समय ध्यान करता है, वह शरीर और मन—दोनों दृष्टियों से स्वस्थ रहता है।

संदर्भ नमस्कार महामंत्र का

जैनों का महामंत्र है—नमस्कार महामंत्र। नमस्कार महामंत्र का ध्यान पांच वर्णों के साथ किया जाता है। यदि व्यक्ति प्रतिदिन आधा घंटा तक निर्धारित रंगों के साथ नमस्कार महामंत्र का ध्यान करे तो तीन मास बाद उसे लगेगा—मैं हर दृष्टि से ठीक हो रहा हूं। मेरे स्वास्थ्य, प्रसन्नता और शान्ति में वृद्धि हो रही है। हम नमस्कार महामंत्र की माला जपने को रूढि न बनाएं। इसको वैज्ञानिक रूप दें, एक नया प्रायोगिक रूप दें। आज माला को एक रूढि का सा रूप मिल रहा है। व्यक्ति माला जपने बैठता है और जल्दी से जल्दी उसे पूरा कर लेना चाहता है। बहुत लोग कहते हैं, माला जपने में कितना समय लगता है। थोड़े समय में ही एक माला का जप हो जाता है। अनेक लोग गर्व की भाषा में इस प्रकार भी कहते हैं—मैं पांच मिनट में पूरी माला जप लेता हूं। पांच मिनट में एक सौ आठ बार नमस्कार महामंत्र का जप! क्या यह जप का सही तरीका है? लगता है, हमारी गति कंप्यूटर से भी तेज हो गई है। वस्तुतः इतनी जल्दबाजी में माला जपना जप की सम्यक् विधि नहीं हो सकती। अनेक लोग शिकायत करते हैं—महाराज! रोज माला जपते हैं पर उसका कोई लाभ नहीं मिलता। जब जप की विधि ही सही नहीं है तो लाभ कैसे मिलेगा? निष्ठा और सम्यक् विधि से किया गया जप ही सार्थक परिणाम देने वाला होता है।

मूल्य है निष्पत्ति का

हम नमस्कार महामंत्र के जप के साथ रंगों का प्रयोग करें। इससे रंग और लेश्या का संतुलन सधेगा, शारीरिक, मानसिक और भावात्मक संतुलन

सधेगा। नमस्कार महामंत्र को संख्या के आधार पर गिनने की बात का उतना मूल्य नहीं है, जितना मूल्य इस बात का है कि जप किस ढ़ंग से किया जा रहा है। हम संख्या पर न अटकें। जितना करें, इतने इच्छे ढंग से करें कि मन उसमें पूरी तरह नियोजित हो जाए। खाना खाया और स्वाद नहीं आया तो क्या खाना खाया? जप किया, ध्यान किया और आनंद नहीं आया तो जप करने का क्या अर्थ रहा? जप करें तो यह लगना चाहिए—मन बहुत शान्त रहा, भावना बहुत पवित्र रही। यदि ऐसा नहीं लगता है तो मानना चाहिए—जप में कहीं कमी है। सम्यग् विधि और एकाग्रता के साथ किया गया जप कभी निष्फल नहीं होता । उससे व्यक्ति में यह अनुभूति जागती है—मेरा विकास हो रहा है, शान्ति और पवित्रता का स्रोत प्रस्फुटित हो रहा है।

कठिन है संतुलन

जीवन की एक व्याख्या की जा रही है—स्ट्रगल इज लाइफ—संघर्ष ही जीवन है। यह विकास की परिभाषा है—जीवन एक संग्राम है, युद्ध है। उसमें लड़ना है, संघर्ष करना है और संघर्ष करके आगे बढ़ना है। आज समाज में कितनी टकराहट चल रही है। एक दूसरे की टांग खींचना, एक दूसरे को पछाड़ना—यह केकड़ावृत्ति समाज में कितनी चल रही है। इस केकड़ावृत्ति की अवस्था में आदमी को आगे बढ़ना है, अपना विकास करना है। इस स्थिति में शांति और संतुलन को बनाए रखना कितना कठिन होता है। संतुलन का जीवन जीना आसान बात नहीं है।

मित्र की मुसीबत

एक दिन एक व्यक्ति बहुत परेशान लग रहा था। मित्र ने पूछा—क्या बात है? आज इतने परेशान क्यों हो?

उसने कहा – मैं बहुत मुसीबत में फंस गया हूं ?

मित्र बोला – तुम्हारे क्या मुसीबत हो सकती है? तुम्हारे दोनों लड़के सम्पन्न हैं । खूब धन कमा रहे हैं । तुम्हें किस बात की कमी है?

तुम ठीक कहते हो। लड़के सम्पन्न हैं पर मेरी मुसीबत उनके कारण ही है।

ऐसा क्या हुआ, जो मुसीबत आ गई?

मुसीबत बहुत बड़ी है। मैंने लड़कों को पढ़ाया। एक डाक्टर बन गया और एक वकील । उनका यह व्यवसाय ही मुसीबत का कारण है।

उनके व्यवसाय से आपकी मुसीबत का लेना देना क्या है?

हुआ यह कि एक एक्सीडेंट में मेरे पैर में चोट लग गई, पैर में घाव हो गया। जो डाक्टर है, वह कह रहा है--पिताजी! घाव को जल्दी ठीक कर लें अन्यथा इसमें रस्सी पड़ जाएगी। हो सकता है फिर पैर काटने के सिवाय कोई विकल्प न रहे।

यह तो अच्छी बात है । इसमें मुसीबत का प्रश्न ही कहां है?

लेकिन जो वकील है, वह कह रहा है--पिताजी! अभी घाव को ठीक नहीं करना है। इसे बढ़ने दें। जब घाव गहरा हो जाएगा तब मैं दावा करूंगा और पूरा हर्जाना वसूल करूंगा। यही मेरी मुसीबत है।

समाधान है लेश्या

यह जीवन का संघर्ष है, टकराहट है । व्यक्ति दोनों ओर से खिंचा जा रहा है। एक लड़का कहता है—ठीक कर लें और एक लड़का कह रहा है—घाव को और गहरा होने दें। यह जीवन का विचित्र संघर्ष है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति जी रहा है और संघर्षों को झेल रहा है। परिवार का संघर्ष है, भाई-भाई का संघर्ष है, पति-पत्नी का संघर्ष है, समाज के साथ भी संघर्ष है । राजनीति में चले जाएं तो संघर्ष ही संघर्ष हैं। इस टकराहट, संघर्ष और प्रतिस्पर्धा की स्थिति में आदमी स्वस्थ, शांत एवं संतुलित जीवन कैसे जिए, यह एक प्रश्न है और इसका समाधान है लेश्या का प्रयोग । हम नमस्कार मंत्र का पांच रंगों के साथ प्रयोग करें, शान्त एवं संतुलित जीवन की बात हाथ में आ जाएगी। ये बाहरी संघर्ष चलते रहेंगे, दुनियां का स्वभाव मिटेगा नहीं पर व्यक्ति

के भीतर कोई संघर्ष नहीं रहेगा, भीतर में कोई चूल्हा नहीं जलेगा। भीतर लाय जले, चूल्हा जलता रहे तो समस्या पैदा होती है। अगर भीतर में आग न जले तो समस्या पैदा नहीं होगी। यदि व्यक्ति अपने मन को स्वस्थ, शान्त एवं संतुलित रखना चाहता है, अपनी भावनाओं को अनुशासित रखना चाहता है तो उसके लिए लेश्या ध्यान या रंग ध्यान का प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण है।

बाहरी शत्रु : भीतरी शत्रु

एक व्यक्ति ने कहा, मुझे गुस्सा बहुत आता है, मैं इससे बहुत परेशान हूं। वस्तुतः आदमी अपने आप से परेशान है। एक शत्रु होता है बाहर का और एक शत्रु होता है भीतर का । यह भीतर का शत्रु बहुत परेशानी पैदा करता है। हम इन भीतरी परेशानियों को कम करें, भीतर का सारा वातावरण वातानुकूलित हो जायेगा। जब भीतर वातानुकूलन की स्थिति बन जाएगी तब बाहरी प्रभाव कहां से आएगा? बाहरी प्रभाव को रोकने के लिए मकान को एयरकंडीशंड बनाया जाता है। लोग उसे वातानुकूलित बनाने के लिए लाखों रुपये खर्च कर देते हैं। मकान को ठंडा करने के लिए व्यक्ति इतना खर्च करता है पर दिमाग को ठंडा रखने के लिए कोई खर्च नहीं करेगा। हम गहराई से सोचें—मकान को ठंडा रखना अधिक जरूरी है या दिमाग को ठंडा रखना?

वातानुकूलन का विज्ञान

एक भाई ने कहा, मैंने अभी नए ऑफिस के निर्माण में चालीस-पचास लाख रुपए लगा दिए। मैंने पूछा—एक आफिस के निर्माण में इतना व्यय? उस भाई ने जवाब दिया—उसे एयरकंडीशंड बनाने में ही तीन-चार लाख रुपए खर्च हो गए । मैंने पूछा—दिमाग को एयरकंडीशंड बनाने के लिए भी कुछ खर्च करते हो? उसके पास इस प्रश्न का कोई जबाब नहीं था ।

व्यक्ति इस बारे में सोचता ही नहीं है। वह बाहरी वातावरण या मकान को समशीतोष्ण करना चाहता है पर भीतर में जो आग जल रही है, उसे शांत करने की कोई चिन्ता नहीं करता, उस दिशा में प्रयत्न भी नहीं करता।

यह लेश्या का विज्ञान, रंग का विज्ञान भीतरी वातावरण को वातानुकूलित बनाने का महत्त्वपूर्ण विज्ञान है। हम इसका मूल्यांकन और प्रयोग करें, रंगों का संतुलन सधेगा और वह जीवन के लिए वरदान सिद्ध होगा।

लेश्या : गंध, रस और स्पर्श

प्रश्न है अवदान का

धर्म की देन क्या है? धार्मिक जगत् के सामने यह एक बहुत बड़ा प्रश्न है। लौकिक विद्वानों की देन बहुत है। एक व्यक्ति बीमार है तो उसे आयुर्वेद या आयुर्विज्ञान के निकट जाना होगा। एक व्यक्ति को पढ़ना है तो उसे शिक्षक के पास जाना होगा। शिक्षा के क्षेत्र में, चिकित्सा के क्षेत्र में तथा ऐसे अनेक क्षेत्रों में लौकिक विद्याओं का अवदान प्रत्यक्ष है । विज्ञान के क्षेत्र में वैज्ञानिकों का अवदान स्पष्ट है। प्रश्न है—धर्म का कौनसा बड़ा अवदान है, जिससे पूरा समाज उपकृत होता है। क्या हम यह मानें कि धार्मिक लोग बहुत थोड़े में संतुष्ट हैं, वे गहराई में जाने की बात ही नहीं सोच रहे हैं? या यह मानें कि धार्मिक लोग ऐसी समाजोपयोगी व्यवस्थित पद्धति या प्रक्रिया प्रस्तुत नहीं कर पा रहे हैं, जो सारे संसार के लिए मान्य हो जाए। यह चिन्तन का महत्त्वपूर्ण बिन्दु है और इस पर धार्मिक लोगों को विचार करना चाहिए ।

धर्म का अवदान : भाव चिकित्सा

सवाई मानसिंह हॉस्पिटल, जयपुर के एक वरिष्ठ डाक्टर से चिकित्सा विषयक बातचीत चल रही थी। हमने प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में समाधि की चर्चा की, व्याधि, आधि और उपाधि की समस्या को प्रस्तुत किया। डाक्टर साहब ने उपाधि शब्द को बहुत गहराई से लिया। उन्होंने कहा—शारीरिक चिकित्सा के केन्द्र बहुत हैं। मानसिक चिकित्सा के केन्द्र भी अनेक खुले हुए हैं। शारीरिक चिकित्सा के लिए अनेक बड़े-बड़े हॉस्पिटल हैं, मेडिकल कालेज और डिस्पेंसरियां हैं। मानसिक चिकित्सा के भी अनेक विख्यात केन्द्र विकसित हो चुके हैं किन्तु

भाव चिकित्सा—उपाधि चिकित्सा का कोई केन्द्र नहीं है। उन्होंने सुझाव दिया—जैन विश्व भारती में भाव चिकित्सा केन्द्र प्रस्थापित होना चाहिए।

यह एक उपयोगी सुझाव है। अध्यात्म भाव चिकित्सा का महत्त्वपूर्ण सूत्र है। यदि इस एक बिन्दु पर सघन कार्य किया जाए तो व्यक्ति और समाज—दोनों लाभान्वित हो सकते हैं। इसमें अनेक मानवीय समस्याओं का समाधान सन्निहित है। यदि इस दिशा में कोई सार्थक और रचनात्मक कदम उठाया जाए तो धर्म या अध्यात्म का एक महान् अवदान जनता को उपलब्ध हो सकता है।

क्यों आती है बीमारी ?

भाव चिकित्सा केन्द्र भावनात्मक बीमारियों का चिकित्सा का केन्द्र है। क्या ऐसा भी कोई केन्द्र हो सकता है, जिसमें व्यक्ति को यह सुझाव दिया जाए—तुम ऐसा करो, तुम्हें बीमारी नहीं होगी। बीमारी होने पर उसकी चिकित्सा करना एक बात है और बीमारी आए ही नहीं, इसका उपाय सुझाना बिल्कुल दूसरी बात है।

बीमारी क्यों आती है? हम इस प्रश्न पर विचार करें। कुछ बीमारियां बाह्य वातावरण से आती हैं। कुछ ऋतुजनित बीमारियां हैं। सर्दी लगी और जुकाम हो गया। कुछ बीमारियां आहारजनित हैं। आज भोजन इतना दूषित हो गया है, इतने जहरीले पदार्थ उसमें मिल गए हैं कि बीमारी को सहज आमंत्रण मिल जाता है। जब बीज बोया जाता है, छोटा सा पौधा अंकुरित होता है तब से लेकर रसोईघर तक उसे जहर ही जहर का सामना करना पड़ता है। पेड़-पौधों पर बहुत जहरीले पदार्थ छिड़के जाते हैं। न फल शुद्ध हैं, न ही कोई अन्य खाद्य पदार्थ शुद्ध हैं। बहुत सारे जहरीले रसायनों का अंश हमारे भोजन के साथ जाता है। यह बीमारी का बहुत बड़ा कारण बनता है।

कारण है लेश्या

बीमारी का सबसे बड़ा कारण है—हमारी लेश्या और भाव। हमारी जो

भावनाएं हैं, वे बहुत बीमारियां पैदा करती हैं। एक ग्रंथि है पिच्यूटरी। इस ग्रंथि से बारह प्रकार के स्राव होते हैं। ये स्राव हमारे शरीर को प्रभावित करते हैं। इनमें एक स्राव है 'एस.एच.टी. हार्मोन'। इस स्राव का कार्य है एड्रीनल ग्लेण्ड को उत्तेजित करना। जब यह स्राव एड्रीनल को उत्तेजित करता है तब एड्रीनेलिन का अतिरिक्त स्राव होता है, व्यग्रता, अधीरता, अकुलाहट आदि भावनाएं पैदा होती हैं। इस अवस्था में बीमारियों को निमंत्रण मिलता है, बीमारी की पृष्ठभूमि तैयार हो जाती है। हमारी जो रोग प्रतिरोधात्मक शक्ति है, जैविक रासायनिक श्रृंखला है, वह गड़बड़ा जाती है। व्यक्ति बीमारियों से घिर जाता है।

भावना के स्तर पर

बीमार आदमी कहता है—मैंने बड़े-बड़े हास्पिटल में चेक-अप करवा लिया, सभी प्रकार के टेस्ट करा लिए । डाक्टर कहते हैं—तुम्हारे सब कुछ नार्मल है, कोई बीमारी नहीं है किन्तु मैं बहुत बड़ी बीमारी भोग रहा हूं । एक पिता ने अपनी समस्या बताते हुए कहा - मेरा लड़का बहुत दुर्बल है। निरन्तर बीमार रहता है। हमारा घर सम्पन्न है। खाने-पीने की कोई समस्या नहीं है, सारी सुविधाएं उपलब्ध हैं। अच्छे डाक्टर और श्रेष्ठ दवाइयों से भी वह ठीक नहीं हो पा रहा हैं। उसका शरीर कभी बनता ही नहीं है।

प्रश्न है—इन समस्याओं का कारण क्या है? एक डाक्टर इन सबका कारण खोजता है शरीर में । वह देखेगा—कहीं कोई जर्म्स या वायरस तो नहीं है? आधुनिक यंत्र शारीरिक परिवर्तनों को पकड़ लेते हैं। जब शरीर में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं देता है तब डाक्टर उसका कारण पकड़ नहीं पाता। केवल शरीर की चिकित्सा करने वाला कारण को पकड़ने में सफल नहीं हो सकता। ये सारी बीमारियां उपाधि से उत्पन्न होती हैं। भावना के स्तर पर ही इनका निदान और चिकित्सा की जा सकती है।

गंध का प्रभाव

लेश्या तंत्र में इन समस्याओं का बहुत सुन्दर समाधान मिलता है।

निषेधात्मक भाव की जितनी लेश्याएं हैं, कृष्ण, नील और कापोत—इन लेश्याओं के जो पुद्गल हैं, उनके वर्ण, गंध, रस और स्पर्श हैं, वे अनिष्टकर होते हैं। जब निषेधात्मक भाव और अशुभ पुद्गल हमें प्रभावित करते हैं तब व्यक्ति बीमार बनता है। लेश्या की गंध हमें प्रभावित करती है। गंध का प्रभाव एनीमल ब्रेन पर होता है। यह ब्रेन का एक हिस्सा है, जिसे पाशविक मस्तिष्क कहा जाता है। अप्रशस्त लेश्याओं की गंध बहुत खराब होती है। कृष्ण, नील और कापोत लेश्या की गंध इतनी खराब होती है कि आदमी उसे सहन ही नहीं कर पाता। यह एक सुविधा है कि वह गंध बहुत सूक्ष्म है और आदमी उसे पकड़ नहीं पाता। यदि स्थूल गंध इतनी खराब हो तो आदमी एक क्षण भी जी नहीं पाए। प्रकृति ने एक व्यवस्था कर दी है—व्यक्ति अमुक फ्रिक्वेंसी या अमुक मात्रा में ही गंध को ग्रहण कर पाता है। वह सूक्ष्म गंध को ग्रहण ही नहीं कर पाता। हमारे चारों ओर गंध ही गंध है पर हम उसे पकड़ नहीं पाते। हम केवल स्थूल बात को पकड़ने में ही समर्थ होते हैं।

भाव से उत्पन्न होती है बीमारी

हमारी शरीर-रचना भी ऐसी ही है। इन्द्रियां केवल स्थूल को ही अपना विषय बना पाती है। यदि इन्द्रियां सूक्ष्म को पकड़ने लग जाएं तो हम विचित्र स्थिति में फंस जाएं। हमारे चारों ओर कोलाहल हो रहा है। वह हमें सुनाई नहीं देता । यदि व्यक्ति इस कोलाहल को सुनने लगे तो पागल बन जाए । हमारे शरीर के भीतर भी कितना कोलाहल है! वह भी हमें सुनाई नहीं देता । हमें स्थूल आवाज ही सुनाई देती है। यह बहुत अच्छी व्यवस्था है अन्यथा व्यक्ति का जीना दूभर हो जाए। इसी प्रकार गंध भी बहुत प्रबल है। चाहे हम उसको पकड़ न पाएं पर वह हमारे मन और शरीर को प्रभावित अवश्य करती है। ईर्ष्या का भाव मन में आया, घृणा और द्वेष का भाव मन में आया, व्यक्ति चिड़चिड़ा बन जाएगा, वह मन ही मन घुटेगा, जलता रहेगा। उस अवस्था में अप्रशस्त गंध अपना जबरदस्त प्रभाव डालेगी, शरीर और मन को बीमार बना देगी। आजकल न जाने कितने लोग इन भावों के कारण

बीमार बने हुए हैं। वर्तमान वैज्ञानिक कहते हैं--आंतों का घाव, व्रण, अतिसार, हार्ट-अटेक आदि आदि जो बीमारियां हैं, उनके पीछे भावनात्मक कारण ज्यादा कार्य करते हैं। निषेधात्मक भाव और मानसिक तनाव इनकी उत्पत्ति में मुख्य हेतु बनते हैं।

अशुद्ध भाव और लेश्या

लेश्याओं की जितनी खराब गंध है उतनी दुर्गंध हमारी दुनियां में नहीं है। लेश्याओं का रस जितना खट्टा है उतना खट्टा रस भी इस स्थूल जगत् में नहीं है। आम की कच्ची केरी को बहुत खट्टा माना जाता है। वह इतनी खट्टी होती है कि आदमी के दांत भी उसे खाने से खट्टे हो जाते हैं। व्यक्ति उसे खा नहीं पाता । लेश्या का रस उससे भी अनंतगुना खट्टा है। क्या दुनियां में इतना खट्टा पदार्थ है?

लेश्या का स्पर्श भी अत्यन्त तीक्ष्ण होता है । जिस लेश्या में झूठ, कपट, ईर्ष्या और कामवासना के भाव पैदा होते रहते हैं, उस कृष्ण लेश्या का स्पर्श कितना तीक्ष्ण है। हमने करौती को देखा है। वह जब चलती है, काठ को चीरती चली जाती है। काठ का पता ही नहीं चलता। तीक्ष्ण शस्त्र मारबल को भी शीघ्रता से चीर देता है। उस करौत से भी अनंतगुना तीखा स्पर्श है कृष्ण लेश्या का । हम उसकी तीक्ष्णता की कल्पना भी नहीं कर सकते।

लेश्या के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के ऐसे परमाणु हमारे शरीर के भीतर आते हैं। क्या इनसे बीमारी पैदा नहीं होगी? बेचारे यंत्र क्या करेंगे? वे कैसे बीमारी को पकड़ पाएंगे? एक्सरे की पकड़ में कैसे आएंगे? ये वैज्ञानिक यंत्र और गेल्वेनोमीटर की सुइयां कहां तक सफल होंगी? इतने सूक्ष्म गंध, रस और स्पर्श के परमाणु हैं, जिनका हमें पता नहीं चलता। वे सूक्ष्म परमाणु अपना काम करते चले जाते हैं।

भावविशुद्धि और लेश्या

हम इस बिन्दु पर भावविशुद्धि का मूल्यांकन करें। भावविशुद्धि और

लेश्या—दोनों जुड़ें हुए हैं। भावविशुद्ध होंगे तो लेश्या शुभ होगी। लेश्या शुभ होगी तो वर्ण, गंध, रस और स्पर्श भी मनोरम होंगे। इस स्थूल जगत् में गुलाब या केवड़ा की जो सुगन्ध होती है, उससे भी अनंतगुना अधिक सौरभ होती है लेश्या की गंध में। पका हुआ आम जितना मीठा होता है, शुभ लेश्या का उससे भी अनंतगुना अधिक मीठा रस होता है। सद्यः निःसृत नवनीत का जितना कोमल स्पर्श होता है, शुभ लेश्या का उससे भी अनंतगुना अधिक मृदु स्पर्श होता है। शिरीष का स्पर्श कितना कोमल और सुहाना होता है, शुभ लेश्या का स्पर्श उससे अनंतगुना ज्यादा कोमल है।

लेश्या : वर्ण, गंध, रस और स्पर्श

उत्तराध्ययन सूत्र में लेश्याओं के वर्ण, गंध, रस और स्पर्श का व्यवस्थित निरूपण है—

लेश्या	**वर्ण**	**गंध**	**रस**	**स्पर्श**
कृष्ण	खंजन के समान	मृत कलेवर की गंध से अनंतगुना अधिक	तुंबे से अनंतगुना कड़वा	करवत से अनंत-गुना तीक्ष्ण
नील	चाष पक्षी के परों के समान	"	त्रिकटु से अनंतगुना तीखा	"
कापोत	कबूतर की ग्रीवा के समान	"	कच्चे आम से अनंतगुना कसैला	"
तैजस	नवोदित सूर्य के समान	सुगन्धित पुष्प से अनंतगुना अधिक	पके हुए आम से अनंतगुना खट्टा-मीठा	नवनीत एवं शिरीष से अनंतगुना मृदु

लेश्या	वर्ण	गंध	रस	स्पर्श
पद्म	हरिताल के समान	सुगन्धित पुष्प से अनन्तगुना अधिक	विविध आसवों से अनंतगुना अम्ल	नवनीत एवं शिरीष से अनंतगुना मृदु
शुक्ल	शंख या चांदी के समान	"	शक्कर से अनंतगुना मीठा	"

रहस्यपूर्ण वाक्य

हम इनका विश्लेषण करें। कहां खंजन जैसा काला रंग और कहां चांदी जैसा चमकता हुआ श्वेत रंग। कहां मृत कलेवर से अनंतगुना अधिक दुर्गंध और कहां सुरभित पुष्प से अनंतगुना अधिक सुगंध। कहां कच्ची केरी से अनंतगुना खट्टा रस और कहां शक्कर से अनंतगुना मीठा रस। कहां करवत से अनंतगुना तीक्ष्ण स्पर्श और कहां नवनीत से अनंदगुना कोमल स्पर्श। लेश्या लेश्या में कितना अंतर है, कितना तारतम्य है? दोनों प्रकार के परमाणु हमारे भीतर और आसपास बिखरे हुए हैं। यह हमारे हाथ में है कि हम किससे काम लें। यह प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर है कि वह चाहे तो करवत से काम ले या नवनीत सी मदुता को अपनाए। व्यक्ति अपने सुख-दुःख का कर्ता स्वयं है, यह वाक्य इस संदर्भ में कितना रहस्यपूर्ण है। कहा गया—'अप्पा कत्ता विकत्ता य' आत्मा ही कर्ता है और आत्मा ही विकर्ता है। एक नौसिखिया व्यक्ति भी इसका सही अर्थ कर देगा पर इस सरल दिखाई देने वाले वाक्य के पीछे कितना रहस्य छिपा है। एक ओर अप्रशस्त वर्ण, गंध, रस और स्पर्श हैं दूसरी ओर प्रशस्त वर्ण, गंध, रस और स्पर्श हैं। हम किन परमाणुओं का उपयोग करें? किसका स्विच ऑन करें और किसका स्विच ऑफ करें? किस बटन को दबाएं और किस बटन को खोलें? यह हमारे हाथ की बात है और यही है पुरुषार्थवाद या आत्म-कर्तृत्ववाद।

प्रवर्तन हो नई धारा का

हम इस बिन्दु पर सोचें—क्या धार्मिक जगत् दुनियां को बहुत बड़ा अवदान दे सकता है? वह बहुत बड़ा अवदान दे सकता है, एक नई धारा का प्रवर्तन कर सकता है। लेश्या का सिद्धान्त एक ऐसा सिद्धान्त है, जिसका उपयोग शिक्षा और चिकित्सा—दोनों क्षेत्रों में किया जा सकता है। धार्मिक जगत् के ऐसे अनेक अवदान हैं, जो दुनियां के लिए सुख और शान्ति का स्रोत बन सकते हैं। आज अध्यात्म के क्षेत्र में कुछ ऐसी नई शाखाओं का शिलान्यास होना चाहिए। प्रासाद खड़ा होने में समय लग सकता है। शिलान्यास हो जाए, उस पर प्रासाद बनाने का कार्य शुरू हो जाए तो एक दिन एक भव्य इमारत बनाने का सपना साकार हो जाएगा। हम कोई ऐसा कार्यक्रम बनाएं, ऐसा बीज बोएं और उसे निरन्तर सिंचन देते रहें, एक दिन वह एक विशाल वृक्ष बन जाएगा। आवश्यकता है बीजारोपण की, सिंचन और सुरक्षा की। अध्यात्म के क्षेत्र में कुछ नए बीज बोए जा सकते हैं, कुछ नए प्रासाद खड़े किए जा सकते हैं, जिनका निर्माण विज्ञान के द्वारा संभव नहीं है। हालांकि वैज्ञानिक लोग अनेक दिशाओं में आगे बढ़ने के लिए प्रयत्नशील हैं लेकिन कुछ कार्यक्रम ऐसे हैं, जो अध्यात्म के लोगों को विरासत से उपलब्ध हैं और जिन तक वैज्ञानिकों की पहुंच नहीं है । अध्यात्म के लोगों को कहीं से कुछ आयात करने की जरूरत नहीं है, मांगने की जरूरत नहीं है। हम केवल अपने आप से मांगें। अपनी साधना और आराधना से मांगें। अपने तत्त्वज्ञान और अध्यात्म दर्शन से मांगें। हमें विरासत से विशाल ज्ञान राशि उपलब्ध है। केवल जरूरत है निर्माण की, गहन अध्ययन और मनन की, सघन चिन्तन और मंथन की। यदि यह हो जाए तो बहुत सारी नई बातें प्रस्तुत की जा सकती हैं।

जरूरत है चिन्तन-मंथन की

लेश्या जैसा गंभीर सिद्धान्त जिस दर्शन के पास है और जिसके महत्त्वपूर्ण फार्मूले उपलब्ध हैं क्या वह भाव चिकित्सा के क्षेत्र में नया काम नहीं कर सकता? हम शरीर चिकित्सा की बात छोड़ दें, चीर-फाड़ करने की बात छोड़

दें । यह बात डाक्टरों और मेडिकल साइंस पर छोड़ दें, किन्तु क्या भीतर की चीर-फाड़ का काम एक धार्मिक व्यक्ति नहीं कर सकता? क्या आध्यात्मिक चिकित्सा और भाव चिकित्सा का विकास नहीं किया जा सकता? ऐसा हो सकता है किन्तु इसके लिए चिन्तन और मनन की जरूरत है। चढ़ने और उतरने के सोपान भिन्न नहीं होते। क्या आज तक कहीं ऐसी सीढ़ी बनी है, जिसमें चढ़ने के सोपान अलग हों और उतरने के अलग? एक मकान में सुविधा के लिए अनेक सीढ़ियां हो सकती हैं लेकिन जिस सीढ़ी से चढ़ा जा सकता है, उसी सीढ़ी से उतरा जा सकता है। हंसने और रोने वाली आंखें अलग-अलग नहीं होतीं । मानव जिन आंखों से हंसता है, उन्हीं आंखों से रोता है। क्या ऐसा कभी हुआ है कि दो आंखें रोने के लिए होती हैं और दो आंखें हंसने के लिए ? वैसे ही जो सीढ़ियां चढ़ने के लिए हैं, वे ही उतरने के लिए हैं। केवल पकड़ने की जरूरत है।

परीक्षा योग्यता की

गुरु के पास तीन शिष्य आए, प्रार्थना के स्वर में बोले—गुरुदेव ! हम साधना करना चाहते हैं। हमें कोई साधना का सूत्र बताएं ? गुरु ने सोचा—साधना का सूत्र बताने से पहले परीक्षा कर ली जाए। गुरु ने तीनों से एक प्रश्न पूछा—आंख और कान में कितना अंतर है। पहला व्यक्ति बोला—चार आंगुल का। दूसरे ने कहा—कान से आंख ज्यादा काम आती है। आंखों देखी बात बहुत स्पष्ट होती है। आंखों देखी और कानों सुनी बात में बहुत अंतर होता है। तीसरे का जवाब था—आंख से हम देख सकते हैं किन्तु परमार्थ की बात कान से ही सुन सकते हैं। गुरु ने पहले व्यक्ति से कहा - तुम अभी व्यापार करो। तुम्हारा नाप-जोख में रस है। मीटर हाथ में लो और वस्त्रों को नापो। तुम साधना के अधिकारी नहीं हो। दूसरे व्यक्ति से कहा—तुम अभी न्याय का काम करो। लोगों के झगड़े सुलझाओ । आंख द्वारा देखे गए प्रमाण ज्यादा सच होते हैं। तीसरे व्यक्ति से कहा – तुम साधना के योग्य हो । मैं तुम्हें आत्मिक ज्ञान दूंगा, क्योंकि तुम परमार्थ की बात में रस लेते हो।

अध्यात्म की उपयोगिता

यही कान, यही आंख सबके पास है। यदि आंख सचाई को देखने लग जाए, कान परमार्थ की बात को सुनने लग जाए तो कुछ नई बातें हमें प्राप्त हो सकती हैं। इसके लिए हमें गहराई में जाना होगा। जहां कुछ देने की बात है, नई बात प्रस्तुत करने का प्रश्न है वहां बहुत गहरे में डुबकियां लेनी होंगी। सतह पर रहने से काम नहीं चलेगा। यदि हम गहरे उतर कर कुछ नई बात खोजें, अध्यात्म चिकित्सा या भाव चिकित्सा के क्षेत्र में लेश्या के सिद्धान्त के कुछ महत्त्वपूर्ण प्रयोग प्रस्तुत करें तो दुनियां को एक ऐसा सूत्र मिलेगा, जिससे अध्यात्म की उपयोगिता बढ़ेगी, यह विश्वास प्रबल होगा—कोरी भौतिकता का नहीं, अध्यात्म का भी एक साम्राज्य है और उसके बिना मनुष्य सुख और शांति का जीवन जी नहीं सकता ।

लेश्याध्यान (१)

स्वाभाविक प्रश्न

जैन दर्शन आत्मवादी दर्शन है। आत्मा जानता है और पदार्थ जाना जाता है। आत्मा ज्ञाता है और जगत् ज्ञेय है। एक प्रश्न है—आत्मा कहां है? कुछ दार्शनिक मानते हैं—आत्मा पूरे जगत् में फैला हुआ है। जैन दर्शन में आत्मा को शरीर प्रमाण माना गया है। जितना शरीर है, उतने में फैली हुई है आत्मा। फ्रांसीसी दार्शनिक डेकार्टे ने प्रश्न उठाया—चेतना का विस्तार कैसे हो सकता है? पदार्थ का विस्तार हो सकता है किन्तु चेतना और विस्तार – इन दोनों का मेल नहीं है। चेतना का विस्तार नहीं हो सकता इसलिए आत्मा को शरीर प्रमाण कैसे माना जा सकता है?

चिन्तन की सत्ता : जीवन सत्ता

यह प्रश्न स्वाभाविक है । यदि आत्मा का विस्तार हो तो मुक्त आत्मा का भी विस्तार हो जाएगा। जैनदर्शन ने आत्मा में संकोच और विस्तार स्वीकार किया है किन्तु वह कार्मण शरीर के साथ ही स्वीकृत है। आत्मा को पूरे लोक जितना माना गया है। एक भाषा में यह भी कहा जा सकता है—आत्मा का विस्तार नहीं, संकोच होता है। डेकार्टे ने जो सोचा, उसका कारण यह हो सकता है कि डेकार्टे की भाषा में जो आत्मा है, वह चिन्तन की सत्ता (Thinking Power) है। डेकार्टे ने यही कहा—मैं सोचता हूं इसलिए मैं हूं। जैन दर्शन की जो आत्मा है, जिसमें संकोच-विस्तार होता रहता हैं, उसे कहना चाहिए - जीवन-सत्ता (Living Power) । हमारा जो संकोच-विस्तार होता है, वह एक प्राणशक्ति के आधार पर, जीवन-सत्ता के आधार पर होता है। यदि कोरा आत्मा हो तो ऐसा होना संभव नहीं है। जीवन-सत्ता के साथ प्राणशक्ति है

तो उसमें संकोच और विस्तार—दोनों संभव हैं। जैसे छोटे कमरे में दीप का प्रकाश फैलता है वैसे ही वह बड़े कमरे में भी फैल जाता है। उसी प्रकार आत्मा को शरीर में जितना स्थान मिलता है, आत्मा का प्रकाश उतनी ही दूर में फैल जाता है ।

जैसा रंग : वैसा ढंग

आत्मा एक जीवन-सत्ता है। वह पूरे शरीर में फैला हुआ है इसीलिए हम चेतना का अनुभव करते हैं। सिर पर ध्यान करें या पैर पर ध्यान करें, पूरे शरीर में चैतन्य की अनुभूति होती है। चैतन्य केन्द्र भी पूरे शरीर में फैले हुए हैं। रंग भी पूरे शरीर में फैले हुए हैं। हमारी शरीरयुक्त आत्मा रंगीन आत्मा है। आत्मा को अमूर्त और रंगविहीन माना गया है किन्तु वह शरीर-रहित आत्मा के लिए है। कहा जाता है—अपने आपको देखें। जहां शरीरयुक्त आत्मा है वहां हमारी भाषा होगी—जैसा रंग है वैसा जानो। हम कृष्ण लेश्या में हैं तो हमारी आत्मा भी काली बनी हुई है। प्रसिद्ध लोकोक्ति है—जैसा रंग वैसा ढ़ंग। रंगों का इतना प्रभाव है कि रंगों को छोड़कर इस शरीरधारी आत्मा की व्याख्या करना ही कठिन है। व्यक्ति लेश्यातीत कहां होता है? जैन दर्शन की परिभाषा में तेरहवें गुणस्थान को पार करने के बाद व्यक्ति लेश्यातीत होता है। तेरहवें गुणस्थान में रंग हैं । रंगातीत वह होता है, जो अयोगी हो जाता है।

मंत्र, चैतन्य केन्द्र और रंग

व्यक्तित्व रूपान्तरण का एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है—लेश्याध्यान, रंगों का ध्यान। प्रेक्षाध्यान में एक प्रयोग करवाया जाता है-चैतन्य केन्द्र पर मंत्र और रंग का ध्यान। नमस्कार मंत्र के साथ रंग और चैतन्य केन्द्र की संयोजना का एक प्रकल्प यह है-

मंत्र	चैतन्य केन्द्र	रंग
णमो अरहंताणं	ज्ञान केन्द्र	सफेद

णमो सिद्धाणं	दर्शन केन्द्र	अरुण
णमो आयरियाणं	विशुद्धि केन्द्र	पीला
णमो उवज्झायाणं	आनन्द केन्द्र	हरा
णमो लोए सव्वसाहूणं	शक्ति केन्द्र	नीला

मंत्र जप का चैतन्य केन्द्र और रंगों के साथ प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण है। प्राचीन काल से महामंत्र के पद का जप किया जाता रहा है किन्तु उसके साथ रंग और चैतन्य केन्द्र के ध्यान की परंपरा नहीं रही। यह अनुभव किया गया--व्यक्तित्व को बदलने के लिए, स्वास्थ्य के लिए, विघ्नों को मिटाने के लिए मंत्र के साथ रंग और चैतन्य केन्द्र की युति अपेक्षित है। इन बिन्दुओं पर चिन्तन आगे बढ़ा, मंत्रशास्त्रीय दृष्टि का विकास होता चला गया और ये सारी बातें उसमें जुड़ती चली गईं।

णमो अरहंताणं

हम 'णमो अरहंताणं' का जप करते हैं। यह पद का उच्चारण है। पद का नाम भी वर्ण है। इसमें सात वर्ण हैं। प्रत्येक शब्द का अपना रंग होता है। एक भी शब्द ऐसा नहीं है, जिसका अपना रंग न हो। विज्ञान के क्षेत्र में एक ऐसी मशीन का भी विकास किया गया है, जिससे वर्णों को सुना जा सकता है, शब्दों को देखा जा सकता है। 'णमो अरहंताणं' इन सात अक्षरों का उच्चारण करते समय ज्ञान केन्द्र पर सफेद रंग का ध्यान किया जाता है । सफेद रंग में सारे रंग समाविष्ट हैं। आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से सफेद रंग को सबसे अधिक महत्त्व दिया गया है। ध्यान में सफेद रंग दीखने लग जाए तो मानना चाहिए--साधना की निष्पत्ति हो रही है । हम लेश्या के संदर्भ में देखें तो शुक्ल लेश्या से भी विशिष्ट है परम शुक्ल लेश्या। उसका रंग इतना सफेद है कि वह इस स्थूल दुनियां में दिखाई नहीं देता।

सफेद रंग का प्रभाव

साधना का अंतिम स्वरूप है सफेद रंग और साधना का अंतिम व्यक्तित्व

है अर्हत्। जो साधना के चरम बिन्दु पर पहुंच गया, उसका नाम है अर्हत्। हम उस आत्मा को नमस्कार करते हैं, जिसके लिए साधना का कोई आयाम शेष नहीं रहा । जो कृतार्थ बन गया है, धर्म जिसका स्वभाव बन गया है, वह है अर्हत्। ज्ञान, दर्शन और चारित्र--ये आज हमारे लिए धर्म हैं किन्तु जो व्यक्ति केवली बन जाता है, उसके लिए ये सहज स्वभाव बन जाते हैं। उसमें अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन और अनंत चारित्र का स्रोत प्रस्फुटित हो जाता है।

हम सफेद रंग के मनोवैज्ञानिक और भावात्मक प्रभाव का भी मूल्य आंकें। जैसे जैसे सफेद रंग प्रबल बनता है, कषाय मंद होता चला जाता है। कषाय को कम करने का उत्तम उपाय है-सफेद रंग । इसका क्षेत्र है--ललाट और मस्तिष्क। इन पर सफेद रंग का ध्यान करने से कषाय के तनुकरण और क्षयीकरण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। जिन्हें गुस्सा बहुत आता है, उन्हें 'णमो अरहंताणं' का ध्यान सफेद रंग के साथ करना चाहिए और वह भी मुख्यतः ज्योति केन्द्र और शान्ति केन्द्र पर। इससे शारीरिक स्थितियां ही नहीं, मानसिक स्थितियां भी बदल जाती हैं।

णमो सिद्धाणं

नमस्कार महामंत्र का दूसरा पद है--णमो सिद्धाणं । दर्शन केन्द्र पर इस पद का ध्यान किया जाता है । दोनों भृकुटियों और आंखों के बीच का यह स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह स्थान प्रकाश को ग्रहण करने वाला स्थान है। यही तीसरे नेत्र का स्थान है। इस पर मंत्र जप के साथ हलके लाल रंग का ध्यान किया जाता है। हमारे जीवन की तीन मुख्य धाराएं हैं, नाड़ी तंत्र के तीन मुख्य भाग हैं-अनुकंपी, परानुकंपी और केन्द्रीय नाड़ी तंत्र । हठयोग या स्वरोदय की भाषा में इन्हें इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कहा जाता है। इन तीनों का संगम-स्थल है दर्शन केन्द्र। यहां पर इन तीनों प्राणधाराओं का मिलन होता है। इड़ा का रंग है नीला, पिंगला का रंग है लाल और सुषुम्ना का रंग है गहरा लाल। इस केन्द्र पर सामान्यतः हलके लाल रंग का ध्यान किया जाता है। योगशास्त्र में इड़ा को स्त्री और पिंगला को पुरुष माना जाता है। पराक्रम

और पौरुष का रंग माना गया है बाल सूर्य के रंग जैसा हलका लाल रंग। जिन लोगों में सुस्ती ज्यादा है, आलस्य और मंदता है, जिनकी अंतर्दृष्टि जागृत नहीं है, जिनमें मोह प्रबल है, उनके लिए 'णमो सिद्धाणं' का हलके लाल रंग के साथ ध्यान करना बहुत उपयोगी होता है।

णमो आयरियाणं

नमस्कार महामंत्र का तीसरा पद है—णमो आयरियाणं। विशुद्धि केन्द्र पर पीले रंग के साथ इस पद का ध्यान किया जाता है। जिनका पाचन तंत्र कमजोर है, जो मानसिक दृष्टि से दुर्बल हैं उनके लिए ध्यान का यह प्रयोग बहुत लाभदायक होता है। जब भी डिप्रेशन होता है, लोग दवाइयों की शरण ले लेते हैं। यदि उस स्थिति में 'णमो आयरियाणं' का पीले रंग के साथ कंठ पर ध्यान किया जाए तो डिप्रेशन की समस्या समाहित हो जाए।

णमो उवज्झायाणं

नमस्कार महामंत्र का चौथा पद है—णमो उवज्झायाणं । इसका हरे रंग के साथ आनंद केन्द्र पर ध्यान किया जाता है। इस हृद्देश को बहुत लोगों ने आत्मा का स्थान माना है। हरे रंग का कार्य है—विजातीय तत्वों को बाहर निकालना। यह भावात्मक स्वास्थ्य का मुख्य रंग है।

णमो लोए सव्वसाहूणं

नमस्कार महामंत्र का पांचवा पद है—णमो लोए सव्वसाहूणं। इस पद का नीले रंग के साथ स्वास्थ्य केन्द्र और शक्ति केन्द्र (पेडू के नीचे का पूरा भाग) पर ध्यान किया जाता है। नीला रंग शांति देने वाला है। जब उष्णता पैदा होती है तब नीले रंग का ध्यान बहुत उपयोगी रहता है।

आकाश-दर्शन का प्रयोग

प्रेक्षा ध्यान में आकाश-दर्शन का भी एक प्रयोग कराया जाता है। रात का समय। खुली आंख से केवल नीले आकाश को देखें। न सोचें, न कल्पना

करें। केवल आकाश को देखते रहें। यह प्रयोग आज्ञाचक्र को जगाने वाला भी है और उत्तेजना का उपशमन करने वाला भी है।

सव्वसाहूणं

जैन आचार्यों ने स्वास्थ्य के लिए एक मंत्र का चुनाव किया —सव्वसाहूणं। इसे बीमारी मिटाने वाला मंत्र माना गया । इसका ध्यान किया जाता है स्वास्थ्य केन्द्र पर ।

रंग और मनोभाव

पांच पद, पांच चैतन्य केन्द्र और पांच ही रंग। लेश्या का एक अर्थ है रंगों का ध्यान। रंगों के ध्यान का बहुत प्रभाव होता है किन्तु उसके साथ भाव परिवर्तन पर ध्यान देना भी बहुत जरूरी है। सोवियत वैज्ञानिकों ने यह प्रयोग भी किया है कि मनोभावों को बदलकर बीमारी को कैसे मिटाया जा सकता है ? परिवर्तन का सूत्र है—भावधारा को बदलो, लेश्या को बदलो, वृत्तियां परिष्कृत हो जाएंगी। रंगों के ध्यान के साथ मनोभावों पर ध्यान देना भी आवश्यक है। ये पांच पद हमारे मनोभाव हैं। इन मनोभावों के साथ रंगों और चैतन्य केन्द्रों को जोड़ें तो एक शक्तिशाली यूनिट बन जाता है और उसके दूवारा बहुत लाभ उठाया जा सकता है। मंत्र, रंग और चैतन्य केन्द्र—इनकी सम्यग् युति में स्वस्थ एवं सफल जीवन का रहस्य छिपा है। प्रयोगधर्मा बनकर ही उस रहस्य को हस्तगत किया जा सकता है।

लेश्याध्यान (२)

व्यक्ति ने दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखा । वह भद्दा लगा। व्यक्ति दर्पण को तोड़ने लगा। उसके पीछे खड़े आदमी ने कहा - भले आदमी ! क्या कर रहे हो?

इसमें मेरा चेहरा भद्दा दिख रहा है इसलिए मैं इसे तोड़ रहा हूं।

इसमें दर्पण का क्या दोष है? तुम जैसे हो वैसे ही दर्पण में दीखोगे। दर्पण का काम है प्रतिबिम्ब दिखाना । उसे सुन्दर या भद्दा बनाना दर्पण का कार्य नहीं है।

हम दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखें और जानें पर दर्पण पर गुस्सा न करें। यदि चेहरा भद्दा है तो यह सोचें—इसे सुन्दर कैसे बनाया जा सकता है? हमारा सुन्दर होना या सुन्दर न होना लेश्या पर, भाव पर निर्भर है। लेश्या निर्माता भी है और दर्पण भी है।

लेश्या की पवित्रता

सुन्दरता के लिए लेश्या को पवित्र बनाना होता है। जब-जब व्यक्ति पद्म लेश्या, तेजो लेश्या और शुक्ल लेश्या के भावों में जीता है तब तब शरीर और मन की अवस्थाएं ठीक होने लग जाती हैं । जब व्यक्ति कृष्ण, नील और कापोत लेश्या के भावों में जीता है तब सब कुछ गड़बड़ाने लग जाता है। लेश्या ध्यान का मतलब आंख मूदकर बैठना ही नहीं है। उस चेतना के जागरण का अर्थ है लेश्याध्यान, जिससे हम अपने भावों को निर्मल और पवित्र रख सकें। हम इस बात के प्रति निरन्तर जागरूक रहें—हमारे मन में अकारण ही बुरे भाव तो नहीं आ रहे हैं। हिंसा, झूठ, चोरी और काम वासना के भाव

तो नहीं पनप रहे हैं? ये सारे भाव कृष्ण, नील और कापोत लेश्या के भाव हैं। जब जब ये भाव जागते हैं तब तब शरीर का तंत्र गड़बड़ाता है, मन का तंत्र भी गड़बड़ाता है। भावशुद्धि ज्यादा से ज्यादा कैसे रहे, इस सूत्र को पकड़ें। भावविशुद्धि ही समस्या के समाधान का महत्त्वपूर्ण सूत्र है।

सामंजस्य की समस्या

वर्तमान युग की बहुत बड़ी समस्या है सामाजिक संबंधों के सफल अभियोजन की। आदमी समाज के साथ अपने संबंधों का सफल अभियोजन कैसे करे? जहां सामंजस्य (एडजेस्टमेन्ट) की समस्या है वहां चित्त की समाधि नहीं रहती । अशुद्ध लेश्या और कषाय के भाव प्रबल होते हैं तो व्यक्ति सामाजिक संबंधों को ठीक नहीं रख सकता। सामाजिक संबंधों के सफल अभियोजन में बाधा है कषायजनित आवेग।

चार बाधाएं

एक बाधा है क्रोध । जिसका क्रोध प्रबल है, वह सामाजिक संबंधों को सही ढ़ंग से नहीं निभा पाता ।

दूसरी बाधा है-अहंकार । एक व्यक्ति का अहंकार सबको परेशान कर देता है। अहंकार हीनता की वृत्ति को जन्म देता है। व्यक्ति जब अपने से छोटों को देखता है तो अहंकार की भावना जागती है और अपने से बड़ों को देखता है तो हीनता से भर जाता है। जिस व्यक्ति में नील और कापोत लेश्या का परिणमन होता है, वह अहंकार में चला जाता है। तीन व्यक्तियों को साथ में रहना है। उसमें एक व्यक्ति को मुख्य बना दिया जाता है। यह एक व्यवस्था की बात है। जिसको मुखिया बनाया गया है यदि वह अहंकार में चला जाए तो संबंधों का सम्यक् अभियोजन कैसे होगा? संबंधों का सफल अभियोजन तब हो सकता है जब मुखिया व्यक्ति अधिक विनम्र बन जाए और जो मुखिया नहीं हैं, वे समानता की अनुभूति करें ।

तीसरी बाधा है माया । विश्वास और मैत्री को तोड़ने में माया जितनी

अहम भूमिका निभाती है उतनी शायद कोई नहीं निभाता ।

चौथी बाधा है लोभ । इसके कारण बहुत ही निकट के संबंध टूट जाते हैं।

जरूरी है भावशुद्धि

व्यक्ति के मन में जो भाव होता है, वह प्रकट हो ही जाता है और उससे अनेक समस्याएं उलझ जाती हैं । भाव के प्रकंपन इतने सूक्ष्म हैं कि वे हमारी अतीन्द्रिय चेतना को छू लेते हैं। एक बहरा और अंधा आदमी भी बहुत दूर से ही भाव के प्रकंपनों को पकड़ लेगा। जब मन में भाव खराब आता है, तब अपने आप वैसी स्थिति बन जाती है इसीलिए हमें भावना के स्तर पर सबसे ज्यादा जागरूक होना है। यही लेश्या का सिद्धान्त है। जो लेश्या के सिद्धान्त को समझ लेता है वह भावशुद्धि के प्रति जागरूक बन जाता है। हम स्वयं अनुभव करते हैं—हमारे मन में किसी के प्रति अन्यथा भाव आता है तो सामने वाले व्यक्ति के तेवर भी बिना बताए ही बदल जाते हैं। उसके मन में भी एक अन्यथा भाव जन्म ले लेता है और वह एक नई समस्या बन जाता है। इस स्थिति से उबरने के लिए जरूरी है भावशुद्धि और भावशुद्धि के लिए अपेक्षित है लेश्या की चेतना का जागरण ।

जीवन दर्शन का अर्थ

जैन धर्म में तत्त्वज्ञान को बहुत महत्त्व दिया गया है किन्तु उसके साथ आचरण का पक्ष सदा जुड़ा रहा है। जैन दर्शन कोरा दर्शन नहीं किन्तु जीवन-दर्शन है। हमने दर्शन को पकड़ा, जीवन को छोड़ दिया। जीवन-दर्शन का अर्थ है—तत्त्व-दर्शन को जीया जाए, उसे केवल जाना ही न जाए। आज जीने की बात छूट गई, केवल जानने की बात रह गई। जैन धर्म में सामान्य तत्त्वज्ञान के लिए पच्चीस बोल का थोकड़ा कंठस्थ करवाया जाता है। उसका एक बोल है—लेश्या के छह प्रकार हैं। व्यक्ति लेश्या के प्रकार जान लेगा पर लेश्या जीवन के लिए कितनी उपयोगी है, यह नहीं जानेगा।

भावशुद्धि का प्रशस्त पथ

मनोवैज्ञानिकों ने इस भावपक्ष पर बहुत विचार किया है। मनोविज्ञान में सामान्य और असामान्य की व्याख्या में इस भावपक्ष का काफी उपयोग किया गया है। जब तक हम कृष्ण, नील और कापोत लेश्या के परिणामों को नहीं बदल देते तब तक असामान्य व्यक्ति सामान्य नहीं बन सकता। सामान्य व्यक्तित्व के लिए तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या का विकास आवश्यक है । वस्तुतः लेश्या-ध्यान केवल रंगों का ध्यान नहीं है, वह भावधारा के प्रति जागरूक होने का, भावधारा के परिष्कार का महत्त्वपूर्ण प्रयोग है । हम ऐसी स्थिति बनाएं, जिससे कभी अकारण ही गलत भाव न आ पाए । लेश्या की विशुद्धि का अर्थ है-भाव की शुद्धि। लेश्याध्यान उसका उपलब्धि का प्रशस्त पथ है। हम इसे अपनाएं, भावशुद्धि हमारे जीवन में प्रतिष्ठित होती चली जाएगी।

लेश्याध्यान (३)

स्वतंत्रता का मूल्य

जब से मनुष्य ने सोचना-समझना शुरू किया तब से ही उसे आजादी प्रिय लगने लगी। उसने सबसे ज्यादा मूल्य दिया है स्वतंत्रता को। मनुष्य ने इस स्वर में स्वतंत्रता की कामना की—आधा जून रोटी मिले, भूखा भी रहना पड़े पर गुलामी को सहन नहीं किया जाएगा। रोटी सब कुछ नहीं है, स्वतंत्रता उससे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। यह धारणा हजारों हजारों वर्षों से चली आ रही है। स्वतंत्रता कैसे मिले और वह सुरक्षित कैसे रहे? यह प्रश्न मनुष्य के सामने सदा रहा है।

आगम की भाषा

आगम की भाषा में कहा जा सकता है—जब देश में कृष्ण लेश्या का परिणाम बढ़ता है तब देश का पतन होता है, स्वतंत्रता छीन ली जाती है। जब तेजो लेश्या का परिणाम बढ़ता है तब देश उन्नत होता है, स्वतंत्रता सुरक्षित रहती है। कृष्ण लेश्या का एक लक्षण है—पांच आश्रव में प्रवृत्ति। प्रश्न है—हमारी स्वतंत्रता को खतरा किससे है? हिंसा, आतंकवाद, अपराध, बलात्कार, चोरी, डकैती, झूठ, छल-कपट की वृद्धि—ये सब कृष्ण लेश्या के परिणाम हैं। इन्हीं प्रवृत्तियों से स्वतंत्रता को सबसे बड़ा खतरा है।

वर्तमान राजनीति का चरित्र

जब-जब मैं राजनीतिक नेताओं के वक्तव्यों और टिप्पणियों को पढ़ता हूं तब-तब मेरे मन में एक प्रश्न उभरता है—क्या राजनीति को निषेधात्मक भावों के आधार पर ही चलाया जा सकता है? क्या दूसरों को गलत बताकर ही चुनाव जीता जा सकता है। कितना अच्छा हो यदि राजनीति विधायक

दृष्टिकोण से चले। यदि कुछ रचनात्मक कार्य सामने आए तो चुनावों को जीतने के लिए इतना प्रयत्न ही न करना पड़े। समस्या यह है—रचनात्मक कार्य तो बहुत कम होते हैं किन्तु दूसरे दलों को नीचा दिखाकर चुनाव को जीतने के हथकंडे ज्यादा अपनाए जाते हैं।

जो लोग समूचे राष्ट्र की बागडोर अपने हाथ में थामने वाले हैं, उनके आचरण और व्यवहार को देखते हैं तो उन्हें यह बागडोर सौंपते हुए प्रत्येक भारतीय के मानस में एक संदेह और खतरा बना रहता है। हम बाजारों में देखें, गली नुक्कड़ों में देखें, सभाओं में देखें। सब स्थानों पर निषेधात्मक दृष्टिकोण ही नजर आता है। एक दूसरे को गिराने की चेष्टाएं चलती रहती हैं। इन स्थितियों में यह प्रश्न उभरता है—क्या इस चेतना के आधार पर राष्ट्र को चलाया जा सकता है? राष्ट्र को उन्नत बनाया जा सकता है? स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखा जा सकता है? इन प्रश्नों का समाधान वर्तमान भारतीय राजनीति के चरित्र से नहीं पाया जा सकता ।

मूल्य है आचरण का

लेश्या का संबंध अच्छे रंगों और भावों के साथ है। उसका संबंध अच्छे आचरण के साथ भी है। जब तक आचरण अच्छा नहीं है, भाव अच्छा नहीं हो सकता। मूल्य है आचरण का। समाज में सदाचार व्यापक नहीं बनेगा तो अच्छी चेतना का विकास कभी संभव नहीं होगा। आचरण अच्छा होगा तो भाव और रंग अपने आप अच्छे हो जाएंगे। व्यक्ति का अपना संकल्प और व्रत होता है। जीवन में व्रत होता है तो अच्छा विचार भी आता है, अच्छा भाव और रचनात्मक दृष्टिकोण भी विकसित होता है।

व्रत की चेतना जागे

भगवान् महावीर ने जो धर्म बतलाया, वह व्रत और आचरण का धर्म है। एक मुनि के लिए पांच महाव्रत बतलाए। एक गृहस्थ श्रावक के लिए बारह व्रत बतलाए । इन सबका सार है अच्छा आचरण। यदि जीवन में व्रत, संयम और साधना नहीं है तो कोई भी बात अच्छी नहीं हो सकती । व्यक्तिगत

स्वतंत्रता का प्रश्न हो या सामाजिक स्वतंत्रता का प्रश्न, यह तभी कायम रह सकती है जब व्रत और संकल्प की चेतना का विकास होता रहे। समस्या यह है–व्रतों की ओर हमारा ध्यान जाता ही नहीं है। पंद्रह अगस्त पर लालकिले की प्राचीर से दिया गया प्रधानमंत्री का भाषण सुना। उन्होंने सब क्षेत्रों से जुड़े लोगों को धन्यवाद दिया पर जिन लोगों ने नैतिकता के लिए,सदाचार के लिए, व्रत और संयम की प्रतिष्ठा के लिए पावन अभियान चला रखा है, अपना जीवन लगा रखा है, उनको इस भाषण में याद भी नहीं किया गया। यह बहुत विचित्र बात है।

आवश्यक है संयम की प्रतिष्ठा

व्रत ओर संयम की प्रतिष्ठा आज की अहम अपेक्षा है। जब तक इस आध्यात्मिक चेतना को, व्रत और त्याग की चेतना को नहीं जगाया जाएगा तब तक इस स्वार्थवादी दुनियां में स्वतंत्रता अक्षुण्ण रह सके, यह बहुत कठिन लगता है। हम अपनी शक्ति का इस दिशा में नियोजन करें। शुक्ल लेश्या और तेजो लेश्या कैसे जागे? जीवन में कैसे महाव्रत और अणुव्रत आए? स्वार्थ में डूबे हुए आदमी में परमार्थ की भावना कैसे जागे? व्रत की भावना कैसे प्रबल बने? भोग में लिप्त आदमी के मन में त्याग की भावना कैसे जागे? इन सारे प्रश्नों को केन्द्र में रखकर अणुव्रत आंदालेन ने त्याग की मशाल जलाने का काम किया है। यदि समाज में व्रत प्रतिष्ठापित नहीं हुआ तो स्वतंत्रता को कभी न कभी खतरा पैदा हो सकता है। यह खतरा बाहर से नहीं, भीतर से भी पैदा हो सकता है।

ज्वलंत समस्याएं : समाधान का सूत्र

हम राष्ट्र की वर्तमान स्थिति को देखें। असम की समस्या है, पंजाब और कश्मीर की समस्या है। उत्तर प्रदेश और बिहार की समस्या भी कम नहीं है। कहीं क्षेत्रवाद समस्या का मुद्दा बना हुआ है, कहीं जातिवाद मुद्दा है और कहीं मंदिर-मस्जिद का मुद्दा है। एक ओर असंयम बढ़ रहा है तो दूसरी ओर ये समस्याएं देश के विकास में बाधा बन रही हैं। सब व्यक्ति संकल्प

लें—व्रती बनना है, व्रत की दिशा में गति करना है, आचरण को अच्छा और पवित्र बनाना है। इस संकल्प से प्रभावित आचरण से हमारी लेश्या विशुद्ध और पवित्र बनेगी। जिस दिन हमारा आचरण श्रेष्ठ होगा, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या के परिणाम प्रवर्द्धमान होंगे, उस दिन वास्तविक स्वतंत्रता का मूल्य जनता में प्रस्थापित होगा।

अध्यात्म के मौलिक नियम

प्रत्येक धर्म, दर्शन और व्यवस्था ने हमेशा सत्य पर बल दिया। सत्य को जानो, जिससे जीवन बहुत अच्छा चलेगा। सत्य की सबसे व्यावहारिक और मौलिक व्याख्या मुझे जो लगी, वह है नियमों का ज्ञान।

कृत नियम : अकृत नियम

संसार में कुछ नियम हैं। अन्तर्जगत् के भी नियम हैं और बाह्य जगत् के भी नियम हैं। पदार्थ जगत् के भी नियम हैं और आत्म जगत् के भी नियम हैं। इन सबके प्राकृतिक और सार्वभौम नियम बने हुए हैं। कुछ नियम मनुष्य बनाता है। वे कृत नियम हैं। जो प्राकृतिक नियम हैं, वे अकृत नियम हैं। कृत नियम बनते रहते हैं, बदलते रहते हैं। अकृत नियम बदलते नहीं हैं । जो कृतक होता है, वह अनित्य होता है। न्यायशास्त्र का प्रसिद्ध वाक्य है—यद् यद् कृतकं तद् तद् अनित्यं, यथा घटः। जो जो कृतक है, वह अनित्य है जैसे घड़ा। जो जो अकृतक है, वह नित्य है, जैसे आकाश । जो स्थाई सत्य है, वह अकृतक है।

अध्यात्म की चतुष्पदी

हमारी आत्मा के कुछ नियम हैं, धर्म और अध्यात्म के भी कुछ नियम हैं। अध्यात्म के नियमों की एक चतुष्पदी बनती है। अध्यात्म के चार मौलिक नियम ये हैं—अनित्य, अशरण, एकत्व और अन्यत्व। इन चारों को समझे बिना कोई अध्यात्म के मर्म को समझ नहीं सकता। आध्यात्मिक बनने के लिए इन चार आर्य सत्यों को जानना बहुत जरूरी है।

संयोग वियोग की युति

पहला सत्य है अनित्य। जितना संयोग और संबंध है, वह सब अनित्य

है। संबंध कभी स्थायी नहीं हो सकता। इस शरीर के साथ जो संबंध हुआ है, वह अनित्य है। किसी स्थान या किसी कालखण्ड के साथ जो संबंध हुआ है, वह अनित्य है। एक दिन छूट जाने वाला है। किसी व्यक्ति के साथ जो संबंध जुड़ा है, वह भी अनित्य है। यह एक प्राकृतिक और आध्यात्मिक नियम है। इसे सब लोग जानते भी हैं। संस्कृत कवि ने इस सचाई को इस भाषा में लिखा—संयोगाः विप्रयोगांताः—प्रत्येक संयोग का अंत वियोग में होता है।

साक्षात्कार का क्षण : चेतना में बदलाव

प्रश्न होता है—हम इस सचाई को जानते हैं फिर भी हमें दुःख होता है, इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है—हमने केवल वाचिक ज्ञान ही किया है, वास्तविकता को जाना नहीं है। जानना है साक्षात्कार। भारतीय दर्शन में मूल शब्द जानना नहीं है। मूल शब्द है दर्शन। हम साक्षात्कार नहीं करते, केवल जान लेते हैं। कान से किसी शब्द को सुन लिया, मतिज्ञान से उसे ग्रहण कर लिया, अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा हो गई। जानने का अर्थ इतना ही नहीं है। जानने का मतलब है—उस वस्तु या शब्द की तह तक पहुंच जाएं, अनुभूति के स्तर पर पहुंच जाएं, उसे साक्षात् देख लें।

सूरज रोज उगता है और रोज अस्त होता है। क्या किसी व्यक्ति के मन में सूरज को देखकर वैराग्य जागा? राग कम हुआ? जैन रामायण का प्रसंग है—जिस दिन हनुमान ने सूर्य का साक्षात्कार किया, उनकी चेतना का रूपान्तरण हो गया। यह वैराग्य पैदा हुआ साक्षात्कार होने पर। बूढे आदमी और सूखे पत्ते को किस आदमी ने नहीं देखा? शवयात्रा को किसने नहीं देखा? बीमार को किसने नहीं देखा? जब बुद्ध ने मुर्दे को देखा, तब सचमुच उनमें बुद्धत्व जाग गया। जब नमि राजर्षि ने ध्वनि और अध्वनि में अंतर किया, चेतना बदल गई। चेतना बदलती है साक्षात्कार के क्षणों में।

अनित्यता का साक्षात्कार करें

हम अनित्यता के नियम को जानते हैं पर उसका साक्षात्कार नहीं करते। पदार्थ कितना अनित्य है, उस पर ध्यान नहीं देते। जिस दिन व्यक्ति नया

कपड़ा पहनता है, कितनी उमंग और खुशी से पहनता है। जब वह पुराना होता है तब यह नहीं सोचता—इसको कितनी उमंग और खुशी से पहना था। कपड़े के पुराना होते ही वह सारी बातों को भुलाकर उसे कचरे में डाल देता है। नया कपड़ा पुराना होता है, नष्ट हो जाता है। व्यक्ति उसे नष्ट होते देख रहा है पर अनित्यता की अनुभूति में नहीं जा रहा है। व्यक्ति स्वयं कितना बदलता है। आज जो साठ-पैंसठ वर्ष का प्रौढ व्यक्ति है, वह जब बीस-तीस वर्ष का युवा था तब दौड़कर चलता था। उसमें कितना बदलाव आ गया पर वह उसका साक्षात्कार नहीं कर रहा है। यदि जीवन के साथ घटित प्रत्येक घटना और संयोग का साक्षात्कार किया जाए तो हमारी चेतना का रूप ही दूसरा होगा। हम सत्य को जानते हुए भी उसे झुठलाते चले जाते हैं तो चेतना का रूप दूसरा होता है। यह जो अंतर है, हम उसका अनुभव नहीं करते। देखते-देखते तीन-चार पीढ़ियां व्यक्ति के सामने से चली जाती हैं। दुनियां एक ऐसा रंगमंच है, जिस पर प्रतिक्षण नए नए दृश्य मंचित हो रहे हैं। यदि हम उन्हें ध्यान से देखें, साक्षात्कार करें तो चेतना का रूपान्तरण हो जाए।

जरूरत है धैर्य की

अध्यात्म का महत्त्वपूर्ण नियम है अनित्य अनुप्रेक्षा। हम अनुप्रेक्षा करते करते चिन्तन की उस गहराई तक पहुंच जाएं, जहां चिन्तन रुक जाए और अचिन्तन का क्षण आ जाए, अनुभूति का स्तर आ जाए। उस अवस्था में आत्मा भावित हो जाती है, सम्मोहित हो जाती है। उस स्थिति तक पहुंचने के लिए आत्म-सम्मोहन बहुत जरूरी होता है। हम इस भ्रम में न रहें—पांच-सात दिन की साधना से हम भावित हो जाएंगे। इसके लिए धैर्य की जरूरत है। पचास कुए खोदने की जरूरत नहीं है। एक कुआ इतना गहरा खोदना होगा कि नीचे पाताल से पानी निकल आए, पानी का स्रोत मिल जाए। तात्पर्य यह है—हम एक बात पर तब तक धैर्य के साथ टिके रहें जब तक हम स्वयं को भावित न कर लें। भगवान् महावीर ने दीक्षा लेने से पूर्व छह महीने तक अपने आपको अनित्य अनुप्रेक्षा से भावित किया था। अनित्यता से स्वयं को भावित

करेंगे, अशरण की भावना अपने आप पकड़ में आ जाएगी। जरूरत है धैर्य की। जब तक हम अपने आपको भावना से भावित नहीं कर लेते तब तक परिवर्तन की बात संभव नहीं बन पाती ।

एकत्व अनुप्रेक्षा

अध्यात्म का एक नियम है-एकत्व अनुप्रेक्षा। 'मैं अकेला हूं' इस सचाई से जो व्यक्ति अपने आपको भावित कर लेता है, उसे कोई दुःखी नहीं बना सकता । जब तक हम परिवार, समाज और समूह को अपना मानकर जीते रहेंगे तब तक थोड़ा सा भी वियोग दुःख का कारण बन जाएगा। नैश्चयिक सचाई है-मैं अकेला हूं। संबंधों का जीवन व्यावहारिक सचाई है। जो इन दोनों सचाइयों को जान लेता है, वह सही अर्थ में आध्यात्मिक व्यक्ति है। ऐसा व्यक्ति किसी भी घटना के घटित होने पर अपने आपको संभाल कर रख सकता है। इस दुनिया में एक भी आदमी ऐसा नहीं है, जिसने सुख और दुःख का वियोग न झेला हो। जो व्यक्ति एकत्व अनुप्रेक्षा को साध लेता है, वह संयोग-वियोग के चक्र में रहता हुआ भी सुखी एवं शांतिपूर्ण जीवन जीना सीख लेता है।

अध्यात्म के दो महत्त्वपूर्ण नियम हैं—एकत्व अनुप्रेक्षा और अनित्य अनुप्रेक्षा। हम इनसे अपने आपको भावित करें। जैसे जैसे हम इनसे भावित होंगे, हमारी चेतना का रूपान्तरण होगा, दुःख की स्थिति में अदुःखी बने रहने का मार्ग उपलब्ध हो जाएगा।

अन्यत्व अनुप्रेक्षा

'एक ठण्डे पानी से भरी हुई बाल्टी । उसमें अग्नि से उत्तप्त लोहे का गोला डाला। पानी भी गरमा गया, बाल्टी भी गरमा गई । एक बाल्टी में अत्यधिक गर्म पानी। उसमें लोहे का ठण्डा गोला डाला, लोह का गोला गर्म हो गया।' इस प्रसंग में शरीर और मन-चेतना के संबंध का निदर्शन है। लोह का गोला गर्म होगा तो पानी गरमा जाएगा और पानी गर्म होगा तो लोह का गोला गरमा जाएगा। मन संतप्त होता है तो शरीर भी संतप्त हो जाता है और शरीर संतप्त होता है तो मन भी संतप्त हो जाता है। दोनों ओर ध्यान देना आवश्यक है।

अन्यत्व अनुप्रेक्षा

शरीर और मन—दोनों ही संतप्त न हों, दोनों के संबंधों में शांति एवं स्वस्थता आए तो विकास और सफलता की बात सोची जा सकती है। समस्या यह है—हम शरीर से इतने ज्यादा परिचित हो गए हैं कि उसे चेतना से अलग करना नहीं जानते। कष्ट सहते हैं पर शरीर को चेतना से अलग करना भी नहीं चाहते। अन्यत्व अनुप्रेक्षा का एक रूप है-'आत्मा भिन्न, शरीर भिन्न'—इस सचाई से भावित होना। हम इस सचाई को दोहराते भी हैं। पर यह स्थूल बात है। अन्यत्व अनुप्रेक्षा का प्रयोग बहुत सूक्ष्मता में चला जाता है। उसकी अलग-अलग अवस्थाओं से जुड़े हुए जो प्रयोग हैं, उनकी ओर हमारा ध्यान बहुत कम गया है।

प्रभाव शरीर का

सबसे पहले हम इस बार पर विमर्श करें—शरीर हमें कितना प्रभावित करता है। यदि हम शरीर के प्रभाव से बहुत प्रभावित रहेंगे तो भेद-विज्ञान का कोई अर्थ नहीं रहेगा। शरीर के तीन दोष—वात, पित्त और कफ बहुत

के साथ जोड़ दिया, उसके सामने दर्द ही दर्द है। जिस व्यक्ति ने अपनी चेतना को दूसरे स्थान पर लगा दिया, वह दर्द की अनुभूति से बहुत बच गया। उसे अपनी रोजी-रोटी की व्यवस्था करना है। वह सारे दिन दर्द की चर्चा ही कैसे करेगा? जो व्यक्ति अन्यत्व अनुप्रेक्षा का अभ्यासी है, उसने अनुप्रेक्षा के द्वारा दर्द वाले स्थान से अपना ध्यान हटा लिया और अपनी चेतना को दूसरे केन्द्र पर स्थापित कर दिया। जो प्रेरणा, चेतना और ऊर्जा दर्द वाले स्थान को मिल रही थी, वह मिलनी बंद हो गई। उस साधक को दर्द की अनुभूति कैसे होगी?

दुःख-मुक्ति का प्रयोग

अन्यत्व अनुप्रेक्षा दुःखों से छुटकारा पाने का बहुत बड़ा प्रयोग है। यह केवल भेद-विज्ञान की रटन ही नहीं है, किन्तु अनेक समस्याओं से मुक्ति पाने का प्रयोग है। काम, क्रोध, भय, लोभ आदि की तरंगें कहां से उठती हैं? इस सूक्ष्म विज्ञान को जानना बहुत बड़ी साधना है। अन्यत्व अनुप्रेक्षा का अर्थ है—इन सबके स्विचबोर्ड को जान लेना। आगमों में कहा गया है-भगवान् महावीर साधना काल में अनेक भद्र प्रतिमाओं की मुद्रा में खड़े रहते, नासाग्र पर दृष्टि टिकाए खड़े रहते। नासाग्र एक स्विचबोर्ड है। यहां से बटन चालू और बंद किया जा सकता है। हमारे शरीर में कई जगह ऐसे स्विचबोर्ड बने हुए हैं। इन्हें चैतन्य केन्द्र कहा जाता है।

भेद विज्ञान : संबंध-स्थल की खोज

एकत्व अनुप्रेक्षा में व्यक्ति अपने आपको अकेला कर लेता है किन्तु अन्यत्व अनुप्रेक्षा में शरीर के रहस्यों को जानना होता है। अपने आपको और शरीर को अलग करके यह ज्ञान किया जाता है—इनका संबंध कहां होता है। जहां गंगा, यमुना और सरस्वती मिलती है, वह प्रयाग कौन सा है? जहां भेद विज्ञान को समझना है वहां यह जानना होगा—कहां भेद है और कहां अभेद है? इस स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर का मिलन-बिन्दु कहां है?

अन्यत्व अनुप्रेक्षा : शरीर के रहस्यों की खोज

जिस व्यक्ति को अन्यत्व अनुप्रेक्षा करना है, उसे सबसे पहले शरीर को समझना होगा, आत्मा के सारे गुण-धर्मों को समझना होगा, उसके साथ शरीर के रहस्यों को भी समझना होगा। उसके बाद यह जानना होगा—आत्मा और शरीर का संबंध सूत्र क्या है और कहां है? शरीर और आत्मा के प्रभाव को समझना होगा। दोनों का एक दूसरे पर कितना प्रभाव है? प्रभावित करने वाले बिन्दु कौन-कौन से हैं? हमारे शरीर में कुछ विशिष्ट बिन्दु और रसायन हैं, जो हमें प्रभावित करते हैं। ऐसे कुछ विशिष्ट भाव हैं, जो हमें प्रभावित करते हैं। हमें इन सबको समझना होगा।

चक्रव्यूह को कैसे तोड़ें

एक ऐसा चक्र चलता है- एक भाव आया और एक अलग प्रकार का रसायन बन गया और फिर एक अलग प्रकार के भाव का निर्माण हो गया। उस चक्र को कैसे पकड़ें और कहां से तोड़ें? इसके लिए जरूरी है एक लंबी और अनवरत चलने वाली साधना । ये सब तथ्य सहज ही पकड़ में नहीं आ पाएंगे। किन्तु इतना अवश्य है—जो व्यक्ति अन्यत्व अनुप्रेक्षा की साधना में प्रवेश करेगा और तीन महीने तक उसका अच्छा अभ्यास कर लेगा, उसे अपनी शारीरिक स्थितियों से निपटने की कला आ जाएगी, कष्ट पर से चेतना को हटाने का अभ्यास हो जाएगा। इसी प्रकार मानसिक स्थितियों से निपटने के लिए भी अन्यत्व अनुप्रेक्षा का प्रयोग किया जा सकता है। जैसे ही किसी मानसिक भाव की तरंग उठे, तत्काल अन्यत्व अनुप्रेक्षा का प्रयोग करें। चेतना वहां से हटकर दूसरे स्थान पर चली जाएगी, वह मनोभाव शांत हो जाएगा। ऐसा होना संभव है लेकिन इसके लिए गहरी साधना चाहिए।

धर्म का प्रायोगिक सूत्र

हम धर्म को व्यावहारिक और प्रायोगिक बनाएं । धर्म कोरा कर्मकाण्ड ही नहीं है, वह जीवन का दर्शन है। जो धर्म हमारे वर्तमान जीवन की समस्याओं

का समाधान नहीं देता, वह बहुत काम का नहीं होता। वह धर्म हमारे लिए उपयोगी है, जो वर्तमान समस्याओं के समाधान का मार्ग सुझा सके। हम प्रायोगिक धर्म के द्वारा समस्याओं का समाधान करें। इस संदर्भ में अनुप्रेक्षाओं का बड़ा महत्त्व है। ध्यान की बहुत सारी पद्धतियां चलती हैं किंतु ऐसी पद्धतियां बहुत कम हैं, जिनमें प्रेक्षा के साथ अनुप्रेक्षा का प्रयोग चलता हो। जैन आचार्यों ने अनुप्रेक्षाओं का बहुत विकास किया। इनका उपयोग किया जाए तो आध्यात्मिक विकास में सहारा मिलेगा, व्यक्तित्व के रूपांतरण में भी बहुत योग मिलेगा। इसके साथ साथ शारीरिक, मानसिक और पारिवारिक समस्याओं के समाधान में भी बहुत बड़ा योगदान मिलेगा। हम अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन-मनन करें, उनके हृदय-बिन्दुओं को पकड़ने का प्रयत्न करें तो धर्म हमें थोपा हुआ या आरोपित नहीं लगेगा। हमें इस सचाई का अनुभव होगा--धर्म हमारा कल्याणकारी सहयोगी है, साथी है और ऐसा साथी है, जो अंतिम समय तक निरंतर हमारे साथ रहेगा।

अभय की अनुप्रेक्षा

अभय का सीधा सा अर्थ है भयमुक्त होना। प्रश्न है—भयमुक्त कैसे बने? भय कैसे छूटे? भय पकड़ में ही नहीं आ रहा है। भय की कहीं जड़ ही नहीं है। वह पकड़ में कैसे आएगा ? भय की जो जड़ है, उसे हम पकड़ ही नहीं पा रहे हैं। भय तो किसी के कंधे पर बैठकर गोली दाग रहा है। उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं है। एक डाकू कितना अभय होता है। एक सैनिक कितना अभय होता है। एक कापालिक और तांत्रिक कितना अभय होता है, जो श्मशान में भयंकर अंधकारमय रात्रि में साधना करता है। क्या अभय होना बहुत अच्छा है? डाकू मौत से नहीं डरता, वह मौत को सामने रखकर चलता है। एक सैनिक गोलियों के बीच अपनी जिदंगी बिताता है। एक ओर तोपें गोले उगल रही हैं, दूसरी ओर सैनिक मोर्चे पर डटा हुआ है। क्या हम उसे अभय न मानें? एक सामान्य आदमी निरन्तर डरता रहता है। थोड़ी सी बिजली चमकती है, तेज आंधी और बारिश आती है, व्यक्ति डर जाता है। कहीं कुछ कोलाहल होता है तो भी डर जाता है।

हजार प्रकार हैं डर के

भय और अभय का प्रश्न बहुत उलझा हुआ है। हम किसे भय मानें और किसे अभय मानें? यह निर्णय कर पाना बहुत कठिन है। भय का एक ही प्रकार नहीं है। उसके हजारों प्रकार हैं। हम हजारों बातों से डरते हैं। बुढ़ापे का डर है, बीमारी का डर है, पूजा, प्रतिष्ठा और सम्मान का डर है। चोर का डर बना रहता है। भूकंप और बाढ का डर भी सताता है। किसी व्यक्ति का डर लगता है, किसी वस्तु से डर लगता है। शायद एक भी वस्तु ऐसी नहीं है, जिससे डर न लगता हो। अभय कहीं है ही नहीं। जो डाकू मौत

से नहीं डरता, वह अपनी पत्नी से डरता है। ऐसी अनेक घटनाएं जीवन के परिपार्श्व में चलती रहती हैं।

छिपा हुआ है भय

एक लड़की ने अपने पापा से कहा – आप वनविभाग में काम करते हैं। क्या आपको जंगल में डर नहीं लगता?

उसके पिता ने जवाब दिया - नहीं!

क्या जंगली जानवर से भी डर नहीं लगता ?

नहीं !

क्या शेर से भी डर नहीं लगता ?

नहीं !

लड़की ने कहा - पिताजी ! मैं समझ गई । आप और किसी से नहीं डरते, केवल मम्मी से डरते हैं।

कौन आदमी किससे डरता है, यह कहा नहीं जा सकता। मन के कोने में कहीं न कहीं भय छिपा हुआ बैठा है। उसकी अभिव्यक्ति व्यक्ति या वस्तु-सापेक्ष हो सकती है।

भय कषाय नहीं है

प्रश्न है–भय क्या है? कर्मशास्त्रीय भाषा में कहा जा सकता है–भय कोई कषाय नहीं है। कषाय चार हैं–क्रोध, मान, माया और लोभ। भय नोकषाय है। वह कषाय का उपजीवी है। कषाय के कंधे पर बैठकर अपना जीवन चला रहा है। व्यक्ति क्रोध करता है, किसी को गालियां दे देता है, किसी पर हाथ उठा लेता है। जब क्रोध का नशा उतरता है, व्यक्ति सोचता है–अब क्या होगा? क्रोध का परिणाम क्या होगा? उसके मन में एक भय पैदा हो जाता है। व्यक्ति में अहंकार जागा। उसने अहं के आवेग में किसी को नीचा दिखा दिया। आवेश शांत होता है, व्यक्ति सोचता है–पता नहीं, वह क्या करेगा?

कैसा बदला लेगा? एक डर पैदा हो जाता है। माया का जाल बिछाने वाला तो डरता ही रहता है। व्यक्ति सोचता है—मैंने जो माया का जाल बिछाया है, जो कपट जाल रचा है, वह कहीं प्रकट न हो जाए। यदि वह प्रकट हो गया तो अनर्थ हो जाएगा। दो नंबर के खाते रखने वाले इसीलिए ज्यादा डरते हैं। उनके मन में यह भय बना रहता है—कोई आयकर अधिकारी चेकिंग करने न आ जाए। फर्म पर छापा न पड़ जाए। एक शब्द है माया-मृषा। माया के साथ झूठ जुड़ा हुआ रहता है। उसमें सत्य के प्रकट होने का भय बना रहता है। लोभ भय का मूल जनक है। एक शब्द में कहा जा सकता है—जहां मूर्च्छा है वहां भय है। यह व्याप्ति बनाई जा सकती है—जितनी जितनी मूर्च्छा उतना उतना भय। जितनी जितनी अमूर्च्छा उतना उतना अभय।

भय का पहला स्थान

भय का सबसे पहला स्थान है शरीर की मूर्च्छा । शरीर पर जितना ममत्व है उतना ही भय है। व्यक्ति शरीर को बनाए रखना चाहता है और यहीं से भय का जन्म होता है। अध्यात्म के आचार्यों ने इसीलिए इस बात पर सबसे ज्यादा बल दिया—आध्यात्मिक जीवन जीना चाहते हो तो देहाध्यास को छोड़ो, शरीर की मूर्च्छा को छोड़ो, कायोत्सर्ग करो। कायोत्सर्ग का एक अर्थ है—शिथिलीकरण, किन्तु यह मूल अर्थ नहीं है। कायोत्सर्ग का मूल अर्थ है—ममत्व का त्याग, ममत्व का विसर्जन। महावीर की साधना-पद्धति के दो महत्त्वपूर्ण शब्द हैं—वोसट्ठचत्तदेहे—शरीर का विसर्जन करो, शरीर का त्याग करो—उसकी सार संभाल मत करो, शरीर को सजाओ मत, उस पर ममत्व मत करो। शरीर की प्रवृत्तियों का संयम करो।

अभय : मूल आधार

ममत्व का विसर्जन और त्याग—यह अभय का मूल आधार है। यह अध्यात्म का पहला बिन्दु है और अभय का भी पहला बिन्दु है। जो व्यक्ति देहाध्यास की भावना से मुक्त हो गया, वह बिल्कुल अभय हो गया। उससे ज्यादा अभय और कोई नहीं हो सकता । यदि अभय को खोजना है, अभय

की साधना करना है तो भय की बात न सोचें, भय को मिटाने की बात न सोचें। अभय के लिए अलग से प्रयत्न करने की जरूरत नहीं है। शरीर की मूर्च्छा को मिटाएं, अभय घटित होता चला जाएगा। शरीर की मूर्च्छा को मिटाने का उपाय है आत्मानुभूति में रहना। व्यक्ति जितना आत्मानुभूति में रहता है, आत्मा की सन्निधि में रहता है, उतना ही अभय सधता चला जाता है। हम अधिक से अधिक आत्मा में रहें, चैतन्य में रहें, हमें कोई भय नहीं होगा। 'सव्वओ अप्पमत्तस्स भयं' जो अप्रमत्त है, उसे कहीं से भी कोई भय नहीं है। न दिन में भय है, न रात में भय है। न अकेले में भय है, न भीड़ में भय है।

अभय का निदर्शन

महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर पत्र लिख रहे थे। अचानक एक व्यक्ति ने उनके कमरे में प्रवेश किया। वह हाथ में छुरा लिए हुए था। उसने महाकवि से कहा—मैं आपको मारना चाहता हूं। महाकवि शान्तभाव से पत्र लिखने में व्यस्त थे। आगंतुक की यह बात सुनकर भी वे उसी प्रकार शान्त बने रहे। महाकवि ने कहा—तुम मुझे मारने के लिए आए हो?

हां! मैं मारने के लिए आया हूं।

कृपा कर तुम कुछ देर के लिए ठहर जाओ।

क्यों ठहर जाऊं?

क्योंकि मेरा काम अधूरा है। मुझे किसी व्यक्ति के पत्र का उत्तर देना है। मैं पत्र लिख रहा हूं। जैसे ही वह पूरा हो जाएगा तुम अपना काम कर लेना।

महाकवि की बात सुनकर आगंतुक विस्मित हो गया। उसने कहा—कोई बात नहीं । आप पत्र लिखिए । मैं तब तक आपके पीछे खड़ा रहूंगा।

रवीन्द्रनाथ टैगोर पत्र लिखने में तल्लीन हो गए । वे उसी शान्तभाव से पत्र लिखते जा रहे थे। ऐसा लग रहा था, जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो। वह

व्यक्ति सोच रहा था—कैसा विचित्र आदमी है। सामने मौत खड़ी है और यह अत्यंत निश्चिन्तता से अपना काम कर रहा है। क्या इसे मौत का भी डर नहीं है?

महाकवि ने पत्र पूरा किया। उस व्यक्ति को संबोधित करते हुए कहा—महाशय! मैंने अपना काम कर लिया है। अब आप अपना काम कर सकते हैं। वह व्यक्ति महाकवि के चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा—मैं आपको नहीं मार सकता। मैंने बहुत बड़ी मूर्खता की है। मैं यह सोच भी नहीं सकता था—ऐसा भी कोई व्यक्ति हो सकता है, जो मौत को सामने देखकर अविचल और अभय बना रहे। आपकी शान्त आभा और अभय किसी भी क्रूर व्यक्ति के दिल को बदल सकती है।

डर एक ही है

जो व्यक्ति ऐसा होता है, उसे मारने की ताकत किसी में भी नहीं है। जो मरना जानता है, उसे कोई नहीं मार सकता। लोग उसे ही मारने की बात सोचते हैं, जो मरना नहीं जानता, मरना नहीं चाहता, मौत के नाम से ही डरता है। इस भाषा में भी कहा जा सकता है—जो व्यक्ति जीना जानता है, उसे कोई नहीं मार सकता है। जिसके मन में भय नहीं है, जो अभय है, वही व्यक्ति अच्छा जीवन जीना जानता है, वही व्यक्ति मृत्यु की श्रेष्ठ कला को जानता है।

अभय का मूल है मूर्च्छा का अभाव। जिस व्यक्ति के मन में अपने शरीर के प्रति ममत्व नहीं है, उस व्यक्ति को किसी का डर नहीं होगा। वह न चूहे से डरेगा, न बिल्ली से डरेगा, न बंदर से डरेगा। वास्तव में डर एक ही है और वह है मौत का डर। अन्य जितने भी डर हैं, वे सब इसकी प्रतिच्छाया या प्रतिबिम्ब हैं। हम प्रतिबिम्ब को पकड़ना चाहते हैं किन्तु बिम्ब को नहीं पकड़ते। जब तक बिम्ब को नहीं पकड़ा जाता तब तक प्रतिबिम्ब को नहीं मिटाया जा सकता। बच्चा जल में सूरज या चांद के प्रतिबिम्ब को पकड़ना चाहता है पर वह कभी सफल नहीं होता। चिड़िया अपने ही प्रतिबिम्ब से

लड़कर लहुलुहान हो जाती है। शेर भी अपने ही प्रतिबिम्ब को देखकर कुए में कूद पड़ता है। ये सारी लड़ाइयां प्रतिबिम्बों एवं प्रतिच्छायाओं की लड़ाइयां हैं । बिम्ब तक पहुंचा ही नहीं जा रहा है। अभय का मूल है बिम्ब तक पहुंच जाना ।

अपेक्षित है परिकर्म

एक प्रश्न उभरता है—क्या शरीर का परिकर्म नहीं करना चाहिए? हम व्यवहार की दुनियां में जीते हैं, शरीर का उपयोग करते हैं, उससे काम लेते हैं इसलिए यह संभव नहीं है कि शरीर का परिकर्म बिल्कुल छूट जाए। शरीर को चलाना है तो उसकी सार-संभाल भी करना होगा। प्रातःकाल नाश्ता करते हैं, मध्यान्ह और सायं भोजन करते हैं। वह शरीर की सुरक्षा के लिए है, उसका उपयोग करने के लिए है। दिन में अनेक बार पानी पीते हैं। उसका हेतु भी यही है। शरीर पर रेत आकर चिपट जाती है तो उसे भी साफ करते हैं। शरीर बीमार होता है तो दवा भी ले लेते हैं। यह सारा शरीर का परिकर्म है। इस स्थिति में सर्वथा अभय की कल्पना नहीं की जा सकती ।

बचाता है भय

अनेक बार एक प्रश्न आता है—क्या डरना अच्छा नहीं है? भय अच्छा नहीं है, यह नहीं कहा जा सकता। हमें दो कोणों से सोचना होगा। लक्ष्य है अभय होना किन्तु भय भी किसी अंश में हमारा साथी बना रहेगा। इतना अवश्य हो सकता है कि हम भय को प्रशस्त बना लें, वह अप्रशस्त न रहे । भय बचाने वाला या नियामक बने । आयुर्वेद का यह प्रसिद्ध अभिमत है—यदि किसी व्यक्ति को उन्माद का रोग है, वह पागल बन जाए तो उसका सबसे पहला उपाय है भय। यदि पागल व्यक्ति को डराने वाला मिल जाए तो वह विक्षिप्त कम होगा। पागल आदमी के मन में जिस व्यक्ति का डर समा जाता है, उस व्यक्ति के सामने आते ही वह बिल्कुल सयाना बन जाता है। भय एक दवा है, औषधि है, उपचार है । भय व्यक्ति को निरंतर बचाता रहता है। व्यक्ति बुराई करते समय यह सोचता है—यदि यह बात प्रकट हो गई तो क्या

होगा? अमुक व्यक्ति क्या कहेगा? समाज क्या कहेगा? यह लोक-लाज या समाज का भय व्यक्ति को बचाता है। जिस व्यक्ति में पूजा, प्रतिष्ठा और सम्मान की भावना नहीं होती, वह बहुत खतरनाक बन जाता है। जिस व्यक्ति के मन में यह भावना होती है—मेरी प्रतिष्ठा पर, मेरे कुल और परिवार की प्रतिष्ठा पर, मेरे मित्रों की प्रतिष्ठा पर कहीं धब्बा न लग जाए, वह व्यक्ति अनेक बुराइयों से बच जाता है। यह प्रतिष्ठा का भय व्यक्ति को बहुत बचाता है। एक मुनि भी यह सोचता है—व्यवहार की दृष्टि से कहीं ऐसा कोई काम न हो जाए, जिससे धर्मसंघ पर कोई आंच आए, जनापवाद की स्थिति बन जाए। यह भय एक मुनि को उन्मार्ग पर नहीं जाने देता।

उपयोगिता भय की

व्यवहार की दुनिया में भय की उपयोगिता को नकारा नहीं जा सकता। व्यवहार के जगत् में रचनात्मक भय व्यक्ति को बचाता है, सुरक्षा करता है। व्यक्ति स्वयं अपूर्ण है। उसे अपनी सीमा का बोध रहना चाहिए। पूर्णता की बात पूर्णता की भूमिका में ही सोची जा सकती है। अपूर्णता की भूमिका में पूर्णता की बात न सोचें। जैसे जैसे अपूर्णता की भूमिका का अतिक्रमण करें वैसे वैसे पूर्णता की दिशा में चलें। हम अभय का सम्यक् परिप्रेक्ष्य में अंकन करें। व्यक्ति कार्य तो गलत करता चला जाए और अभय की बात करता चला जाए, यह एक विडंबना है। किसी व्यक्ति ने कहा - अरे भाई! तुम गलत काम कर रहे हो, यह अच्छा नही है। तुम्हें उपालंभ आएगा, दण्ड मिलेगा। वह व्यक्ति इस बात को अनसुना करते हुए कह देता है—मैं किसी से नहीं डरता। तुम कौन होते हो मुझे कहने वाले। एक ओर गलती करता चला जाए दूसरी ओर यह कहे—मैं किसी से नहीं डरता । यह दोहरी मूर्खता है। वस्तुतः अभय वह है, जो गलती न करे। गलती न करने वाला व्यक्ति ही यह कह सकता है—मैं किसी से नहीं डरता। एक ओर चोरी-डकैती करे, लूट-खसोट करे, दूसरों को सताए, दूसरी ओर अभय होने का दावा करे, यह सीनाजोरी है, दोहरी मूर्खता है।

यथार्थदृष्टि

हम भय और अभय को यथार्थदृष्टि से देखें। अभय वही हो सकता है, जिसने अपने आपको साध लिया है। कहीं कोई गलती नहीं रही, कमजोरी नहीं रही । सर्वथा अप्रमत्तता की स्थिति में ही अभय घटित हो सकता है। एक ओर गलतियां करते चले जाना, दूसरी ओर अभय होने का दावा करना, अपने आपको धोखा देना है । हम इस धोखे में न जाएं, यथार्थ को स्वीकार करें। जैन धर्म यथार्थवादी दर्शन है। जैन धर्म में विश्वास रखने वाला व्यक्ति यह स्वीकार करता है—जब तक मोहनीय कर्म विद्यमान है, मोहनीय कर्म की सारी प्रकृतियां विद्यमान हैं तब तक भय का अस्तित्व रहेगा। क्रोध, मान, माया और लोभ रहे, घृणा, हास्य, रति-अरति, वेद, कामवासना—ये सब रहें और भय न हो, यह संभव नहीं है। जिस व्यक्ति को अभय होना है, उसे सबसे पहले कषाय को कम करने की साधना करनी चाहिए।

अभय और कषाय

अभय की अनुप्रेक्षा करने वाला व्यक्ति इस शब्दावली का बार-बार अनुचिंतन करता है—'अभय का भाव पुष्ट हो रहा है, भय का भाव क्षीण हो रहा है।' इसकी पृष्ठभूमि में ये सारी ध्वनियां प्रतिध्वनित होनी चाहिए—'क्रोध का भाव क्षीण हो रहा है, क्षमा का भाव पुष्ट हो रहा है। लोभ का भाव क्षीण हो रहा है, संतोष का भाव पुष्ट हो रहा है। मान और माया का भाव क्षीण हो रहा है, ऋजुता और मृदुता का भाव पुष्ट हो रहा है।' इस स्थिति में ही अभय की अनुप्रेक्षा सार्थक हो सकती है। यदि अभय की भावना करें और इन सबकी उपेक्षा करें तो अभय का विकास कैसे संभव होगा? एक ओर क्रोध पुष्ट होता चला जाए, मान प्रबल बनता चला जाए, माया गहराती चली जाए, लोभ अपना जाल बिछाता चला जाए, दूसरी ओर हम अभय की भावना करते चले जाएं तो यह केवल तोता रटन होगी। इसकी कोई सार्थक निष्पत्ति नहीं आ पाएगी। हम इस भ्रम में न रहें—कायोत्सर्ग की मुद्रा में अभय की अनुप्रेक्षा

करने मात्र से अभय घटित हो जाएगा। यह अधूरी बात है। पूरी बात तब होगी जब हम एक ओर अभय की भावना को पुष्ट बनाएंगे, दूसरी ओर अमूर्च्छा का भाव प्रबल होगा। हम मूर्च्छा को घटाने की साधना करें, हमारे जीवन में अभय के अवतरण की भूमिका बन जाएगी।

सहिष्णुता की अनुप्रेक्षा

एक शब्द है सहिष्णुता । केवल चार व्यंजन किंतु व्यंजन की लब्धि बहुत विशाल । यह शब्द अतिपरिचित बन गया है इसलिए हम कभी यह जिज्ञासा ही नहीं करते—यह सहिष्णुता है क्या? जो परिचित होता है, वह समस्या पैदा कर देता है । अपरिचित रहे तो जिज्ञासा बनी रहती है। परिचित होने पर उस विषय में सोचना ही बंद हो जाता है। कुछ ऐसा ही हुआ है सहिष्णुता के साथ। इस एक शब्द के पीछे इतना विराट् दर्शन है कि उसकी अभिव्यक्ति से एक नए ग्रंथ का सृजन हो जाए।

जीवन का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है सहिष्णुता। एक व्यक्ति भूख को सहन नहीं कर सकता। कहा जाएगा—इसकी सहनशक्ति कमजोर है। एक व्यक्ति सर्दी-गर्मी को सहन नहीं कर सकता। उसे भी कमजोर माना जाएगा। कमजोर होना और असहिष्णु होना—एक ही बात है। एक मुनि के लिए जरूरी है कि वह भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी को सहन करे। एक व्यक्ति इनको सहन कर लेता है, एक व्यक्ति इनको सहन नहीं कर पाता। मन में प्रश्न उठा—इसका कारण क्या है? एक व्यक्ति सहिष्णु क्यों है? दूसरा व्यक्ति असहिष्णु क्यों है? सहिष्णुता और असहिष्णुता का हेतु क्या है?

असहिष्णुता का हेतु

आयुर्वेद में इसके हेतु बतलाए गए हैं। आदमी कई प्रकार के होते हैं। कुछ व्यक्ति त्वक्सार वाले होते हैं। कुछ व्यक्ति अस्थिसार वाले होते हैं। कुछ व्यक्ति मेदःसार वाले होते हैं और कुछ व्यक्ति मांससार वाले होते हैं। यह सारा वर्गीकरण सारधातु के आधार पर किया गया है। जो व्यक्ति मांससार होता है, उसमें क्षमा ज्यादा होती है, सहन करने की शक्ति ज्यादा होती है।

जिसमें मांस कम होता है, उसमें सहन करने की शक्ति भी कम होती है। जो मेदसार होता है, उसमें सर्दी-गर्मी एवं भूख-प्यास को सहन करने की शक्ति ज्यादा होती है। जिसमें मेद–चर्बी कम होती है, उसमें इनको सहने की शक्ति बहुत कम होती है। यह एक समाधान है–जिसमें मांस कम है, मेद–चर्बी कम है, वह कमजोर और असहिष्णु होता है। असहिष्णुता का एक कारण है–मांस और चर्बी का कम होना। इस स्थिति में हम क्या सहन करें? किसको सहन करें? जब तक यह स्पष्ट नहीं होगा तब तक सहिष्णुता की बात करने की कितनी सार्थकता होगी ? कुछ बातें नियति से जुड़ी हुई हैं । मांस या चर्बी का मिलना नियति के हाथ में है। मांस और चर्बी न मिले तो व्यक्ति क्या करे? वह सहिष्णु कैसे बने? व्यक्ति कितना ही संकल्प करे, कायोत्सर्ग में सुझाव दे, अनुप्रेक्षा का प्रयोग करे किन्तु यदि मांस और चर्बी नहीं है तो वह इन सब द्वन्द्वों को सहन कैसे करेगा? यह एक जटिल प्रश्न है।

असहिष्णुता : एक पहलू

एक आदमी उपवास करता है। क्या वह उपवास में अनाहार रहता है? प्रकृति कभी अनाहार नहीं रहती। व्यक्ति बाहर से नहीं खाएगा तो वह बाहर से अनाहार हो गया किंतु अग्नि अपना काम करेगी। अग्नि का काम है–खाना और वह खाएगी। बाहर से मिलेगा तो उसे काम में लेगी। बाहर से नहीं मिलेगा तो मांस और मेद को काम में लेगी। मांस और मेद पर्याप्त है तो थकान कम होगी, सहन करने की शक्ति बनी रहेगी। यदि मांस और मेद कम है तो व्यक्ति थक जाएगा, वह भूख और प्यास से आकुल-व्याकुल हो उठेगा। उसकी सहिष्णुता की शक्ति कमजोर हो जाएगी। सहिष्णुता का संबंध है शरीर की रचना के साथ, शरीर के तत्त्वों और धातुओं के साथ। यह प्रकृति या नियति के हाथ में है।

असहिष्णुता : दूसरा पहलू

इस प्रश्न का दूसरा पहलू भी है। ऐसे लोग भी होते हैं, जिनमें मांस की प्रचुरता है, मेद की प्रचुरता है किन्तु उन्हें कुछ भी बात कह दी जाए तो

वे सहन नहीं कर पाएंगे, गुस्से से तमतमा उठेंगे । लड़ाई-झगड़े की स्थिति बन जाएगी। ऐसे लोग सदा ईंट का जवाब पत्थर से देने के लिए तैयार रहते हैं। माओ ने कहा था--'सत्ता बंदूक की नोक पर चलती है।' चीन में लोकतंत्र के लिए छात्रों ने आंदोलन किया। आंदोलन बहुत अवांछनीय भी नहीं था। छात्रों की मांगें थीं--भ्रष्टाचार को कम किया जाए। सरकारी तंत्र से जुड़े लोग धन्ना सेठ बने हुए हैं। उन पर अकुंश लगाया जाए। इस आवाज के समर्थन में निकले छात्रों को प्रतिक्रांतिकारी घोषित कर दिया गया। आंदालेन को बल-प्रयोग से कुचल डाला गया। सैकड़ों छात्रों को मौत के घाट उतार दिया गया। यह सब क्यों घटित हुआ? इतना निर्मम और क्रूर कदम क्यों उठा? इसका कारण है असहिष्णुता। चीनी शासक छात्रों की बातों को सहन नहीं कर सके। अपनी मान्यता या धारणा के प्रतिकूल, अपनी इच्छा और रुचि के विरुद्ध कोई बात आती है तो व्यक्ति उसे सहन नहीं कर पाता। यह नहीं माना जा सकता--चीन के जितने शासक हैं, उनमें चर्बी कम है या मांस कम है। चर्बी और मांस का पर्याप्त संचयन होते हुए भी वे असहिष्णु क्यों बने?

संबंध मन और भाव के साथ

वस्तुतः सहिष्णुता का संबंध केवल शरीर से नहीं है। सहिष्णुता का संबंध भावना से अधिक है। जहां अपने आवेगों पर नियंत्रण नहीं होता वहां आदमी दूसरों को सहन नहीं कर सकता। जहां कषाय प्रबल होता है, आवेग और आवेश तीव्र होते हैं, वहां सहिष्णुता की कल्पना नहीं की जा सकती।

सहिष्णुता का संबंध मन के साथ भी है। यदि मन में झेलने की क्षमता नहीं होती है, नियामिका शक्ति नहीं होती है तो व्यक्ति सहिष्णु नहीं रह सकता। थोड़ी-सी प्रतिकूल स्थिति आती है, व्यक्ति क्षुब्ध और विचलित हो जाता है। वह इतना तनाव से भर जाता है कि एक क्षण के लिए भी सहन करने में समर्थ नहीं होता।

एक सूफी संत बहुत शक्तिशाली था। उसके पास विशाल सेना थी। प्राचीनकाल में सूफी संत शासक भी हुए हैं और संत भी हुए हैं। एक दिन

सूफी संत अपने विशाल दल के साथ यात्रा कर रहा था। उसें सायंकाल एक जंगल में रुकना पड़ा। रात्रिकालीन प्रवास की सारी व्यवस्थाएं जुटाई गई। एक वृद्ध आदमी उधर से गुजरा। वह विश्रान्त था। उसने संत से प्रार्थना की—मैं बहुत थक गया हूं। रात में कहां जाऊंगा? यदि आप आज्ञा दें तो मैं रात्रि-विश्राम यहीं करना चाहता हूं। संत ने उसे ठहरने की अनुमति दे दी। नमाज का समय हुआ । सब लोग नमाज अदा करने लगे । वह वृद्ध नमाज नहीं पढ़ता था। उसने नमाज करने वालों को सुनाते हुए कहा—खुदा कहां है? किसने देखा है खुदा को? सब धोखा है, पाखण्ड है। संत यह सुनकर स्तब्ध रह गया। उसने कहा—भले आदमी ! ऐसी बातें बंद करो। खुदा को गालियां मत दो। वृद्ध आदमी ने संत के कथन को अनसुना कर दिया। संत तिलमिला उठा। उसने अपने कर्मकारों को आदेश दिया—इसको यहां से बाहर निकाल दो।

वृद्ध आदमी ने अनुनय के स्वर में कहा—इस भयंकर अंधियारी रात में मैं कहां जाऊंगा। संत ने कहा—ऐसे काफिर और नास्तिक आदमी को मैं यहां नहीं रहने दूंगा। चले जाओ यहां से । संत के कर्मकरों ने उसे धक्का देकर बाहर निकाल दिया।

कहा जाता है—उसी समय खुदा प्रकट हुआ, उसने कहा -- क्या हो रहा है? झगड़ा क्या है?

संत ने कहा, ऐसा कोई बदमाश आदमी आ गया, जो खुदा को गालियां दे रहा था। बहुत ही नास्तिक और काफिर आदमी था। वह खुदा को कुछ समझता ही नहीं था। सत्तर-अस्सी वर्ष का बूढ़ा होकर भी वह खुदा का अपमान कर रहा था। मैं खुदा के इस अपमान को कैसे सहन करता? मैंने उसे धक्का देकर बाहर निकलवा दिया।

खुदा ने कहा – तुमने यह अच्छा नहीं किया। वह बेचारा रात को कहां जाएगा? दुःख पाएगा, भटक जाएगा। इतने घोर अंधकार में, खुले आकाश में वह कहां रहेगा? तुम्हारे पास तम्बू हैं, सब कुछ व्यवस्थाएं हैं। तुमने उसे क्यों निकाला?

संत ने कहा, मैं ऐसे आदमी को सहन नहीं कर सकता. ।

खुदा बोले, जिस आदमी को मैंने सत्तर वर्ष तक सहा है। क्या तुम उसे एक रात भी सहन नहीं कर सकते ?

यह कितनी मर्म की बात है । सहन कोई खुदा ही कर सकता है, परमात्मा या महान् आत्मा ही कर सकता है। साधारण आदमी अपने भिन्न विचार वाले को सहन नहीं कर सकता।

सहिष्णुता में बाधाएं

बड़ी समस्या है मन की, भावना की और उसके साथ साथ शरीर की। हम सहिष्णुता का अर्थ क्या करें? किसको सहन करें? सहन करना अच्छा है किंतु सहन करने से कितनी स्थितियां जुड़ी हुई हैं। थोड़ी-सी रासायनिक प्रक्रिया गड़बड़ा गई, आदमी असहिष्णु बन जाएगा। हमारी एक जैविक-रासायनिक श्रृंखला है, उसमें थोड़ा-सा अवरोध आता है तो व्यक्ति का स्वभाव बदल जाता है। अच्छे स्वभाव वाला व्यक्ति असहिष्णु और चिड़चिड़ा हो जाता है। उसकी सहन करने की शक्ति कमजोर हो जाती है। जो लोग बहुत तेज दवाइयां खाते रहते हैं, विशेषतः एंटीबायोटिक्स का प्रयोग करते ही रहते हैं, उनके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आने लग जाता है। अवस्था का भी असर होता है। एक अवस्था आती है तब मनुष्य का नाड़ीतंत्र शिथिल हो जाता है। इस स्थिति में व्यक्ति की सहिष्णुता समाप्त हो जाती है, सामान्य बात को भी आदमी सहन नहीं कर सकता ।

सहिष्णुता का मूल्य

सहिष्णुता के अनेक बाधक तत्त्व हैं। शारीरिक तत्त्व, मानसिक प्रक्रिया—चिन्तन की पद्धति और भावात्मक संवेग—ये सब असहिष्णुता के कारण बन रहे हैं । इस स्थिति में सहिष्णुता का प्रश्न एक जटिल पहेली जैसा लगता है। हमें समग्र दृष्टिकोण से सोचना होगा। धर्मशास्त्र किस प्रकार की सहिष्णुता चाहता है? स्वास्थ्यशास्त्र—आयुर्वेद और आयुर्विज्ञान—में सहिष्णुता का क्या रूप है? यह स्पष्ट है—सबने सहिष्णुता को मूल्य दिया है। स्वास्थ्यशास्त्र की दृष्टि

रही—यदि सहिष्णुता का भाव अच्छा नहीं है तो स्वास्थ्य गड़बड़ा जाएगा। असहिष्णुता का बहुत असर होता है स्वास्थ्य पर। शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से सहन करना बहुत जरूरी है। धार्मिक दृष्टि से भावात्मक सहिष्णुता बहुत मूल्यवान् है। एक धार्मिक व्यक्ति को भावात्मक दृष्टि से सहिष्णु होना चाहिए, उसके साथ मानसिक सहिष्णुता का होना भी आवश्यक है। जहां समूह का जीवन है, वहां असहिष्णुता बहुत बड़ी समस्या बन जाती है। साथ में रहना है, साथ में जीना है और एक दूसरे को सहन न कर सकें तो जीवन समस्या से आक्रांत हो जाता है। यह निश्चित बात है कि सब व्यक्ति अपूर्ण हैं, पूर्णता का होना बहुत मुश्किल है। कभी किसी व्यक्ति की ओर से अविनय या असहिष्णुता का व्यवहार हो सकता है तो कभी कोई व्यक्ति अविनय कर सकता है। कभी एक व्यक्ति अप्रिय व्यवहार करता है तो कभी दूसरा व्यक्ति अप्रिय व्यवहार कर देता है। इस स्थिति में व्यक्ति एक दूसरे को सहन करना न जाने, एक दूसरे की कमजोरी को सहन न कर सके तो शांतिपूर्ण सहवास की समस्या गंभीर बन जाती है।

प्रश्न अन्याय को सहने का

इस संदर्भ में एक प्रश्न अनेक बार आता है—क्या अन्याय को सहन करना भी अच्छा है? क्या हम अन्याय को भी सहन करें? यह कोई नहीं कह सकता—अन्याय को सहन करो। हम अन्याय को सहन न करें किन्तु कम से कम न्याय को तो सहन करें। यह भी एक न्याय है—साथ में रहना और जीना है, सापेक्ष जीवन जीना है तो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को सहारा दे। ऐसा तो नहीं होना चाहिए कि जहां सहारे की जरूरत हो वहां गिराने की बात आ जाए।

मां ने बेटे को सीख दी—तुम हमेशा अच्छा काम करना, दूसरों की भलाई करना, अच्छाई में विश्वास करना। बेटे ने मां की सीख को स्वीकार कर लिया। स्कूल में पढ़ने के लिए गया। कक्षा में अध्यापक कुर्सी पर बैठने लगा। उसने कुर्सी पीछे खींच ली। अध्यापक धड़ाम से नीचे गिर पड़ा। अध्यापक ने विद्यार्थी की बहुत पिटाई की। विद्यार्थी रोते रोते घर पहुंचा। उसने मां से कहा—मां! तुम कहती थी—अच्छा काम करना। अच्छा काम करने वाले की यह हालत

होती है। देखो, तुम मेरी चमड़ी को देखो। कैसी लहुलुहान हो रही है।

मां ने पूछा - बेटा ! क्या हुआ?

तुम्हारी सीख मानी, उसका यह परिणाम है।

आखिर बात क्या हुई बेटे!

मां ! कक्षा में अध्यापक साहब आए। कुर्सी पर स्याही ढुली हुई थी। वे बिना देखे ही कुर्सी पर बैठने लगे । मैंने सोचा—कुर्सी पर स्याही गिरी हुई है। मास्टर साहब इस पर बैठेंगे तो इनके सारे कपड़े खराब हो जाएंगे। मैंने उनके कपड़ों को गंदा होने से बचाने के लिए कुर्सी को पीछे खिसका दिया। मैंने इतना अच्छा काम किया और उसका मुझे यह परिणाम भुगतना पड़ा।

परिष्कार का तरीका

जब किसी बात का अर्थ ठीक नहीं समझा जाता है तब यह स्थिति बनती है। अन्याय को सहन नहीं करना चाहिए । यह वाक्य बहुत बार दोहराया जाता है पर कम से कम यह तो समझें कि अन्याय क्या है? इसे समझे बिना हम एक-दूसरे को सहन नहीं करते हैं तो एक नई समस्या पैदा कर देते हैं। सहिष्णुता का सबसे बड़ा प्रतिफल या आचरण होगा—अपने साथियों को सहन करना। अन्याय को नहीं सहना है, बुराइयों और गलतियों को नहीं सहना है किन्तु उनका परिष्कार करना है। परिष्कार का तरीका दूसरा होता है। कोई असहिष्णु आदमी कभी प्रतिकार या परिष्कार नहीं कर सकता । असहिष्णुता के द्वारा किया गया प्रतिकार किसी के हृदय को छूता भी नहीं है। वही बात हृदय को छूती है, जो सहिष्णुता के साथ आती है। बहुत महत्त्वपूर्ण तत्त्व है सहन करना और सहिष्णुता के साथ अपने भावों का संप्रेषण करना ।

सहिष्णुता : शक्ति का उदात्तीकरण

धर्म के दस प्रकार बतलाए गए हैं, उसका पहला प्रकार है क्षमा। मैत्री, क्षमा और सहिष्णुता—तीनों जुड़े हुए हैं। इनको कभी अलग नहीं किया जा सकता। यदि हम मैत्री का विकास करना चाहते हैं, 'मेत्ति मे सव्व भूएसु'—सब जीवों के साथ मैत्री करना चाहते हैं तो पहले यह सोचें—हमारे भीतर क्षमा है

या नहीं? यदि हम क्षमा करना चाहते हैं तो यह देखें—सहन करने की शक्ति है या नहीं? एक मुनि के लिए कहा गया—मुनि पृथ्वी के समान सहनशील बने। सहन करना और समर्थ होना—ये तात्पर्य में एक हो जाते हैं। जो समर्थ है, शक्तिशाली है, वह सहन कर सकता है। जो शक्तिशाली है, वह क्षमा कर सकता है। जो शक्तिशाली है, वह मैत्री कर सकता है। कमजोर आदमी के लिए महावीर के दर्शन में कहीं स्थान नहीं है। जो कमजोर है, दुर्बल है, वह सहिष्णुता, क्षमा और मैत्री जैसे महान् तत्त्व का भार नहीं उठा सकता। समर्थ होना बहुत जरूरी है। महावीर क्षत्रिय थे। क्षत्रिय बहुत समर्थ होता है। महावीर ने अपने सामर्थ्य का उदात्तीकरण कर दिया। जो शक्ति दूसरों को मारने में, युद्ध करने में खपती थी, उसका उदात्तीकरण कर दिया, भीतरी स्रोत को उद्घाटित करने में उस शक्ति का नियोजन कर दिया । सहिष्णुता है—शक्ति का उदात्तीकरण।

यह सहिष्णुता की संक्षिप्त मीमांसा है। हम चिन्तन-मनन के द्वारा इसे व्यापक संदर्भ में समझें। शरीर, मन और भावात्मक स्थितियों के साथ साथ कर्मशास्त्र के आधार पर इसकी उपयोगिता का मूल्यांकन करें। अंतराय कर्म का क्षयोपशम, मोहनीय कर्म का क्षयोपशम और ज्ञानावरणीय कर्म का क्षमोपशम—इन तीनों की युति होती है तब सहिष्णुता के महासागर में अवगाहन करने की अर्हता जागृत होती है। हम अपनी अर्हता को जगाएं, सहिष्णुता का विकास करें, सफल एवं शांतिपूर्ण जीवन का रहस्य हमारे हाथ में होगा।

अप्पणा सच्चमेसेज्जा

प्रेक्षा ध्यान का एक प्रयोग है श्वास प्रेक्षा। बहुत छोटी-सी बात होती है श्वास को देखना। किन्तु 'अप्पणा सच्चमेसेज्जा', इस सूत्र के आधार पर श्वास का निरीक्षण या श्वास की प्रेक्षा शुरू करें तो उसके सैकड़ों पर्याय हमारे सामने आ जाएंगे । जो व्यक्ति यह चाहे कि मुझे ध्यान की बहुत गहराई में जाना है, वह केवल श्वास प्रेक्षा का प्रयोग अपना ले। इस एक प्रयोग से वह ठेठ समाधि की अवस्था तक पहुंच सकता है।

श्वास से जुड़े नियम

सत्य का अर्थ है—परिवर्तनों एवं उसके नियमों को जानना,पर्यायों को जानते रहना। एक श्वास के कितने पर्याय हैं? हम आधा घंटा श्वास प्रेक्षा का प्रयोग करते हैं। इतनी सी देर में श्वास के सैकड़ों पर्याय बदल जाते हैं, उन सब पर्यायों को सूक्ष्म दृष्टि से देखना, उनकी प्रेक्षा करना, यह है स्वयं सत्य की खोज। सारी बातें बताई नहीं जा सकती, केवल उनका अनुभव किया जा सकता है। हम कुछेक बातें ही बता सकते हैं—जब हम श्वास लेंगे तो श्वास गर्म होगा। जब वह भीतर जाएगा तब उतना ही गर्म रहेगा, जितना फेफड़े के लिए आवश्यक है। अधिक गर्म होगा तो नाक उसे रोक देगा और अधिक ठण्डा होगा तो भी नाक उसे रोक देगा। हमारे नथुने के भीतर जो संवेदी तंत्रिकाएं हैं, वे श्वास को मृदु बना देती हैं। इसीलिए कहा जाता है—श्वास मुंह से न लिया जाए। क्योंकि मुंह के पास श्वास को संतुलित करने के लिए कोई साधन नहीं होता।

संदर्भ रंग का

जब श्वास भीतर जाता है तब उसका रंग दूसरा होता है और जब वह

बाहर आता है तब उसका रंग बदल जाता है। हमारे आस-पास रंगों का एक वातावरण है। सैकड़ों प्रकार के परमाणुओं का मंडल हमारे इर्द-गिर्द परिक्रमा कर रहा है । उनमें एक है रंगों का वलय। उसमें नीला, काला, सफेद, लाल—ये सभी रंग हैं। रंगों का अनुभव करना श्वास प्रेक्षा का एक नियम है और उसकी प्रेक्षा से जुड़ा हुआ एक उपक्रम है। इस वलय की बात से आगे बढ़ें। हम जो प्राणवायु लेते हैं, उस श्वास में भी सभी प्रकार के रंग, सभी प्रकार की गंध, रस और स्पर्श हैं। जो व्यक्ति श्वास प्रेक्षा का ध्यान करे, वह पहले इस बात पर ध्यान दे—मैं इस क्षण जो श्वास ले रहा हूं, उसमें कौनसा रंग प्रकट हो रहा है? कौन सा रंग दबा हुआ है? जो रंग व्यक्त है, उसकी प्रेक्षा शुरू करे। जो अव्यक्त है, उसकी भी प्रेक्षा करे। सत्य की खोज की दिशा में एक कदम आगे बढ़ जाएगा। ध्यान भी गहरा होता चला जाएगा।

रंग को देखने का संकल्प

जब श्वास प्रेक्षा का प्रयोग किया जाता है और श्वास के रंग को पकड़ने की कोशिश की जाती है तब ध्यान की गहराई में जाना होता है, एकाग्रता को सघन बनाना होता है। दीर्घश्वास प्रेक्षा करने वाला व्यक्ति इस संकल्प को लेकर ध्यान में बैठ जाए—आज मुझे इस रंग को देखने के लिए श्वास प्रेक्षा का प्रयोग करना है । सघन ध्यान का प्रयोग, केवल कल्पना नहीं । वह यह देखे—मैं जो श्वास ले रहा हूं, उसके साथ कौन सा रंग जा रहा है और कौन सा रंग अव्यक्त बना हुआ है। जो रंग व्यक्त होकर जा रहा है, उसे मुझे देखना है। प्रातः काल ध्यान में जो रंग होता है, वह मध्यान्ह के ध्यान में बदल जाएगा। प्रत्येक डेढ़ घंटे बाद रंग बदलता रहता है। श्वास प्रेक्षा के साथ जुड़ा पहला प्रयोग है रंग का ज्ञान।

संदर्भ गंध का

दूसरा है गंध का ज्ञान । गंध आदमी को बहुत प्रभावित करती है। आज विज्ञान के क्षेत्र मे इस विषय पर बहुत अनुसंधान और अन्वेषण चल रहे हैं। गंध और भावनाओं का गहरा संबंध है। बुरी गंध, बुरी भावना। अच्छी गंध,

अच्छी भावना । हमारे मस्तिष्क का एक भाग है एनीमल ब्रेन। वह गंध से बहुत प्रभावित होता है। वहीं हमारे संस्कार और वृत्तियां पैदा होती हैं। कहा गया–अर्हत् तीर्थंकर जो होते हैं, उनके श्वास में भी कमल जैसी सुगन्ध होती है । शरीर की गंध से पूरे व्यक्तित्व को पहचाना जा सकता है। इसका अर्थ है–जिसकी भावना पवित्र और निर्मल होती है, उसके शरीर से अच्छी गंध आती है। जिसकी भावना विकृत होती है उसकी गंध बहुत दूषित हो जाती है। लेश्या के साथ जुड़ा हुआ है गंध का संबंध । श्वास प्रेक्षा करते समय व्यक्ति यह देखे-- मैं अभी जो श्वास प्रेक्षा का प्रयोग कर रहा हूं, उसमें कौन-सी गंध है? जिस समय अच्छा भाव हो उस समय श्वास प्रेक्षा का प्रयोग करे और गंध को देखे। बुरे विचार के आने पर भी प्रेक्षा के प्रयोग से गंध का अनुभव करे। इस स्थिति में गंध की तरतमता का पता चल जाएगा।

सत्य का मार्ग : भीतर की खोज

हम श्वास के सारे नियमों और बदलते हुए पर्यायों का अनुभव करें। हमें सत्य की खोज के लिए कहीं बाहर जाना ही नहीं पड़ेगा। जो सत्य की खोज में बाहर भटकता रहेगा, उसे कभी सत्य नहीं मिलेगा। सत्य अपने भीतर की खोज से उपलब्ध होगा। जो देखना नहीं जानता, वह सत्य की खोज कैसे करेगा? सबसे बड़ी बात है निरीक्षण। निरीक्षण का भी नियम है। देखना कोरा निषेधात्मक नहीं है। हमें यह समझना होगा कि हम कैसे देखें? कैसे सोचें? समता के साथ देखना ही देखना है। जिस क्षण में राग-द्वेष नहीं है, वह प्रेक्षा का क्षण है। इस स्थिति में ही हमें सत्य का पता चलेगा। हम यह अनुभव कर पाएंगे–हमारे भीतर क्या क्या घटित हो रहा है? श्वास के साथ क्या कुछ भीतर जा रहा है? उसमें क्या क्या बदलाव आ रहा है? जब तटस्थभाव से दर्शन होगा तब ये सारी सचाइयां साक्षात् हो पाएंगी।

संदर्भ स्पर्श का

श्वास के साथ जुड़ा एक तत्त्व है स्पर्श । हम यह देखें--मैं जो श्वास ले रहा हूं उसका स्पर्श कैसा है? यह करौत जैसा है या छुरी के दांतों जैसा

है। खुरदरा है या चिकना है? हल्का है या भारी है? स्निग्ध है या रूक्ष है? श्वास प्रेक्षा के क्षण में इन सबका निरीक्षण करना, यह है सत्य की खोज। यदि हम इस प्रकार केवल श्वास प्रेक्षा के प्रयोग को वर्षों तक चलाएं तो ध्यान के लिए दूसरे विकल्प की अपेक्षा ही नहीं रहेगी।

संदर्भ रस का

श्वास के साथ जुड़ा एक तत्त्व है रस । श्वास का रस कैसा है? श्वास खट्टा है तो कैसा है? आंवले जैसा है? इमली जैसा है? या खट्टे दही जैसा है? श्वास मीठा है तो कैसा है? गुड़ जैसा है? चीनी जैसा है? खजूर या मधु जैसा है? वह तिक्त है या कसैला है? श्वास की इन सारे पहलुओं से प्रेक्षा करें, प्रेक्षा करते चले जाएं। श्वास के रस में जो तारतम्य है, वह हमारी पकड़ में आता चला जाएगा। यह तारतम्य की अनुभूति ही सत्य की खोज है।

श्वास प्रेक्षा : अनेक पहलु

हम इन सारे संदर्भों में श्वास प्रेक्षा का मूल्याकंन करें। कितना महत्त्वपूर्ण है यह प्रयोग । हम श्वास के वर्ण को खोजें, गंध को खोजें,रस और स्पर्श को खोजें और खोजते ही चले जाएं, जहां पहुंचना है, हम वहां पहुंच जाएंगे। इसके लिए किसी प्रयोगशाला की जरूरत नहीं होगी। हमारा अंतर्ज्ञान इतना संवेदी और इतना ग्रहणशील बन जाएगा कि जो भी पर्याय सामने आएंगे, हम उन्हें पकड़ लेंगे। जिन लोंगों ने श्वास प्रेक्षा का सूक्ष्म प्रयोग किया है, वे काफी गहराई में पहुंचे हैं। उनके सामने बहुत बातें स्पष्ट हो जाती हैं, अनेक सूक्ष्म घटनाएं चित्रवत् सामने आ जाती हैं। ऐसा होता है और प्रत्येक साधनाशील व्यक्ति इस स्थिति को उपलब्ध हो सकता है।

श्वास प्रेक्षा के साथ और भी अनेक पहलु जुड़े हुए हैं। हमने श्वास लिया, वह भीतर किस जगह पहुंचा? वह कहां से बाहर आ रहा है? श्वास के यात्रापथ को देखें। श्वास के इतने पर्याय बन जाते हैं कि हम देखते ही चले जाएं। इनके साथ भूत और भविष्य का ज्ञान भी जुड़ा हुआ है।

अनुभूत सत्य

इन सारे पहलुओं की खोज सत्य की खोज है। यह किसी प्रयोगशाला में परीक्षित सत्य है या नहीं किन्तु अनुभूत सत्य अवश्य है। आज आदमी का विश्वास यंत्रों पर अधिक हो गया है। जब तक यंत्रों के द्वारा किसी बात की परीक्षा नहीं की जाती तब तक उसे प्रमाणित नहीं माना जाता। आज के यांत्रिक युग में बाहर की प्रयोगशाला जरूरी है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। जो युग की धारणा बन जाती है, उसे अस्वीकार किया भी कैसे जाए? मैं इस धारणा को तोड़ने की बात नहीं कर रहा हूं किन्तु इसके साथ एक बात जोड़ देना चाहता हूं—बाहर की प्रयोगशाला के साथ-साथ भीतर की प्रयोगशाला का निर्माण अवश्य होना चाहिए। बाहर की प्रयोगशाला के यंत्र धोखा दे सकते हैं, भीतर की प्रयोगशाला के यंत्र कभी धोखा नहीं देते। इस भीतर की प्रयोगशाला का निर्माण सत्य की खोज के द्वारा ही संभव है।

आहंसु विज्जा चरणं पमोक्खं

साधना की तीन भूमिकाएं हैं। प्रथम भूमिका है--अंतप्रवेश या अंतर्बोध। दूसरी भूमिका है अंतःस्थिति। तीसरी भूमिका है--अंतर् अनुभूति

अन्तर्बोध

जब व्यक्ति साधना शुरू करता है तब सबसे पहले अन्तर्बोध की स्थिति बनती है। इस भूमिका में व्यक्ति को अपने भीतर का ज्ञान होने लग जाता है। जो व्यक्ति हमेशा बाहर ही बाहर रहता है, उसका भीतर में प्रवेश हो जाता है। उसका चित्त भीतर में जाने लगता है, अंतःस्थिति तक पहुंचने का दरवाजा खुल जाता है। जिस व्यक्ति को इतना सा बोध हो जाता है, वह अन्तर्बोध की भूमिका का स्पर्श कर लेता है।

कुछ लोगों ने प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में एक आपत्ति उठाई, यह ध्यान नहीं है, धारणा है । यह ठीक बात है कि ध्यान की पहली भूमिका ध्यान सीखने के लिए है। हम यह न मानें--पहली भूमिका में ही ध्यान होना शुरू हो गया। ऐसा मानेंगे तो यह बड़ी भूल हो जाएगी। पहली भूमिका में व्यक्ति ध्यान का क्रम सीखता है। ध्यान कैसे करना चाहिए? भीतर में प्रवेश कैसे करें? उसके कुछ उपाय या कुछ गुर हाथ में आ जाते हैं।

अंतःस्थिति

दूसरी भूमिका है अंतःस्थिति की । इसमें ध्यान की स्थिति होगी। इस भूमिका में व्यक्ति भीतर में रहना सीख लेता है। पहली भूमिका धारणा की भूमिका होती है। ध्यान की भूमिका दूसरी भूमिका है। हम पहले शरीर को देखते हैं, श्वास को देखते हैं। यह एक प्रकार से धारणा की स्थिति है। ध्यान

तब होगा जब हम लम्बे समय तक एक बिन्दु पर टिक जाएं। मान लीजिए—हम दर्शन केन्द्र पर ध्यान कर रहे हैं। यदि हम उसी केन्द्र पर एक घंटा तक निरन्तर ध्यान करते रहते हैं तो ध्यान की स्थिति बनती है। हम किसी भी चैतन्य केन्द्र पर एक साथ एक घंटा तक ध्यान करें, इसका नाम है अंतःस्थिति। इसका अर्थ है—हम अपने भीतर ठहर गए।

अंतर् अनुभूति

तीसरी भूमिका है-अन्तर् अनुभूति की । यह समाधि की भूमिका है। यह तादात्म्य की स्थिति है। इसमें ध्याता और ध्येय दो नहीं रहेंगे। ध्याता, ध्येय और ध्यान—तीनों एक बन जाएंगे। ध्यान और समाधि के संदर्भ में यह कथन बहुत महत्त्वपूर्ण है—

शब्दादीनां च तन्मात्रं, यावद् कर्णादिषु स्थितम्।
तावदेव स्मृतं ध्यानं, समाधिः स्यादतः परम्।।

जब तक शब्द कान में आते रहें और व्यक्ति को यह पता चलता रहे कि शब्द आ रहे हैं तब तक ध्यान की स्थिति है। शब्द सुनना बंद हो जाए, वह समाधि की स्थिति है। तीन स्थितियां हैं—व्यक्ति ध्यान में बैठा है। शब्द आया और उसी पर व्यक्ति का ध्यान अटक गया, यह धारणा की स्थिति है। शब्द सुनाई दिया पर उसका क्या अर्थ है? इस पर ध्यान नहीं गया, यह ध्यान की स्थिति है। व्यक्ति ध्यान की उस स्थिति में चला गया, जहां शब्द सुनना ही बंद हो गया, यह समाधि की स्थिति है।

अंतःस्थिति : व्रत चेतना का विकास

प्रेक्षाध्यान धारणा से लेकर समाधि तक की साधना है, अंतर्बोध से लेकर अन्तर् अनुभूति तक पहुंचने की साधना है। जो प्रेक्षाध्यान की साधना का प्रारंभ करता है, कम से कम उसे अपना बोध हो जाता है। वस्तुतः यह मात्र देहली प्रवेश है। उससे आगे की स्थिति अंतःस्थिति की भूमिका में प्रवेश पाने पर ही उपलब्ध होती है। एक प्रश्न बहुत बार पूछा जाता है—साधना करने

वाले व्यक्ति में परिवर्तन क्यों नहीं आता? उसमें व्रत-चेतना का विकास क्यों नहीं होता? साधना शुरू करते ही परिवर्तन नहीं आ जाता। वह मात्र परिवर्तन की दिशा में प्रस्थान है। परिवर्तन तब आता है जब व्यक्ति अंतःस्थिति की भूमिका को उपलब्ध हो जाता है। जब अंतःस्थिति आती है, जीवन में व्रत अपने आप आ जाता है। प्रेक्षाध्यान की साधना करने वाले अनेक व्यक्तियों की स्थिति मेरे सामने है। अनेक साधक ऐसे हैं, जो अंतर्बोध की भूमिका से अंतःस्थिति की भूमिका में प्रविष्ट हो गए हैं। उनका जीवन व्यवहार और आचरण इस स्थिति का साक्ष्य है। वह व्यक्ति, जो निरन्तर ध्यान साधना में रत रहता है, अंतःस्थिति की भूमिका को उपलब्ध हो जाता है। ऐसे व्यक्ति के जीवन में व्रत या चरित्रनिष्ठा स्वतः उद्भूत हो जाती है।

लक्ष्य है समाधि की उपलब्धि

हम एक लक्ष्य बनाएं । सबसे पहले अन्तर्बोध की भूमिका का स्पर्श करें किन्तु उस पर अटके न रहें। यदि हम केवल श्वास प्रेक्षा, शरीर प्रेक्षा आदि प्रयोग ही करते रहे तो दस वर्ष तक भी दूसरी भूमिका प्राप्त नहीं होगी। वह भूमिका तब उपलब्ध होती है जब हम एक चैतन्य केन्द्र पर दीर्घकालीन ध्यान करें। हठयोग का सूत्र है—

धारणां द्वादशगुणिता ध्यानं, ध्यानं द्वादशगुणितं समाधिः।

धारणा को बारह से गुणा करो, ध्यान की स्थिति आ जाएगी। ध्यान को बारह से गुणा करो, समाधि की स्थिति आ जाएगी। हमें पहुंचना है समाधि की भूमिका में। जिन व्यक्तियों में विशेष जिज्ञासा है, विशेष योग्यता और क्षमता है, कुछ होने की अभीप्सा और अर्हता है, उनको केवल धारणा पर नहीं अटकना चाहिए, ध्यान और समाधि की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना चाहिए। ऐसे व्यक्ति स्वयं भी लाभ उठा सकते हैं, दूसरों के लाभ में भी निमित्त बन सकते हैं।

सिद्धान्त और प्रयोग

हम साधना की इन तीन भूमिकाओं को जानते हैं, यह है विद्या का क्षेत्र। हम इनका प्रयोग करते हैं, यह है आचरण का क्षेत्र । विद्या और आचरण, यह है शास्त्रीय भाषा। आज की भाषा है—सिद्धान्त और प्रयोग । यदि हम केवल ध्यान का प्रयोग करें और ध्यान के सिद्धान्त को न समझें तो वह अंधेरी कोटड़ी में ढ़ेला फैंकने जैसा है। ध्यान का प्रयोग करने वाले व्यक्ति के लिए शरीर और मन के नियमों को समझना जरूरी है।

एक है प्राण का तंत्र। इसे डाक्टर भी पकड़ नहीं पाते। जो हमारी प्राणशक्ति है, प्राण का पथ या प्राण-प्रवाह है, उसे समझना बहुत जरूरी है इसीलिए प्रेक्षाध्यान के साथ सिद्धान्त का एक पूरा पक्ष जुड़ा हुआ है। उसका दूसरा पक्ष है--आचरण या प्रयोग का पक्ष। ये दोनों ही पक्ष जीवन में घटित होते हैं तब साधना का मार्ग प्रशस्त और स्पष्ट बन जाता है। इन दोनों के योग का अर्थ है—समस्या से मुक्ति।

अरहंते सरणं पवज्जामि

स्वतंत्रता : परतंत्रता

प्रत्येक व्यक्ति स्वतंत्रता का अधिकारी है। यद्यपि नीतिशास्त्र में स्वतंत्रता और परतंत्रता - दोनों को ही सापेक्ष मूल्य दिया गया है। परतंत्रता विहीन स्वतंत्रता निरपेक्ष रूप में नहीं होती और स्वतंत्रता विहीन परतंत्रता भी जीवन को नष्ट करने वाली होती है। व्यक्ति कितना ही स्वतंत्र क्यों न हो, वह अपने पर एक छत्रछाया रखना चाहता है, एक आश्रय रखना चाहता है। इसका अर्थ है–वह किसी की शरण में रहना चाहता है। शरण का अर्थ है घर । प्रश्न आया–किसकी शरण में जाएं? बहुत चिन्तन के बाद व्यक्ति इस निष्कर्ष को उपलब्ध हुआ–अरहंते सरणं पवज्जामि - मैं अर्हत् की शरण में जाता हूं। इससे बड़ा कोई घर या शरण नहीं है। वहां जाने के बाद सारी समस्याएं समाप्त हो जाती हैं, सारे संदेह मिट जाते हैं, व्यक्ति पूर्ण आश्वस्त और विश्वस्त हो जाता है।

आत्मा की शरण : अर्हत् की शरण

दूसरी भाषा में कहा जा सकता है–जो अपनी आत्मा को जानता है, वह है अर्हत्। 'अर्हत् की शरण में जाता हूं', इसका अर्थ है–मैं अपनी आत्मा की शरण में जाता हूं। जब आदमी आत्मा की शरण में जाता है तब उसका मोह विलीन हो जाता है।

जो द्रव्य, गुण और सारे पर्यायों से अर्हत् को जानता है, वह आत्मा को जानता है। उसका मोह विलीन हो जाता है।

जो जाणदि अरिहंते, दव्वत्तगुणत्तपज्जवत्तेहिं।

सो जाणदि अप्पाणं, मोहो खलु तस्स जादि लयं।।

आज मोह इतना प्रबल हो गया है कि व्यक्ति अपने आपको जान ही नहीं पा रहा है। मोह प्रबल है इसलिए वह अर्हत् को नहीं जानता और अर्हत् को नहीं जानता, इसका अर्थ है वह अपने आपको नहीं जानता।

निदर्शन मोह का

वर्तमान का चुनावी माहौल मोह का जीवन्त निदर्शन है। हम चुनावी भाषणों को सुनें, पढ़ें, मोह का पूरा चित्र सामने आ जाएगा। चुनावी भाषणों का सार है दूसरे दल को नीचा दिखाना, बुरा साबित करना और जनता को इस बात के लिए प्रेरित करना कि वह दूसरे दल को वोट न दे। इस नकारात्मक दृष्टिकोण के आधार पर जनता वोट देने का निर्णय करती है। इससे बड़ा मूढ़ता का उदाहरण क्या हो सकता है? यदि इसी निषेधात्मक दृष्टिकोण के आधार पर चुनाव प्रणाली चलती रही तो पूरा देश नकारात्मक बन जाएगा। उसके पास रचनात्मक दृष्टिकोण रहेगा ही नहीं, करने का कुछ भी नहीं बचेगा।

सदाचार : चुनाव का मूल आधार

चुनाव का मूल आधार बनना चाहिए सदाचार। वोट उसे दिया जाए, जो सदाचारी हो, व्रती हो, चरित्रनिष्ठ, ईमानदार और नैतिक हो। देश की कितनी बड़ी शक्ति है, कितना बड़ा खजाना है। उसको पाकर सदाचारी रहना असंभव तो नहीं है किन्तु हलाहल जहर पीने के बराबर अवश्य है। उस जहर को पीने की ताकत वह नहीं जुटा पा रहा है किन्तु केवल दूसरा जहरीला है, यह प्रचारित किया जा रहा है। जहां इस प्रकार की स्थिति चल रही हो, वहां कैसा वातावरण हो सकता है? मोह चेतना प्रबल न हो तो यह स्थिति नहीं बन सकती ।

वोटर प्रबुद्ध कहां है?

कहा जा रहा है-आज भारतीय वोटर बहुत प्रबुद्ध हो गया है पर वह प्रबुद्ध कहां है? आज भी उतना ही प्रबल है जातिवाद और संप्रदायवाद, उतना ही नशा है अपनी पार्टी और अपने दल का। ये तीनों ही बड़ी समस्याएं हैं।

एक ही लक्ष्य होता है पार्टी को जिताना। इसके लिए एक दल दूसरे दल पर प्रहार करता है, उसे निकम्मा और भ्रष्ट घोषित कर देता है किन्तु स्वयं कैसा है, यह नहीं देखता। जब प्रश्न स्वयं का आता है तब उसे मौन रहना पड़ता है। मूल प्रश्न यह है—किसी भी राजनीतिक दल ने सदाचार सिखाने का प्रयत्न किया ही नहीं। किसी नेता ने सदाचार का आंदोलन नहीं चलाया। जहां मूल में ही इतनी भूल चल रही है—न सदाचारी व्यक्तित्व बनाने का प्रयत्न और न ही सदाचार की प्रतिष्ठापना के लिए चल रहे आंदोलन से जुड़ने का प्रयत्न, वहां सदाचार की कल्पना कैसे की जा सकती है?

आश्वासन की राजनीति

ऐसा लगता है—कोई भी राजनैतिक दल इस दिशा में सोचने को ही तैयार नहीं है। राजनीति के मुखिया लोग किसी नैतिक आंदोलन से जुड़े और अणुव्रती बने, यह स्थिति आज कहां है? मानसिक संताप से ग्रस्त व्यक्ति प्रेक्षाध्यान का प्रयोग तनाव मुक्ति के लिए करते हैं किन्तु सदाचारी कैसे बने, इस दिशा में कोई नहीं सोचता । व्यक्ति यह आवश्यकता ही अनुभव नहीं करता—प्रशासन या किसी भी क्षेत्र में जाने से पहले सदाचार की शिक्षा लेना अपेक्षित है। जब तक यह अपेक्षा ही अनुभूत नहीं हो तब तक भ्रष्टाचार के खिलाफ चलाया जाने वाला कोई भी अभियान कितना सफल हो सकता है। इस संदर्भ में सत्ता पक्ष का उम्मीदवार हो या विपक्ष का, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। इसका क्या आश्वासन है—आज जो सत्ता में नहीं है, कल सत्ता में आने के बाद वह उतना ही ईमानदार और सदाचारी रहेगा, जितना कि एक शासक को होना चाहिए । उसका सारा मंत्रिमंडल ईमानदार रहकर देश का शासन चलाएगा, जनता और समाज के हित को प्राथमिकता देगा। क्या यह विश्वास किया जा सकता है? प्रत्येक उम्मीदवार स्वार्थ के आश्वासन देता है—हम यह कर देंगें, हम वह कर देंगे। आज की राजनीति कोरे आश्वासनों की राजनीति रह गई है । सभी पार्टियों के चुनाव घोषणापत्रों में आश्वासनों के अंबार लगे होते हैं पर उनमें वास्तविकता बहुत कम होती है। यह वर्तमान

भारतीय राजनीति का यथार्थ है।

अहम अपेक्षा

हिन्दुस्तान में आज भी सचमुच सदाचार के प्रति एक आकांक्षा है। हिन्दुस्तान का आम नागरिक सदाचार को पसंद करता है, भ्रष्टाचार को पसंद नहीं करता। किन्तु उसे सदाचार के आधार पर चलाने वाला कौन है? हमें यह भी स्वीकार करना चाहिए—अणुव्रत जैसे नैतिक आंदोलन के द्वारा सदाचार की जो प्रक्रिया चलनी चाहिए, उसका जितना प्रशिक्षण चलना चाहिए, उसमें भी कुछ कमी रही है। यदि अणुव्रत आंदोलन के माध्यम से प्रशिक्षण के द्वारा देश के पचास-सौ समर्थ व्यक्तित्वों को अणुव्रती बनाया जाता, जो न्यायाधीश, विचारक और राजनेता जैसे देश को प्रभावित करने वाले समर्थ व्यक्तित्व होते तो शायद चुनाव लड़ने वालों को भी सोचना पड़ता। यदि आज भी अणुव्रत आंदोलन न्याय और प्रशासन के क्षेत्र में नीति एवं चरित्रनिष्ठ व्यक्तियों को तैयार कर देश के सामने प्रस्तुत कर सके तो सदाचार की दिशा में प्रस्थान हो सकता है, चुनावी प्रक्रिया को नई दिशा देने की बात सफल हो सकती है। वर्तमान युग की यह अहम अपेक्षा है कि हम भ्रष्टाचार के मुद्दे पर विचार करें और उसके साथ साथ जनता के मन में सदाचार की जो भावना है, उसे उद्दीपन दें, प्रोत्साहित करें, सदाचार से संपन्न व्यक्तियों के निर्माण के अभियान में जुट जाएं। यदि ऐसा होता है तो सदाचार की प्रतिष्ठा को संभव बनाया जा सकता है।

सूत्र मोह के अल्पीकरण का

सदाचार की उपलब्धि में बहुत बड़ी बाधा है मोह का प्रबल होना। जब तक व्यक्ति मोह की प्रबलता से मुक्त नहीं होगा तब तक वह सदाचार के प्रति समर्पित नहीं हो पाएगा। मोह के अल्पीकरण का सूत्र है अपनी आत्मा की शरण मे चले जाना। जो व्यक्ति आत्मा की शरण में चला जाता है, वह अर्हत् की शरण में चला जाता है, उसका मोह कभी प्रबल नहीं बन सकता।

अपनी शरण में जाने का अर्थ है मोह से परे की चेतना में चले जाना। इस प्रस्थान में अर्हत् के शरण की स्वीकृति है, सदाचार और नैतिकता से अनुप्राणित जीवन की उपलब्धि है। इस उपलब्धि से एक दिन व्यक्ति स्वयं अर्हत् बन जाता है।